जीवन-धारा

यह उपन्यास नहीं। प्रचलित अर्थ में भ्रमण-वृत्तान्त भी नहीं। इसका नाम सिर्फ चित्र दिया जा सकता है।

नदी की धारा धरती पर चित्रकारी करती चलती है। उसी भाँति 'जीवन-धारा' भी स्मृति-पट पर अंकित होती जाती है। यह चित्र कौन आँकता है, पता नहीं; पर आँकने वाला चाहे जो भी हो, कविगुरु रवीन्द्रनाथ के शब्दों में "वह आँकता चित्र ही है। अर्थात् जो कुछ भी घटित होता है उसकी अविकल नकल रखने के लिये वह हाथ में कूची लेकर नहीं बैठा रहता। अपनी रुचि के अनुसार वह कितनों को छाँट देता है, कितनों को रख लेता है। कितनी ही बडी घटनाएँ छोटी कर देता है, और छोटी घटनाये बडी। पहले की घटनाओं को पीछे और पीछे की घटनाओं को पहले सजाने में उसे संकोच नहीं होता। वस्तुतः उसका काम ही है चित्र आँकना—इतिहास लिखना नहीं।.. .... जिसे भली भाँति अनुभव किया है उसीको अनुभवगम्य करा देने पर मनुष्यों के बीच उसे आदर मिलता है। अपनी स्मृति में जो चित्र रूप में खिल उठा है, शब्दों में व्यक्त हो जाने पर ही वह साहित्य में स्थान पाने योग्य है।"

यह पुस्तक भी स्मृति-पट का चित्र है।

जीवन-धारा, नदी की धारा की तरह, नित्य नये नये चित्र तैयार करती है। उन्हें स्मृति-पट से उतार कर काग़ज़ पर रख देने की प्रेरणा मुझे सबसे अधिक स्वर्गीय मैक्सिम गोर्की से मिली थी, जिनके साथ रह

कर कुछ सीखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था । 'आवारे की यूरोप यात्रा' के नाम से कई साल पहले यह पुस्तक छपी थी । पर उसमें अब बहुत सी त्रुटियाँ दिखायी दीं, जिनमें से सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि बाह्य जीवन की घटनाओं और उनसे अपने भीतर पड़ी छाप—दोनों को मैं काफ़ी अलग नहीं रख पाया था । अपने यूरोपीय मित्रों का स्वरूप भी तब आज के समान स्पष्ट नहीं देख सका था । साथ ही कहानी के सिलसिले में भी बहुत सी बातें अधूरी रह गयी थीं । प्रस्तुत पुस्तक उसी का रूपान्तर है और इसमें यह सब कमी दूर करने की चेष्टा की गयी है । इसके कई अंश बिलकुल ही नये हैं ; और उसके कितने ही अंश इसमें नहीं हैं । और इसीलिये इसका नाम भी बदल कर और अधिक उपयुक्त बना देने में मुझे संकोच नहीं हुआ ।

सत्यनारायण

सूची

प्रथम खण्ड

भूलते-भटकते

सवेरा नहीं हो पाया था। चारों ओर बड़े घने कुहासे के कारण अन्धकार छाया हुआ था। हवा बड़े जोरों की चल रही थी। सर्दी शरीर के भीतर हड्डियों तक घुसी जाती थी। दक्षिणी फ्रास का किनारा आर्कटिक तट बन रहा था।

मार्सेई बन्दर का सारा काम-काज रुका हुआ था। जो छोटे-छोटे स्टीमर बड़े-बड़े समुद्री जहाजों को खीच कर बन्दरगाह के हाते मे ले आया करते हैं, उन्होंने भी मौसम खराब रहने के कारण अपना काम उस समय बन्द कर रखा था। चुंगी वाले भी, यह सोच कर कि इतने सवेरे और ऐसे मौसम में कोई बाहर न निकलेगा, बेखटके झपकियाँ लेने लगे थे।

मै ऐसे ही मौके की ताक में था। जहाज से उतर कर मै शहर की ओर चला। जिस समय छोटा पुल पार कर रहा था, सामने की हवा ऐसी तेज थी कि मुझे पीछे ढकेल देना चाहती थी। वहीं एक क्षण खड़ा रहा। फिर सर ऊपर उठाया। चारों ओर घूम कर देखा। कुहासे के सिवा और कुछ भी नही। हवा ने ठीक कान मे 'सी…सी…ई' के स्वर में कहा—

"बस, इतने ही से डर गये ? तुमने तो इससे कहीं बड़ी मुसीबतों का सामना किया है ! यह तो कुछ भी नहीं। आगे बढो !"

छोटे पुल के दूसरी ओर पहुँचते ही मानो अगवानी के लिये आया हुआ एक कुत्ता पीछे लग गया। कुत्ते ने मेरे पाँव को चूम लेने की चेष्टा की, पर मुझसे उसे उत्तर मिला—"धत्…तेरे…की…"

फिर ज्यादा दोस्ती बढ़ाने के लिये चेष्टा न कर वह दुम हिलाता हुआ पीछे आने लगा। अभी चौड़ी सड़क ठीक-ठीक पहचान में भी नहीं आई थी कि बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ने लगीं। मार्सेई शहर अन्धकार में छिपा था।

"आ रे ते"—सामने से कर्कश स्वर में आवाज आई। मैं रुक गया। लम्बे-चौड़े डीलडौल वाले दो फ्रेंच सिपाही मेरे सामने आ खडे हुए। एक क्षण उन्होंने बड़े गौर से मेरी ओर देखा, फिर पूछा—"ऊव्रिये (मजदूर) ?"

मैंने उत्तर नहीं दिया।

"जिप्सी ?"

इस बार भी मैं चुप रहा।

"आलौ (चलो) !"

वे मुझे पकड़ कर ले चले।

कुत्ता भी पुलिस की चौकी तक हमारे साथ-साथ आया। जब हमारे भीतर घुस जाने के बाद सिपाहियों ने फाटक बन्द कर लिया तो वह बाहर बैठ गया। जब काफी देर बाद भी फाटक न खुला तब वह दुम हिलाता हुआ, आसपास की मिट्टी सूँघ कर, वहाँ से चला गया।

वे मुझे अपनी जबान में फटकार सुनाने लगे। लच्छेदार फ्रेंच भाषा की चुस्ती और नाक से स्वर निकालने की बारीकी और खूबी

पर मैं मुग्ध होने लगा। यह अच्छा था कि मैं उनकी ज़बान नही जानता था। डर मुझे इस बात का था कि कहीं मेरे गालों पर तमाचे न जमने लगे।

पर इसकी नौबत नही आयी। मेरी ओर से अपनी फटकारों का कोई उत्तर न पा उन्होंने मेरी खानातलाशी ली। पर जब मेरे पाकेटों में उन्हे बड़े-बडे छेद मिले तब उन्हे सन्तोष हो गया और कुछ ही घंटे हाजत में रख कर उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मैं यह आशा नहीं करता था कि जान इतने सस्ते मे छूटेगी। इसीलिये पुलिस चौकी से निकला तो पाँव हल्के पड़ने लगे।

मैं एक रास्ते के किनारे आ खड़ा हुआ। सामने जिप्सियों की एक गाड़ी खड़ी थी। उसकी काँच, काठ, दफ्ती आदि से बनी हुई सब खिड़कियाँ बन्द थी। सिर्फ उसका मुख्य दरवाज़ा खुला था। वही एक युवा जिप्सी बेहला लिये दिखलाई दिया। वह तार कस कस कर बेहले का सुर ठीक कर रहा था।

एकाएक ज़ोरों से वर्षा आई। मै एक पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। पाँवों के नीचे ताजे पड़े हुए मुर्झाये पत्ते पड़े थे। ऊपर से बहुत ही कम आश्रय पाने की गुंजाइश थी। वृक्ष की शाखाओं का अस्थि-पञ्जर मात्र, निराश हो, आकाश की ओर हाथ पसारे खड़ा था। वह स्वयं ही सहानुभूति की भीख माँग रहा था।

मूसलधार पानी बरसने लगा।

मैं पेड़ के नीचे खड़ा-खड़ा शराबोर हो गया। सर्दी के कारण दाँत कटकटाने लगे। जहाज़ से उतरने के बाद से अब तक मैं अपने-आपको एक प्रकार से भूला हुआ था। इस समय ऐसा मालूम पड़ा, जैसे मैं आहिस्ता-आहिस्ता होश में आ रहा हूँ। अभी यह भी याद आया कि सवेरे से मैंने कुछ खाया नही है।

अन्धकार छा जाने से सन्ध्या हुई सी दिखलाई देती थी। रात कहाँ बिताऊँगा, इसकी भी चिन्ता हो रही थी। यही आशा लगाये हुए था कि कब पानी रुके और कब रात बिताने के लिये स्थान ढूँढने निकलूँ; पर आकाश में काले बादलो के घिरते जाने के कारण बहुत घना अन्धकार छाता जा रहा था और वर्षा रुकने के आसार ही नहीं दिखलाई देते थे।

मैंने आँख उठा कर सामने देखा। जिप्सी अपनी गाड़ी के दरवाजे पर बैठा बेहला बजा रहा था। बेहले का राग रुलाने वाला था। उसके तारों से जो राग निकल रहा था, शायद ठीक उसी प्रकार का राग मेरी हृत्तन्त्री मे भी बज रहा था।

और, जोरों की वर्षा हो रही थी।

रह-रह कर मन में आता—

"घर न छोड़ता, वही अच्छा था। वहाँ कम-से-कम ऐसी सर्दी तो नहीं थी; पर नहीं, वहाँ भी मेरे लिये कौन-सा स्वर्ग था? चारों ओर से कुत्तो की तरह दुतकारा जाता था। यहाँ भी वही हाल है। मेरे लिये जैसा वहाँ वैसा यहाँ। मेरे भाग्य में सुख कहाँ?

"फिर क्या इसी तरह भूखे-प्यासे और सर्दी से ठिठुरते हुए मैं यहाँ मर जाऊँगा? लोग मरे हुए कुत्ते को जैसे घसीट कर कही फिकवा देते हैं, ठीक उसी प्रकार क्या मेरी लाश भी फिकवा दी जायगी?

"मेरी लाश को दफनाने वाला भी कोई नही मिलेगा? किसी को यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं भी कभी आदमी की शक्ल मे जिन्दा था?"

मैंने अपने होंठ दाँतो के नीचे कस कर दबा रखे थे। सर का पानी ठुड्डी से होकर नीचे गिर रहा था। कभी-कभी एक-आध बूँद ठुड्डी पर ठहर जाती और मेरे गालों की नसें इस प्रकार तन जातीं, मानो 'रोम-रोम कह रहा हो—'नहीं, मैं इस प्रकार कदापि नही मर सकता।'

उधर जिप्सी अपनी गाड़ी के दरवाजे पर बैठा बेहला बजा रहा था। हवा साँय-साँय करती हुई वृक्षों को झकझोर रही थी।

और, मूसलधार पानी बरसता ही जा रहा था।

वर्षा का पानी मेरे पाँव के पास एक छोटे से गड़हे में इकट्ठा हो गया था। बारिश रुक जाने पर वह स्थिर हो गया। उसी मे मुझे अपना प्रतिबिम्ब दिखाई दिया।

कद मझोला, पर ठीक बाँस के खूँटे के आकार का। खूँटों को ठोकने पर जैसे उनका उपरला भाग चपटा हो जाया करता है और चारों ओर से रेशे लटकने लगते हैं ठीक उसी भाँति मेरे सर के बिखरे हुये बाल चारों ओर लटक रहे थे।

रग ऊपर से नीचे तक काला। चेहरे और कपड़ो से धुल धुल कर कोयला पानी में जा मिला था। शायद इसी कारण उस स्थान पर जमे पानी का रङ्ग अधिक काला दिखाई देता था। मेरे सारे शरीर से कोयले की बू निकल रही थी।

अपने को भली भाँति पहचान पाने के लिये जिप्सियों की गाड़ी की काँच वाली खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ। मेरे जैसी वेश-भूषा वाले 'सज्जन' का पदार्पण यूरोप के बन्दरगाह मे बड़े भाग्य से किसी शुभ मुहूर्त्त में ही कभी होता होगा। कमर मे बड़ी लापरवाही से लपेटी हुई लुंगी के दो खूँट खुँसे थे। सामने की दोनो मुर्रियाँ इस तरह ऊँची बन गयी थी कि हिलते समय जान पड़ता था मानो मुर्गी की दो बच्चियाँ दोनो ओर वीरासन लगाये बैठी हैं और एक-दूसरे पर हमला करने के लिये पैतरे बदल रही हैं! लुगी की मुर्रियो को ढकने का प्रयत्न ऊपर की गंजी से किया गया था जिसके भीतर से छाती के बाल बाहर झाँक रहे थे। उसके ऊपर से मैंने एक काला कोट चढा रखा था, जिसमें एक

ही, और वह भी आधा टूटा हुआ, बटन लटक रहा था। और वह कोट भी कैसा ?—गामा पहलवान के शरीर पर भी वह ओवरकोट का काम देता ! और सबसे बड़ी खूबी यह कि मेरी यह समूची विलायती पोशाक इतनी अधिक झरोखों वाली थी कि उसका काल-निर्णय करने के लिये सचमुच ही किसी पुरातत्त्ववेत्ता की आवश्यकता थी।

मेरी विचित्र पोशाक देख कर बेहला वाला जिप्सी मेरे पास पहुँचा और अपनी जबान मे कुछ बोला। उत्तर में एक नये प्रकार की जबान सुन, जिसका वह कुछ मतलब नही निकाल सका, उसे हँसी आ गयी। फिर भी वह वहाँ से टला नही, वही बैठ कर अपना बेहला बजाने लगा। थोड़ी देर बाद उसने मुझे अपने साथ चलने का इशारा किया, पर असफल रहा।

तब वह अपनी गाड़ी के भीतर गया और अपने हाथ मे एक जॉघिया लेकर लौटा। जॉघिये का आधा भाग काले कपडे से तथा आधा सफेद फ़लालैन से बना था, जिसमे लाल धारियाँ पड़ी थीं। जॉघिया दिखलाते हुए जिप्सी ने अपनी जबान मे कुछ पूछा। मैंने समझा, शायद वह जाँघिया बेचना चाहता है। मैंने अपने कोट का पाकेट उलट कर दिखलाते हुए कहा—"पास मे कानी कौडी भी नही !"

जिप्सी इसका मतलब समझ गया। थोडी देर तक वह रुका रहा, कुछ निश्चय नही कर पाया ; फिर हँसते हुए जॉघिया मेरे सामने फेंक कर अपनी गाडी के भीतर चला गया।

जिप्सियों ने उसी रास्ते के किनारे एक खाली स्थान पर अपना डेरा डाला। सबसे पहले गाड़ी हॉकने वाला एक नौजवान जिप्सी गाड़ी से उतर कर घोड़ो को खोलने लगा। फिर एक युवती गोद मे एक बच्चे को लेकर उतरी और घोड़ों को खाने के लिये जो घास फैलाई गई थी,

उसी पर बैठ बच्चे को दूध पिलाने लगी। इसके बाद जैसे कस कर आलू-भरे किसी बोरे के फूट जाने पर उसके भीतर के बड़े-छोटे आलू बाहर निकलने लगते हैं, उसी प्रकार गाड़ी के भीतर से बूढे, बच्चे, नौजवान, स्त्री, पुरुष बाहर निकलने लगे। जैसा प्रायः हुआ करता है, उनके पड़ाव डालते ही वहाँ पर उनका अपना एक विशेष प्रकार का बाजार-सा लगने लगा।

ये जिप्सी भारत के अनेक भागो मे पाये जाने वाले मगहिया डोम अथवा बद्दू जातियो की तरह अपना सारा जीवन गाड़ियो पर ही बिताया करते हैं। ये चोरी, ठगी अथवा भिक्षावृत्ति से अपना निर्वाह किया करते हैं। इनके जीवन की आवश्यकताएँ निश्चित नही होती बल्कि जब जैसा हाथ लग गया, उसीके अनुसार बढ़ती-घटती रहती हैं।

इसी कारण उनके लिबास अपने निजी ढंग के ही थे। कितने बुड्ढो के पाँवो में स्त्रियो की ऊँची एँड़ी वाली जूतियाँ और कितनी स्त्रियो के पाँवों मे पुरुषों के बूट जूते थे। और कितनों ही के एक पाँव मे पुरुष का और दूसरे मे स्त्री का जूता था ! उनके पाजामे, कोट आदि रग-बिरंग के थे। अगर एक पाँव में हरे रंग का कपड़ा, तो दूसरे मे काले, सफेद या किसी चितकबरे रंग का !

गाड़ी से उतर कर एक जिप्सी भीख माँगने के लिये जाने से पहले अपने बेहले का साज-बाज ठीक करने लगा। नाले के पास, जहाँ से बड़ी बदबू आ रही थी, बूढ़े आग जला कर भोजन पकाने की तैयारी करने लगे। कुछ स्त्रियाँ अपने लहँगो पर कई प्रकार के अन्न बिछा कर साफ करने लगी। दूसरी, जिनकी किशोरावस्था थी, शहर मे जाने पर सरलता से लोगो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकें—इसके लिये, तरह-तरह के बनाव-सिगार करने लगी।

खानाबदोशो के दोस्त खानाबदोश ही हो सकते हैं। मार्सेई में

मुझे अपनाने वाले जिप्सी ही मिले। उनके साथ मैं कई दिन रहा। इस अर्से मे उनके रहन-सहन, हाल-चाल, हाव-भाव से बहुत-कुछ परिचित भी हो गया। पूरा-का-पूरा जिप्सी नही बन गया, इतनी ही खैरियत हुई।

दूसरा और कोई समाज मुझे अपनाने के लिये राजी न था। फ्रास के लोग तो मुझे हिन्दुस्तानी ही मानने के लिये तैयार नही थे। कुछ तो केवल उन्ही को हिन्दुस्तानी मानने के पक्षपाती थे, जो सोने से लद कर, मोटरों मे बैठ कर बाहर निकले, जो सर पर ऐसा साफा बाँधे जिसके बीच में एक हीरा टॅका हो, और जो सदा अपने को आलसियों का सरदार सिद्ध करते रहे। कुछ दूसरे केवल जादू की हिकमत दिखलाने वालो को हिन्दुस्तानी समझते थे। और कुछ ऐसे भी लोग थे जो भारत-वासियों को बाघ-भालुओ जैसा जीव मानते थे, जो किसी को देखते ही उसका मुँह नोच लेने के लिये तैयार रहते हैं। मैं उनके इन तीनों वर्गों में से किसी एक मे भी रखा जाने लायक नही था, इसलिये उन्हें मेरा जिप्सी होना ही अधिक जॅचता था।

जिप्सी भी खुले हृदय से मुझे अपनाने के लिये राजी थे—यह बात भी नही थी। उनके समाज में केवल वीर युवकों की ही कद्र होती है, और वीर वैसे ही लोग गिने जाते हैं जो किसी से पैसा ठग लाने मे अथवा किसी की साइकिल चुरा लाने मे समर्थ हो! मैं इन कलाओ मे निपुण न था, इसलिये वे मेरी गिनती 'मनहूसों' मे किया करते थे। पेड़ से जलाने के लिये सूखी लकड़ी तोड़ लाना, घोड़े को दाना देना और उन्हे जोतना, मुर्गियों को दाना देना, आदि काम मैंने अपने लिये ले रखे थे। ऐसे काम मुझे पसन्द न थे, पर दूसरा कोई चारा ही न था।

एक दिन एक छोटे झरने के किनारे घास पर लेटे-लेटे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ मन मे उठने लगीं। मच्छर खूब भभोरने लगे, जिनके

कारण बार बार करवटें बदलनी पड़तीं। जिप्सी युवक पास में ही वेहला लिये बैठा था। अक्सर, जब कभी भी मन खराब होता, उसे कोई बढ़िया गत बजाने के लिये कहता। वह मेरा रुख पहचानने लगा था। उसीके हिसाब से कोई वेदना अथवा उत्साह भरा संगीत वह मुझे सुना दिया करता और मेरी तबीयत बहल जाया करती। पर उस दिन उससे कुछ कहने की इच्छा नहीं हो रही थी।

आवारागर्दी का जीवन होने के कारण अपने आप पर काफी झुँझ-लाहट आ रही थी। मेरे मन में बार बार आता—

'आखिर इस तरह की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है ? न घर न द्वार, बात पूछने वाला भी कोई नहीं ; और सवेरा होते ही यह सोचने लगना कि आज रोटी किस तरह मिल सकेगी, और शाम होते ही इसकी चिन्ता करने लगना कि कहीं सोने का ठिकाना लगे ! भला इस तरह की जिन्दगी में भी कोई लुत्फ है ? इस तरह की जिन्दगी को तो नीरस, आनन्द-रहित और मुर्दा-दिल ही मानना पड़ेगा।'

मैं क्यों इस प्रकार का हूँ, और मेरा जीवन क्यों ऐसा बन गया है—ऐसे प्रश्न बार बार मन में उठने लगे। पर इससे विभिन्न प्रकार का जीवन किस प्रकार का हो और वह शुरू भी किस प्रकार किया जाय ?

इस प्रश्न के उत्तर में एक बात जम कर बैठती जाती थी कि चाहे जो भी हो, हवा के साथ बहते चलने से मेरे जीवन में कोई सुधार नहीं हो सकता।

उस दिन तीसरे पहर जिप्सियों ने वहाँ से अपना डेरा उठाया। उन्होंने अपना सब असबाब समेट, और बच्चों की गिनती कर बोझाई कर ली। गाड़ी की सब खिड़कियाँ बन्द कर ली गयी। एक प्रौढ़ा स्त्री अपना लहँगा फैला कर कोचवान की जगह जा बैठी। एक हाथ से वह

अपने बच्चे को छाती का दूध पिलाने लगी और दूसरे हाथ में उसने घोडा हाँकने का चाबुक ले लिया। बूढ़े जिप्सी ने उसे कुछ हिदायत दी जिसके बारे मे मैंने यही समझा कि वह कूच की दिशा बतला रहा है।

चाबुक दिखाते ही गाड़ी चल पडी। पहिये घर्र-घर्र कर लुढ़कने लगे। गाड़ी के भीतर बन्द बच्चों की चेंचामीची का सुर उस घर्र-घर्र के सगीत का अन्तरा बनने लगा। यह संगीत धीरे-धीरे क्षीण होता गया और एक घुमाव पर जा कर गाड़ी भी दृष्टि से ओझल हो गयी।

परिचित बेहले वाले युवा जिप्सी और बूढ़े सरदार के साथ मैं पैदल आगे बढ़ा। उन दोनो की दृष्टि रास्ते के किनारे की सब चीजों पर अटकती हुई आगे बढ रही थी। एक सेब की डलिया का मालिक अपने माल के पास दिखाई नहीं दिया। आसपास से लोगों का ध्यान भी उस ओर नही था। बूढ़े ने देखते ही देखते बड़े इतमीनान से सात-आठ सेब अपने झोले मे डाल लिये और अपने चेहरे की शान्ति तथा कदमो का हिसाब पहले जैसा ही कायम रखता आगे बढ़ा। झोले मे डाले जाने की अगली बारी एक मुर्गी के बच्चे की आयी। झोले से बाहर निकलने के लिये जब उसने व्यग्रता दिखाई तो बूढ़े ने अपने चेहरे पर बिना शिकन लाये गला दाब कर उस बच्चे को सदा के लिये शात कर दिया।

हम लोग शहर के बाहर निकल आये। पास मे ही एक नाला था। उसके किनारे बगीचे से घिरा किसी किसान का मकान था। बगीचे के चारो तरफ किसी प्रकार का घेरा न रहने के कारण अनायास ही वहाँ प्रवेश किया जा सकता था। जिप्सियों की देखादेखी मैं भी एक वृक्ष की आड़ मे जा खड़ा हुआ।

तितली का पीछा करती हुई एक बच्ची हमारी ओर आ रही थी। मालूम पड़ता था जैसे तितली ही उसके साथ खेल रही हो। वह उड़ कर किसी झाड़ी में जा छिपती ; बच्ची उस झाड़ी की परिक्रमा करने लगती और जब वह निराश होकर पीछे लौटना चाहती तो ऐन उसी मौके पर ठीक उस बच्ची के गालों को चूमती हुई तितली उड़ कर आगे की एक और झाड़ी में जा छिपती।

बच्ची अब हमारी ओर, हमसे पाँच-सात ही कदम दूर, आ पहुँची थी। उसकी बड़ी-बडी नीली आँखे तितली को ढूँढ रही थीं। उसके बाँये हाथ मे मक्खन-चुपड़ी रोटी का एक टुकड़ा था, पर उसकी याद भूल कर उसने उसे यों ही उँगलियों से झुला रखा था। उसका आधा-खुला मुँह तितली को बस पुकारने ही जा रहा था।

और बूढा जिप्सी उस बच्ची के पीछे पहुँच गया था। दबे पाँवों, अपने दोनों हाथों में अपना कोट फैला कर बच्ची को पकड़ने के लिये वह धीरे-धीरे आगे बढता जा रहा था। अभी थोड़ी देर पहले मैंने उसे इसी तरह मुर्गी के बच्चे को पकड़ते देखा था। उस बच्चे के छटपटाने और अन्त में गला दबा कर उसके मारे जाने का दृश्य मेरी आँखों के आगे नाच गया। बिजली की भाँति मन में यह आशका दौड़ गयी कि तितली पकड़ने वाली अशंकित बच्ची का भी कही दाना चुगने वाली मुर्गी की बच्ची का ही हाल न हो! बूढ़े का कोट अब बच्ची के रेशमी बालों को ढकना ही चाहता था कि—

'शैतान कही के!' मैं एक-ब-एक चिल्ला उठा।

एक छलाँग में बूढा वृक्ष की ओट मे जा छिपा। बच्ची मेरी भाषा नही समझ पायी। वह अपनी जबान मे मुझसे तितली का पता पूछने लगी। मैं भी उसकी तितली ढूँढ़ने लगा। तितली पत्तों के बीच छिपी दिखाई दी। चारों तरफ की आहट को शात रहने का इशारा

करते और एकटक तितली की ओर देखते हुए मैंने अपने दोनो हाथ ऊपर उठाये।

"खन्...न् . न्—" आवाज हुई। तितली उड़ गयी।

मैंने देखा, मेरे एक पाँव में खरोंच लगाता हुआ एक चमकता हुआ छुरा मिट्टी जा धँसा है। सर ऊपर उठाते ही, बूढ़ा जिप्सी दाँत पीसता हुआ सामने खड़ा दिखाई दिया। उसने मुझे वैसे हा चुप खड़े रहने का इशारा किया। वेहले वाले जिप्सी ने छुरा उठा लिया था।

बच्ची की दृष्टि उन लोगो पर पड़ी। उसने उन लोगो से अपनी तोतली बोली मे पूछा—"तुम क्या चाहते हो?"

"अपनी रोटी दे दो!" युवा जिप्सी ने हाथ फैला दिया।

बच्ची ने उसके हाथ मे रोटी दे दी। फिर मेरी ओर देख उसने अपनी तितली ढूँढ़ देने के लिये मुझसे कहा।

जिप्सी दबे पाँवों वृक्षों के आड़ ही आड़ बगीचे से निकल बाहर के रास्ते पर जा पहुँचे थे। वे आगे बढ़े। मैं उनकी ओर एकटक देख रहा था। एक बार उन्होंने पीछे फिर कर देखा। इस समय बूढ़े ने अपने हाथ में छुरा ले लिया था। अपनी ओर ताकता देख उसने छुरा तान कर मुझे धमकाया। दाँतों से कस कर उसने अपना निचला होंठ दबा रखा था। युवा जिप्सी उसका हाथ पकड कर आगे खीच ले चला।

मैं उनसे विपरीत दिशा की ओर आगे बढ़ा।

मेरा आगे का रास्ता धूल से भरा था। दूर के एक गाँव के मकान की खपरैलों पर सूर्य की अन्तिम लाली चमक रही थी। किसी-किसी मकान की चिमनी से धुआँ भी निकल रहा था, जिसे देख कर मेरे मन मे आया—

'वहाँ अवश्य ही लोग गरमागरम काफ़े तैयार कर रहे होंगे। रोटियों पर मक्खन लगाया जा रहा होगा। शायद आलू भी उबल रहा होगा। पर क्या मुझे भी कुछ मिलेगा? चलूँ देखूँ! यदि न मिला तो कही और आगे देखूँगा।"

यह 'कही और' कहाँ पर है, यह स्पष्ट रूप से मालूम नही था, पर संसार में कहीं न कहीं स्थान मिल ही जायगा, इतना विश्वास अवश्य था।

उस रास्ते पर जितना ही आगे बढा, अपना भविष्य उतना ही अन्धकारमय दिखाई दिया।

खुले मैदान मे आ जाने पर क्षितिज बहुत दूर पर दिखलाई देता, मेरे भीतर के नैराश्य के बादल घने बन जाया करते और पॉव मुश्किल से आगे बढते। कभी-कभी क्षितिज की ओर एकटक देखता हुआ थोडी देर के लिये बैठ जाता, पर अधिक देर आराम नही कर पाता। दिल बोल उठता—

'आगे बढो। विश्राम का अवसर नही।'

एमिल

जिन्हें बाध्य होकर सदा भटकना पड़ता है, ऐसे लक्ष्यहीन आवारों के लिये दिन का समय काटना कठिन नही होता , पर ज्यों-ज्यों सन्ध्या होने लगती है, उनके चेहरे का रङ्ग फीका पड़ने लगता है। उस समय उन्हे ऐसा मालूम होने लगता है कि वे सचमुच ही समाज से अलग किये गये व्यक्ति हैं। इच्छा न रहने पर भी ऐसे आवारे अपने को कभी-कभी कुत्तों तक से बदतर समझने लगते हैं, क्योंकि जहाँ कुत्तो-जैसे प्राणियों को तो लोग अपने दरवाजे बैठ रहने-भर को स्थान दे देते हैं, वहाँ उन्हे रात बिताने-भर की मिन्नत करने पर भी मनुष्य होने के नाते फटकार और दुत्कार ही सुननी पड़ती है।

इस प्रकार की दुत्कार सुनने का भय मन में जमे रहने के कारण मैंने एक घर का, सड़क की ओर का, जंगला बहुत डरते हुए धीरे-धीरे खटखटाया। कोई उत्तर नही मिला। फिर अगले घर का जङ्गला खट-खटाते हुए कुछ कहना चाहता था; पर गला ऐसा सूखता हुआ दिखलाई दिया कि शब्द उच्चारण करना कठिन हो रहा था। इस बार भीतर से आवाज आई—'कौन है?'

'मैं ठहरने का स्थान चाहता हूँ।'

'होटल आगे है।'

कई लोग ऐसे भी मिले जो ठहरने की मिन्नत करने पर मुझे 'शैतान के घर' जाने की सलाह देते।

इसी प्रकार मैं गाँव के दूसरे किनारे जा निकला। मौसम भी अच्छा नहीं था। हवा तेज थी और सर्दी भी बढती जा रही थी। भूख के मारे पेट मे चूहे कूदने लगे थे। नीद के कारण आँखें भारी हो आयी थीं। एक बार इच्छा हुई कि रास्ते पर ही सो रहूँ। पर सर्दी और हवा का ही नहीं, रात में किसी मोटर-लारी के उधर से आ निकलने का भी भय था।

रास्ता छोड़ कर खेत की ओर आगे बढ़ा। उधर घास रखी जाने वाली एक झोपड़ी थी।

मैं सूखी घास की ढेरी पर उठना ही चाहता था कि उसी समय ऊपर से किसी की आवाज आई। मैं वह जबान नही जानता था। उस आदमी ने और कई जबानो मे अपना प्रश्न दुहराया। अन्त मे उसकी एक जबान मेरी परिचित निकल आई।

'तुम किस टापू से आ रहे हो?' उसने पूछा था।

'बहुत दूर के!' मैंने उत्तर दिया।

'इस दुनिया की सतह पर कोई भी टापू दूर पर नहीं बसा है!' उसने दृढ़ विश्वास के भाव से कहा।

'हिन्दुस्तान क्या यहाँ से दूर नही?''

'वह क्या दूर है? मैं तो जापान तक की पचीसों बार सैर कर आया हूँ! वहाँ की लड़कियाँ अपने को सजाना खूब जानती हैं! पर यह अभी रहने दो! पहले यह बताओ, क्या तुम्हे भी इस गाँव में कोई मछली नहीं मिली?''

'मछली कैसी?'

'जो अपने साथ सुलाती!'

'नही ।'

'हॉ, आज मौसम भी खराब है। अच्छे मौसम मे वे हमेशा खुशी खुशी घर मे ठहरा लेती हैं; पर खराब मौसम रहने पर ऐसे देह फाड़ने लगती हैं मानो हमारे देखने-भर से ही वे गंदी हो गई हों। ऐसी ही तो पाजी, बेहूदी, मूर्ख होती हैं औरतें! मेरा बस चले तो उन सबको भट्ठी में झुकवा दूँ। खैर, आज की रात किसी तरह कट जाय, फिर उन्हे चखाऊँगा मजा।'

'आप कहॉ तक जायँगे ?' मैंने पूछा।

मै उत्तर की ओर जा रहा हूँ! सीन किनारे के एक गॉव मे मेरी चाची रहती हैं, उन्ही के यहॉ जाने का इरादा है। और तुम ?'

'मैं भी उधर ही जाऊँगा।'

'फिर तो तुम हमारे साथी हुए। दूर तक साथ रहना है, तो फिर हम लोग परिचित हो जायँ—मेरा नाम है एमिल बौरा।'

'क्या कहा, बौराह ?' उसके नाम का हिन्दी-अर्थ मन मे आ जाने के कारण मैं हँसने लगा।

'मैं तुम्हारे देश की भी यात्रा कर चुका हूँ।'

'तुम अभी आ कहाँ से रहे हो ?' मैंने पूछा।

'मादागास्कर से। कल शाम को हमारा जहाज मार्सेई मे आ कर लगा। मैं सीधे अपनी ग्रीक बीवी के यहॉ गया। हम लोगों ने खूब गुलछर्रे उड़ाये। आज तीसरे पहर जब मेरे पास कानी कौड़ी भी नही रही तो उसने अपने घर से मुझे निकाल दिया। पास मे रेल-भाड़ा तक नहीं, इसीलिये आगे का सफर जैसे तैसे ही करूँगा।'

'वैसे, करते क्या हो ?'

'सब कुछ। अभी दो-तीन साल से जहाज में खलासी का काम करता था। सारी दुनिया छान डाली। कितने ही मुल्कों की जबानों और

ज़नानो से वाकिफ हो गया। पर अब समुद्र देखते देखते तबीयत ऐसी ऊब गयी है कि वहाँ एक मिनट भी मन नही लगता। अब तबीयत मादमोजेल (कुमारी) की तरफ जा रही है। अपने ही देश मे कोई काम करूँगा और मौज से रहूँगा।'

वह आगे भी कुछ कहना चाहता था पर सर्दी के कारण मेरे दाँतों के कटकटाने की आवाज सुन कर रुक गया।

'तुम्हें सर्दी लग रही है ?' उसने पूछा, 'तुम भी कैसे निरे भोले बच्चे हो। तुम्हे यह पहले ही कहना चाहिये था। मेरे सिरहाने रखा कम्बल तुम ले सकते हो।'

उसने अपना कम्बल मेरी ओर बढ़ाया। थोड़ी गरमी मिलने पर भूख की ज्वाला और भी तेज हो गयी। इस बार भी एमिल ने ही पूछा—

'और तुमने कुछ खाया है कि नहीं ?'

'नहीं।'

'तुम बड़े बेवकूफ आदमी हो! तब से अभी तक माँगा क्यों नही ? बड़े मूर्ख हो! जानते नही, मैं थोड़ी-बहुत रसद हमेशा साथ रखता हूँ! बेवकूफ! बेवकूफ कहीं के!'

उसने कागज़ में लपेटे मक्खन-चुपड़ी रोटियों के कुछ टुकड़े मेरी ओर बढ़ा दिये। थोड़ी देर मे मेरे मुँह से कट-कट दाँत बजने की आवाज के बदले रोटी चबाने की मधुर ध्वनि आने लगी।

'सब भकोस जाओ!' एमिल ने मुझे हुक्म देते हुए कहा—'रसद बचा रखने की ज़रूरत नहीं! कल और मिल जायगी।'

बाहर से साँय-साँय—हवा की आवाज आ रही थी, पर अब मुझे उसकी परवा नहीं थी। नींद आने मे अब कोई बाधा नही रह गई थी।

अगले दिन सबेरे नींद खुलते ही एमिल अपना रात का बचा

क़िस्सा सुनाने लगा—

देखो, अभी पिछले साल की ही बात लो, इन्हीं दिनों मै एक ऐसे महल मे रहा करता था जिसकी सफ़ाई और देखरेख करने के लिये ही दस नौकर रखे गये थे।'

'दस नौकर ! यह कहाँ !' मैंने पूछा।

'अपनी टिप्पस जमाने के लिये उस समय मैं दक्षिणी फ्रांस के रिवियेरा में जा पहुँचा था। शाम को एक घड़ी वाले के घर धावा बोलने का विचार पक्का हो चुका था। अगर भाग्य से उसी दिन पेरिस की एक धनाढ्य औरत न मिल गयी होती तो शायद आज जेल की हवा खाता होता। वह औरत वहाँ नहाने के लिये आई थी।

'आ......वह बड़े ही मजे की औरत थी। बिलकुल रुई के गालों सी गुलगुली। मैं समुद्र-किनारे घूमने निकला था, देखा कि वह घुटने-भर पानी मे पैर पटक रही है; मैंने किनारे से ही छलाँग मारी और पानी के नीचे-नीचे पचास गज पर जा निकला। वह हँसने लगी। मैं उसके पास गया और उसे तैरना सिखलाने लगा। नहाने के बाद उसने कहा—'हम लोग साथ ही खाना खाने चलें।' खाते समय उसने कहा—'तू कैसा सुन्दर जवान है। तेरा शरीर भी कैसा गठीला है और मेरी उम्र भी अधिक नहीं। मेरी शादी हो चुकी है। पर पति हमेशा व्यापार के लिये यात्रा किया करता है। अकेले मेरा मन नही लगता। तुझे मै अपना मोटर-ड्राइवर बना कर रखूँगी, मेरा महल भी पेरिस में सीन-किनारे बड़ा सुन्दर है।'......

'सक्षेप मे यही कि मैं उसके साथ रहने लगा और वह मेरी बीवी बन गयी। जीवन मे जितना सुख भोगा जा सकता है, उसमे कुछ बाकी नहीं रहा।'

मैंने मन ही मन कहा—सचमुच तू 'झूठ का खजाना' नाम की एक अच्छी पुस्तक लिख सकता है।

एमिल का किस्सा जारी रहा—'उस औरत के घर कमी केवल एक बात की थी। वह सीक सी पतली और मुझसे बहुत अधिक उम्र की थी। साथ ही, पाउडर इतना लगाती थी कि उसके पास नाक दबा कर बैठे-बैठे दम घुटने लगता था। मन वहाँ नही लग रहा था। इसीलिये उसकी एक जवान नौकरानी से दोस्ती कर ली। मालकिन ने यह तीसरे ही दिन ताड लिया और मुझे अपने घर से निकाल दिया। मै हाथ हिलाता हुआ वहाँ से रास्ता नाप निकल आया।'

'ख़ाली हाथ?' मैंने पूछा।

'खाली हाथ ही बहुत था। पहले से मालूम रहता तो कुछ किया भी जा सकता था, पर जवाब देने के वक्त उसका चेहरा ऐसा तमतमाया हुआ था कि मुझे भय होने लगा—कहीं झूठमूठ चोरी की तोहमत लगा कर पुलिस के हवाले न कर दे।'

'बड़ा अच्छा मौका हाथ से निकल जाने दिया।'

'हॉ, जरा उस नौकरानी ने असावधानी से बेवकूफी कर डाली। नही, चालाकी तो मुझमे इतनी है कि उस औरत-जैसी कितनी को सरे-बाजार बेच आ सकता हूॅ।'

'फिर यों आवारे-जैसे क्यो मारे-मारे फिरते हो?' मैंने उसे टोका।

'हमेशा ऐसा मारा-मारा थोड़े ही फिरूॅगा! घात लगाये रहता हूॅ; रिवियेरा मे जैसी टिप्पस जम गयी थी वैसे ही मौके की ताक मे हूॅ। नही तो काम करते-करते अपना दिमाग़ कुंद कर लेना—यह मुझे पसन्द नही।'

जब से मैंने एमिल को देखा, मुझे ऐसा जान पड़ने लगा मानो साधारण आदमियों से भिन्न वह कोई विचित्र प्रकार का आदमी है और इसीलिए उसकी ओर अपना ध्यान खिंचने से भी मै अपने को नही रोक

पा रहा था। मैं उसे और अधिक निकट से देखने तथा समझने की चेष्टा करना चाहता था।

उसके सामने कोई भी क्यों न बैठा हो, वह अपनी बातों की ऐसी झड़ी लगाता कि उनका ताँता टूटने पर ही नहीं आता। अगर उसकी बातें सुननेवाले ऊब कर सामने से हट भी जाते, तो भी उसके बोलने का सिलसिला जारी ही रहता। कितनी ही बार मैंने उसे कुत्तों तथा गाड़ी में जुते घोड़ों से बातें करते देखा था! उसके भीतर कभी न खाली होने वाली बातों की एक खान थी और स्वभाव मे इस प्रकार की व्याकुलता थी जो उसे एक क्षण भी स्थिर नही बैठने देती। इन्हीं दोनों बातों का यह परिणाम था कि बोलते रहने में ही उसे एक प्रकार का मजा सा मिलता था तथा इसी से भीतर-ही-भीतर उसे सन्तोष सा होता था।

उसकी बातें सदा किसी औरत से सम्बन्ध रखने वाली हुआ करतीं। ये बातें वह पूरे उस्ताद की तरह कहा करता और वह भी इस खूबी से कि यदि किसी मडली में कोई दूसरी चर्चा छिड़ी रहती, तो उस मंडली का ध्यान तुरन्त ही अपनी ओर बदल लेने मे वह प्रायः सफल ही हो जाया करता। बातों का सार सदा एक ही तरह का रहता—और वह यह कि एमिल का जीवन बिना किसी कठिनाई और रुकावट के अब तक बीतता आया है और वह भी औरतों की उस पर कृपादृष्टि रहने के कारण; मानों उसके भीतर कोई ऐसी चीज थी जो संसार भर की सारी औरतो को बरबस आकर्षित कर सकती थी और उसके द्वारा एमिल के मार्ग की सारी बाधाएँ नष्ट-भ्रष्ट करके उसके लिये सब तरह की सुविधाएँ जुटा देने में समर्थ थी। शायद वह अपने को भीतर-ही-भीतर औरतों को फँसाने में सिद्धहस्त जादूगर मानने लगा था।

फिर भी उसकी बातों से यह नहीं प्रकट होता था कि औरतों के

लिये उसके दिल मे कोई इज्जत है, वह उनके विषय में बडे ही बुरे तथा घृणित शब्दो का व्यवहार किया करता और ऐसा दिखलाता मानों उनके रोएँ-रोएँ से वह भली भाँति परिचित है, और उसके लिये उनमे ढूँढने की कोई विशेष बात ही नही रह गई ।

एक अच्छी बात एमिल मे यह थी कि वह कैसी भी परिस्थिति में अपने-आप पर खीझता नही था। अगले दिन ही मैं उससे भली भाँति परिचित हो गया। पर उस दिन हमे फिर एक खलिहान वाले झोपड़े मे रात बितानी पड़ी। नीद टूटते ही मैने कहा—

'ऐसे कष्ट के साथ मैंने और कभी रात नही बिताई ।'

एमिल मुझे डाँटने लगा—

'जब अपने ऊपर यों खीझना था तो फिर ऐसे जीवन की ओर पाँव ही क्यों रखा ?'

उसके लिये इस प्रकार की यात्रा करना बिलकुल स्वाभाविक सी बात हो गई थी, पर मैं हिम्मत हारने लगा था । वह मेरे मन का भाव ताड़ गया। उसने कहा—

'मैं जहाँ तक तुम्हारे चेहरे से अन्दाज लगा सका हूँ, तुम्हारा कोई निश्चित कार्यक्रम नही—नही न ?—यह मै पहले से ही जानता था। तो कुछ दिन मेरे नेतृत्व मे यात्रा करो; बहुत सी बाते सीख जाओगे। क्यों ?'

'अच्छा······'

'हिचकने की कोई बात नही। बडा ही अच्छा विचार है। अब यहाँ से उत्तर के रास्ते मे बड़ा शहर केवल एक ही आयगा—लियौं। हम लोग उसे बाँये-बाँये से ही पार कर जायेगे और अगर मन में आयगा तो उसकी एक झाँकी भी कर लेंगे। उसमे कोई पाप तो लगने का नहीं।

'ख़ैर, तुम इस रास्ते से परिचित नही। फिर मेरा प्रस्ताव सुनो। यहाँ से हम लोग लियौं, डिजौं होते हुए सीन नदी तक चले, फिर आगे देखा जायगा। मेरा यह प्रस्ताव तुम्हे मजूर है न?'

मैंने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया।

'हिचक के साथ नही, दृढतापूर्वक कहो—'हाँ एमिल का प्रस्ताव उस्तादी से खाली नही होता। हम लोगों ने जो रास्ता चुना है वह दो कारणों से। सड़क पर यदि कोई मोटर वाला हमे चढ़ा ले तो बडा ही अच्छा है; यदि उसने साथ नहीं लिया तो नदी मे बहुत से स्टीमर चला करते हैं, वे ही चढा लेंगे। पैदल उतनी दूर का रास्ता केवल बैल या ऊँट ही पार कर सकते हैं, आदमियों के वस का नही; क्यों? मुझे उतनी दूर पैदल चलने मे थकावट तो नहीं, पर शरम आयगी। जब ऊँट की तरह सारा रास्ता पैदल ही पार करना था तो फिर आदमी का चोला ही क्यों धारण किया?

'और दूसरी एक बात यह अच्छी है कि इस रास्ते पर के गाँवों से मैं परिचित हूँ, किसान भोले-भाले तथा बेवकूफ होते ही हैं और उनकी औरतें तथा लड़कियाँ आम तौर पर तन्दुरुस्त और खूबसूरत होती हैं, खासकर डिजौं के इलाके में सब कुछ ऐसा ही है। वहाँ मेरी एक प्रेयसी भी रहती है, उससे भी तुम्हे मिलाऊँगा। ऐसी प्रेयसियाँ वहाँ हज़ारों मिलती हैं, तुम भी एक ढूँढ लेना।'

जब कभी हमें खलिहान में रात बितानी पड़ती, उसके दूसरे दिन नींद टूटने पर एमिल कहा करता—

'मुझे भूख लग आई है। अगला गाँव यहाँ से दूर नही, चलो वहाँ चलें! इस गाँव में कुछ नहीं मिलने का, इसका नाम हम लोग दे दें—'कुत्तों का घर।'

गाँव निकट आने पर वह कभी भी चुपचाप आगे नहीं बढ़ता था। जब कभी किसी औरत को सामने से आते देखता, अपने होंठ जरूरत से ज़्यादा सिकोड़ सीटी देता हुआ भद्दे गाने गाने लगता। औरतों की ओर आँखे फाड़-फाड कर घूरता मानो उनसे छेड-छाड़ करना चाहता हो, पर नहीं, जब वे बगल से गुज़रने लगतीं तो रास्ते के बिलकुल किनारे हट जाता और औरत के कुछ दूर चले जाने पर उसके बारे में नुकता-चीनी करने लगता। एक बार उसने एक औरत को दिखलाते हुए कहा—

'देखो न! यह औरत कैसी मटक-मटक कर चलती है। मालूम पड़ता है, जैसे अपने सामने किसी को कुछ गिनती ही नहीं, पर साथ ही अपने मन-ही-मन यह भी भली भाँति जानती है कि उसे पूछने वाला सारी दुनिया छान आने पर भी कोई पुरुष नहीं मिलेगा। चटक-मटक यदि किसी को सीखनी हो तो ऐसी ही औरतों से सीखी जा सकती है। ऐसी औरतों के लिये हमारे कोष में उपयुक्त शब्द है—ठढी चा।'

एमिल का गाँव वालों से भोजन माँगने का भी ढग निराला था। एक बार उसने एक स्त्री के पास जाकर कहा—

'दयालु माँ! रोटी का एक टुकड़ा दीजिये। अपनी काकी के पास जा रहा हूँ।'

'मैं तेरा या तेरी काकी का कुछ खाये बैठी हूँ?' उस औरत ने कहा। फिर मुझसे कहने लगी—'ऐसे-ऐसे चोर रिश्ता जोड़ जोड़ कर घर मे घुसने का रास्ता देखने आया करते हैं।'

एमिल आँखे बड़ी-बड़ी निकाल कर कहने लगा—

'मैं तुझे ठोक-पीट कर तेरे साथ रिश्ता जोड़ूँगा।'

'ऐ—जरा इनकी बातें तो सुनो ! रोटी माँगने आये हो या मार-पीट करने ?'

इतना कहती हुई वह औरत घर के भीतर चली गई। उसके जाते-जाते एमिल ने उससे कहा—

'तू मेरी चचेरी काकी लगेगी, इसीलिये इतनी बातें बना कर रोटी देगी।'

मुझे यह डर लग रहा था कि वह स्त्री स्वयं डडा लेकर निकलेगी या किसी पुरुष को बुलाती आयगी जो हम दोनो की खबर लेगा। मैंने एमिल के कान मे धीरे से कहा—

'चलो, भाग निकले।'

मेरा भयभीत चेहरा देख एमिल जोरो से हँसने लगा। इसी समय वह औरत काठ की एक बड़ी तश्तरी मे चाय से भरा हुआ एक बर्त्तन, दो प्याले और मक्खन-चुपड़ी हुई रोटियो के कई टुकड़े लिये बाहर निकली और मेरी ओर देखती हुई बोली—

'तुम्हारा साथी तो रिश्ता जोड़ना खूब जानता है !'

भोजन कर हम लोग आगे बढ़े। थोड़ा दूर निकल जाने पर मैंने कहा—

'मैं तो समझने लगा था कि रोटी के बदले हमें डडे मिलेंगे।'

'तुम क्या समझते हो कि वह दया करके हमे कुछ देती ? यदि हमारी हालत पर उसे तरस होता तो ऐसी सूखी रोटी, जो उसके किसी काम न आती और जिसे अपने कुत्ते तक को नहीं देती, हमारे आगे फेंक जाती। पर तुमने तो देखा—रोटियों में मक्खन लगा था। यह हम लोगों पर दया आने के कारण नही, बल्कि हमसे डर जाने के कारण हुआ। आखिर हम भी तो आदमी ठहरे। हमसे उन्हे डर रहता है कि यदि वे हमे खाली हाथ और नाराज होकर लौट जाने देगी तो उससे उनका अपना निज का ही भला नहीं। घर में चोरी हो जाने अथवा

डाका पड़ने का भय उन्हे और भी अधिक सताता रहता है, इसीलिये सूखी रोटी ही नही, मक्खन और काफ़ी भी दिया।'

'लेकिन यदि उसके घर मे कोई पुरुष होता तो?' मैंने पूछा।

'तो क्या कर लेता? हम-जैसे लोगो से सभी डरते हैं; केवल हम लोग अपना मूल्य आप नही समझते। डॉट कर माँगने से अगर कुछ मिल सकता है तो दाँत दिखाने से क्या फ़ायदा?'

मै एमिल के चेहरे की ओर ध्यान-पूर्वक देखने लगा। उसने सर हिलाते हुए कहा—

'हॉ, हाँ, हमे यह कभी भी नही भूलना चाहिये कि हम भी आदमी हैं।'

जब कभी हम किसी गाँव से बाहर निकल आते, सड़क बिलकुल सीधी तथा रास्ता बहुत दूर तक दिखाई देता; मालूम पड़ता मानो उस सड़क का कहीं अन्त ही नही। सामने जितनी दूर तक निगाह दौड़ाई जा सकती, दौड़ा कर एमिल कहा करता—

'आख़िर हमें जल्दी ही क्या पड़ी है? पैदल चल कर उतनी दूर का रास्ता तो पार करना नही है, फिर फ़िजूल पॉव थकाने से क्या फायदा? यहाँ बैठ कर ठीक मौके देखते रहे; यदि किसी मोटरवाले ने चढा लिया तो जल्दी ही सीन-किनारे पहुॅच जायँगे।'

'पर जब कोई चढ़ा ले तब तो?'

'इतनी मोटरें आती-जाती हैं, कोई-न-कोई तो चढ़ा ही लेगी, और यदि किसी मनहूस ने न भी चढाया तो भी हमारा इसमे घाटा ही क्या है? दुनिया मे हम चाहे जहाँ भी रह सकते हैं, हमारे लिये सब जगहे बराबर हैं। काकी के यहाँ ही कौन सी राजगद्दी ख़ाली पड़ी है कि वहाँ पहुॅचने के लिये हम उतावले बनें।'

पर ऐसा बहुत कम ही होता था कि हमें कोई मोटर या लारी वाला चढ़ा न लेता। एमिल ड्राइवरों की ओर इस भाँति देखता मानो उनसे उसकी बहुत दिनों की पुरानी जान-पहचान हो। वह कहता—

'चाचा! तुम कहाँ जा रहे हो? लियौं, डिजौं? हाँ, वहाँ मेरी भी एक नानी रहा करती है। बहुत दिनों से उसे नहीं देखा। वह अकेली और विधवा है, पर उसके यहाँ ठहरने पर वह खिलाती-पिलाती बड़ी मुस्तैदी से है। हाँ, जरा उसकी नाक बेतरह ऊँची है। अगर तुम कृपा न दिखलाओगे तो फिर आज रात को भी मारे-मारे फिरना होगा ना चाचा?......'

एमिल के इस प्रकार बोलने का ढङ्ग ही निराला था। चाहे जिस शहर का नाम कोई लेता, सब जगह उसका कोई न कोई रिश्तेदार निकल आता। अपने रिश्तेदारों का वर्णन भी वह इस रोचक ढङ्ग से करता कि उसे बीच में टोकना किसी को अच्छा न लगता।

जिस दिन उसके मन में उमंग रहती उस दिन शाम को कहा करता—

'डरने की कोई बात नहीं है। आज की रात पिछली रात-जैसी नहीं होगी। आज हम आराम से और कम्बल ओढ कर सोएँगे।'

अचरज की बात तो यह थी कि सचमुच ही हमें उस दिन अवश्य ही वैसी जगह मिल जाया करती।

एमिल के साथ की यात्रा के कई दिन इसी भाँति आनन्दपूर्वक कटे। एक दिन हम लोगों ने एक रोटी वाले के घर में डेरा डाला। सोने का स्थान दिखलाने के लिये एक जवान लड़की हमारे साथ चली। एमिल उससे कहने लगा—

'आप बहुत ही सुन्दर हैं। आपके भूरे बाल तो गजब ढाते हैं।'

उत्तर मे लड़की केवल थोड़ा मुसकराई और वहाँ से चली गई। कुछ देर तक हम लोग चुपचाप बिछौने पर लेटे रहे। फिर एमिल कहने लगा—

'यह लड़की असल में अपनी सुन्दरता के कारण किसी को पागल बना दे सकती है। तुम्हे कैसी लगी ?'

मैंने एमिल को चिढ़ाने के ख्याल से कहा—

'तुम तो अलौकिक सुन्दरियों की बाते किया करते थे ! क्या यहीं पर तुम्हारी सुन्दरता की भावना सीमा पार कर गई ?'

उत्तर मे एमिल ने भी चिढ कर कहा—

जब कभी अपनी जिन्दगी में उतनी लड़कियो से तुम्हारी जान-पहचान और मुलाकात हो जाय जितनी से मैंने की है, तब कही मुझसे उनके विषय में बाते करना। तुम इस मामले मे अभी बिलकुल नासमझ बच्चे हो।'

उसी दिन से एमिल के साथ मेरी खटपट शुरू हो गई।

पर उससे आगे की यात्रा मे कोई बाधा नही पहुँची। हमारी यात्रा की यही परिपाटी बन गयी थी कि जब कभी मोटर वाले किसी स्थान पर उतार देते तो आगे पैदल चलने के बजाय, हम उसी स्थान पर रुके रहते और पीछे से जो कोई भी मोटर आती उसे रुकने के लिये इशारा करते। यदि मोटर वाला चढ़ा लेता तब तो ठीक ही, पर यदि उसने हमें न चढ़ाया अथवा गाड़ी बिलकुल खड़ी ही नही की तो एमिल उसकी ओर देख कर उसे भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगता। एक बार मैंने उससे कहा भी कि आखिर मोटर वाले हमें चढा लेते हैं तो इसमें उनकी कृपा ही तो है ; पर यदि नही चढा लेते तो उन्हे गाली देने का हमें हक ही क्या है ?'

इसके उत्तर में एमिल ने कहा—

'इन मोटर वालो को ही क्या हक है कि वे गाड़ी मे बैठे-बैठे धूल उड़ाते चलें जब कि हमारे पास कोई गाड़ी नही है ?'

एमिल का यह तर्क मेरी समझ मे नही आया, पर मैंने इस विषय में उससे अधिक जिरह भी नहीं की।

कई सप्ताह तक यात्रा करते रहने के बाद हम लोग सीन नदी के किनारे के उस गाँव मे पहुँचे। नदी बिलकुल शात थी। उसके किनारे के वृक्ष भी मूक हो खड़े थे। नीले आकाश में शरद ऋतु के हलके बादल पनीर के रङ्ग का छाता लगाये चहलकदमी करते दिखाई दिये। सारी प्रकृति स्वप्नाविष्ट थी।

भय और अकेलापन दोनो ही मुझसे बहुत दूर पर जा खड़े हुए। अब वे मुझे गिरफ्तार नही कर सकते थे। फ्रेंच जबान अब कानों के पर्दे पर व्यर्थ आघात करने वाली नहीं रही। उसका बहुत सा रस छन-छन कर भीतर जा पहुँचता और कभी-कभी वहाँ एक अजीब तरह की गुदगुदी सी पैदा हो जाती। कई तरह के स्रोत, जिनका मुँह अब तक बन्द था, इस समय उस गुदगुदी से ही खुलने लगे थे।

नदी किनारे लेटा-लेटा घंटों स्वप्न देखता रहा। आकाश की तरह क्षितिज भी मेरी ही रक्षा के लिये तत्पर दिखाई दिया। बहुत दूर तक मैदान ही मैदान ! सब शांत ! कभी-कभी एक पत्ता आकर मेरी छाती पर लोटने लगता।

आदमियो की आवाज बिरले ही सुनाई पड़ती। उस रास्ते से जानेवाला कोई किसान अपने मुँह मे लम्बी पाइप लटकाये यदि कभी सामने आ निकलता तो मेरी ओर देख कर मुसकराता हुआ मुझे 'बोंजूर' कह कर नमस्कार कर लेता। कभी कभी उधर से किसान-कुमारियाँ

जाती दिखाई देती। उनकी आँखें चमकती हुई और चंचलता से भरी होती। वे सर ऊँचा करके अपना खुला सीना फुला कर चलती थी। उनकी चाल और उनका रूप मेरे लिये अत्यन्त आकर्षक था। उनमे से किसी को पहले कभी न देखने पर भी मै उन्हे अपरिचित मानने के लिये तैयार नही था।

एमिल द्वारा जगाये जाने पर मैंने उससे पूछा—

'आखिर हम आ कहाँ पहुँचे ?'

नदी किनारे पर के गाँव की ओर देखते हुए उसने उत्तर दिया—

'फ्रास के हृदय मे !'

सीन-किनारे

वह मेरे सामने खड़ी थी। मुझसे छोटी। उसकी दृष्टि मेरे चेहरे पर थी। पता नहीं, यह कम रोशनी रहने के कारण था अथवा अन्य किसी कारण, कि मुझे उसकी आँखें मखमल जैसी नर्म और स्निग्ध दिखायी पडी। उनका रंग काला था। और लडकियों से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता था कि उसकी आँखें युवकों को लुभा लेने में वैसी कुशल नहीं होंगी। बाल काले और सुनहले के बीच के रंग के थे। गालों पर बहुत कम पाउडर लगा था जिससे उनका स्वाभाविक गुलाबी रङ्ग छिप नहीं पाया था। पोशाक ग्रामीण थी।

'मेरी बहन आनेत्त,' उससे परिचय कराते हुए एमिल नेकहा—'काकी की एकलौती सन्तान !'

उसका ललाट चूम कर वह अपनी काकी से बातें करने लगा। संकोची स्वभाव रहने के कारण आनेत्त का मेरे जैसे अपरिचित नवयुवक से बातें करने का साहस नहीं हो रहा था। पर इस समय वैसा करने के लिये बाध्य होने के कारण निरपराध हरिणी की भाँति चारों तरफ़ दृष्टि फेरने लगी थी।

उसे भली भाँति देखने का मेरे लिये यह पहला ही मौका था। फिर भी मैं मन ही मन सोच रहा था कि फ्रेंच रमणियों का सौन्दर्य

मापने का अगर उसे ही पैमाना बना लूँ तो कही बहुत अधिक गलती तो नही होगी ?

कन्धे उसके ढके थे। यूरोपीय चित्रकारो की दृष्टि से देखने पर शायद उसे पुरानी रोमन टाइप की श्रेणी में रखा जा सकता था। उसकी ठुड्डी पतली और ललाट गोल था। चेहरे की विशेषता यह थी कि उसके मन का प्रत्येक भाव उस पर तुरंत ही व्यक्त हो जाता था।

मुझे अवाक हो अपनी ओर ताकते देख शायद वह कुछ कहना चाहती थी। पर शर्म के मारे उसका मुँह आधा ही खुला रह गया। मुसकराहट द्वारा लज्जा को ढक रखने की कला मे वह प्रवीण दिखाई दी।

'मुझसे डर रहे हैं ?' आखिर उसने प्रश्न किया।

उत्तर मे मैं सिर्फ मुसकरा कर रह गया।

'मैं तो काटती नही !' उसने विश्वास दिलाया।

'यह मैं अनुमान कर सकता हूँ।' धीमी आवाज मे मेरे मुँह से निकला।

'फिर इस प्रकार मुझे ताक क्यों रहे हैं ? काठ की भाँति इस तरह हमें खड़ा देख लोग क्या कहेंगे ?'

मैं एमिल की ओर देखने लगा। वह अपनी काकी को मुझसे परिचित होने के दिन का वृत्तात सुना रहा था। उसके पास की दो कुरसियाँ खाली थी। मैं उधर ही जाने लगा।

आनेत्त का चेहरा लाल हो आया था। यह क्रोध के कारण था अथवा लज्जा के कारण, यह मैं ठीक-ठीक समझ नही सका। हम लोग आमने-सामने बैठ गये। उसकी माँ ने हम लोगों की ओर देखते हुए पूछा—

'तुम लोग परिचित हो गये ?'

'मुझे ये कुत्सित समझते हैं,' आनेत्त ने उत्तर दिया—'इसीलिये शायद मेरे साथ बातें नहीं करते।'

इस इलाके का प्राकृतिक दृश्य जैसा आडम्बर-शून्य था उसी प्रकार एमिल की चाची का स्वभाव भी सरल था। कपडे वे इस तरह पहनतीं कि उनकी उम्र वस्तुतः जितनी थी उससे ज़्यादा ही दिखाई देती। हाव-भाव में सांसारिकता की अपेक्षा धार्मिक रुचि अधिक स्पष्ट थी।

उनके पति महासमर के समय वरदो के लडाई में मारे गये थे। फ्रेंच सरकार से उन्हे जो आजीविका मिलती थी उसी से वे अपना तथा अपनी लडकी का खर्च चलाती थी। सीधा-सादा जीवन था। किसी बात की कमी नही थी। और सयोगवश कभी किसी चीज की कमी पड़ी भी तो वह उन्हे खटकती नही थी।

समय उनका आनेत्त और उसकी सखियों को सजाते रहने में ही जाता। उनके लिये वे ऊन की तरह-तरह के किस्म की पोशाक बनाया करती, और फूलों के मौसम में दोनों वक्त दुष्प्राप्य फूल चुन चुन कर उनके गुच्छे बना बना उन्हे उपहार दिया करती।

घर में अतिथियो के आकर ठहरने पर उन्हें बड़ी खुशी होती थी। मुझे भी, जब तक मेरी खुशी हो, अपने घर में रहने की उन्होंने इजाजत दे दी थी। धार्मिक मामलों मे दान आदि करने के लिये उनके पास पैसे नही बचते थे, इसीलिये मुर्गियों के पालने और अण्डे बेचने का वे व्यवसाय आरम्भ करती चाहती थी।

'न हो, तुम अण्डे बेच लाया करना!' मुसकराते हुए मुझसे कहा—'तुम्हारे मुँह से फ्रेंच सुन कर लोग जरूरत न रहने पर भी अण्डे खरीद ले जाया करेंगे।

मेरे मुँह से टूटी-फूटी फ्रेंच सुन कर उन्हे सचमुच ही खुशी होती थी। फ्रेंच सिखाने के इरादे से वे मुझे सरल भाषा मे पेरिस और वहाँ की लड़कियों के बारे मे हँसाने वाली कहानियाँ सुनाया करती।

मैं ज्यो-ज्यों अधिकाधिक तादाद में फ्रेंच शब्द समझता जाता था, त्यो-त्यों मेरे परिचितों का भी दायरा बढ़ता जा रहा था। अपनी उम्र के लोगो से परिचय घनिष्ट होने लगा। एमिल की बातों का भी अब साराश नहीं, बल्कि उसके शब्दो का वास्तविक अर्थ तक समझने लगा था।

फ्रेंच लोगों के बीच रहने का यह मेरे लिये पहला ही मौक़ा था। पहली दृष्टि मे वे बड़े आमोदप्रिय और बहुत कुछ लापरवाह तबीयत के दिखाई दिये। वे अव्वल दर्जे के मिलनसार भी जँचे। पर साथ ही उनकी यह खूबी भी स्पष्ट हो गयी कि उनके जीवन मे सबसे अधिक और सबसे ऊँचा स्थान औरते ही लेती हैं। एक क्षण के लिये मुझे यह भी सन्देह होने लगा कि कही फ्रास की औरते जादू तो नही जानती? नहीं तो भला पुरुषों को इस प्रकार मन्त्र-मुग्ध करके रख पाना उनके लिये क्योंकर सम्भव हो पाता है?

वहाँ की औरतो को मैं बड़े गौर से देखने लगा। कुछ दूर तक तो यों ही वहाँ का समाज इसकी इजाजत देता था, पर जब मेरी दृष्टि किसी पर एकटक हो जाती और बड़ी देर तक मै उसी भाँति उसे ताकता रहता तो वह नाराज हो जाती। और मैं शब्दो द्वारा नम्र बन जाने की कला से अब भी अनभिज्ञ था, यहाँ तक कि उसके यह पूछने पर भी कि—'मेरे सौन्दर्य पर तुम्हारा इतना अविश्वास?'—मै उसे कोई समुचित उत्तर न दे पाता।

खूब भली-भाँति देख लेने पर मैं अपने आप से प्रश्न करता—

'और जिस फ्रांस ने क्रांति की थी, वह कहाँ गया?' वह तो मुझे कहीं भी दिखाई नहीं दिया। कभी कभी अपनी दृष्टि पर ही अविश्वास करके कहता—'यह सम्भव नहीं! मैं भूल कर रहा हूँ। इनके भीतर गहरे तह में और भी कुछ अवश्य ही छिपा है। मैं उसे देख नहीं पा रहा हूँ।'

जब इसकी चर्चा मैंने एमिल से की, तो वह हँस पड़ा और सामने रखी अंगूर की शराब का ग्लास खाली करने के लिये मुझसे कहा।

'तुम तो जानते हो, मैं पीता नहीं।' मैंने उत्तर दिया।

'तुम सचमुच ही बड़े मनहूस हो! अगर फ्रेंच तौर-तरीक़ा सीखना चाहते हो, तो यह तुम्हारे लिये अनिवार्य है।'

'दरअसल?' मैंने प्रश्न किया।

'अजी, हमारी जाति जरमन लोगों जैसी बेतुकी दार्शनिकों की जाति नहीं! हम कलाकार हैं, हमारी जाति ही कलाकारों की जाति है। अधिक विश्लेषण करने और गहरे उतरने पर हमें भय लगता है कि हमारे सामने का सारा सौन्दर्य ही खिसक जायगा; इसलिये हम कभी उस बखेड़े में नहीं पड़ना चाहते! देखो, अब तुम क्वाड्रिल नृत्य सीखना शुरू करो। यह नाच बहुत आसान है। फिर देखना, हमारे जीवन में कैसी मस्ती और मौज है! यह नाच तो तुम्हें आनेत्त ही सिखला देगी।'

जब मैं आनेत्त की ओर ताकता या उससे फ्रेंच पाठ पढ़ता, अथवा क्वाड्रिल नृत्य सीखता तो एमिल अक्सर जर्मन जबान में गुनगुनाया करता—

'पारी, पारी, वो दि मेडल सिन्द सो शोन!'
(सुन्दरी पेरिस की अप्सरायें हैं कुमारी)

'किस बेतुकी जबान मे तुम यह गुनगुनाया करते हो?' यह प्रश्न जब मैं उससे कर बैठता तो वह उत्तर देता—

'अजी, यहाँ पर अगर मैं फ्रेंच मे गुनगुनाऊँ तो मेरी कद्र ही कौन करेगा? मेरी कुछ विशेषता तो जरूर ही रहनी चाहिये।'

उसकी दलील मैं ठीक ठीक समझ नही पाता, तब पूछता—

'आखिर उस विशेषता की आवश्यकता ही क्या है?'

'इतना भी नही समझ सके तो तुमने नाहक ही इस दुनिया में जन्म लिया।' वह उत्तर देता।

'फिर भी?'

'बिना पेरिस की झाँकी लगाये तुम आदमी बन ही नही सकते! यहाँ अपनी जिन्दगी तुम फिजूल ही बरबाद कर रहे हो।'

'और तुम भी तो यही हो?'

'मेरी बात छोड़ दो! मैंने एक बहुत भारी गलती की है, उसी का फल अभी कुछ दिन और मुझे भोगना पड़ेगा।'

'वह गलती कौन सी है?'

'तुम्हे बता दूँ? अच्छा सीख रखो! रुपये और लड़कियाँ—दोनों मे से अगर सिर्फ एक को चुनने का कभी मौका आये, तो हमेशा रुपये को ही चुनना! हम फ्रेंच लोग ऐसा कर नही पाते, यही हमारी सबसे बड़ी गलती होती है। हम लोग हिसाब करना नही जानते। भाव के ही पीछे ढुलक पड़ते हैं। हमारी बुद्धि खुलती है तब, जब हमारी जवानी ढलने लगती है। सूद के बल मौज उड़ाने के लिये, बैंक मे रुपया जमा करने की कोशिश हमारी तब शुरू होती है। हम अपने इस आदर्श मे सफल भी होते हैं, पर उस समय तक काफी देर हो जाती है। मौज करने की उम्र ही बीत जाती है।'

वह और भी आगे कुछ कहना चाहता था, पर इसी समय सामने से

एक जवान लडकी को गुजरते देख होंठ सिकोड़ कर सीटी देने लगा। पास आने पर उसने छेड़ा—

'आप तो गजब की सुन्दर हैं। आपकी तलवार सी भौहों ने मुझे दरअसल कत्ल कर डाला।'

लड़की हमारी ओर एक नजर डाल अपने बतीसो दाँत दिखाती वहाँ से चली गयी। एमिल मुझसे कहने लगा—

'तुम्हारा क्या खयाल है? गाँव की यह सुन्दरता भी किसी को पागल बना दे सकती है! पर फिर भी यह पेरिसियन सुन्दरी का मुक़ाबला नहीं कर सकती! इसके शरीर पर ढङ्ग के कपडे भी नही! सारे शरीर को बिलकुल जेलखाना बना रखा है! किसी तरफ़ से भी झाँकी लगाने की सम्भावना नहीं! तभी तो कहते हैं—गाँव की कुमारियाँ बडी असभ्य होती हैं! तुम्हे यह बात खटकी नही?'

'मैंने तो कभी पेरिस देखा ही नही, फिर तुलना ही कैसे कर सकता हूँ।'

'बेवकूफ! पेरिस की सब कुमारियाँ ही अप्सराओं को मात करती हैं! बेवकूफ! बेवकूफ!'

कभी कभी वह बहुत रात बीते लड़खड़ाता हुआ आता। उसका सूट कीचड़ से सना और कई स्थानों पर फटा हुआ रहता। चेहरे पर भी कई स्थानो से खून निकलता होता। उसने कैसा मजा लूटा होगा, यह उसके चेहरे से साफ मालूम हो जाता! पर वह स्वयं गर्व के साथ सीना तान कर कहता—

'सीधे पेरिस से आ रहा हूँ।'

उससे और कुछ पूछने की आवश्यकता नही पड़ती। वह पेरिसियन कुमारियों के सौन्दर्य की तारीफो की झडी लगा दिया करता।

उसकी वर्णन-शैली ऐसी सुन्दर होती थी कि मेरी आँखों के सामने एक अनोखे, अब तक अपरिचित, सुन्दर, मधुर, ऐश्वर्यमय संसार का चित्र खड़ा हो जाता। इस प्रकार के संसार का भी पृथ्वी पर होना सम्भव है, यह बात पहले पहल उन्ही दिनों मेरे मन मे स्थान ग्रहण करने लगी।

'एक बार उसने बताया कि वह दो साल पहले अपनी खलासीगिरी की तीन महीने की तनखाह लेकर इतमीनान से 'लुव्र' देखने गया था। वहाँ पर सङ्गमरमर की बनी नग्न स्त्रियो की अनेक अवस्थाओ और भावों की मूर्तियाँ उसने देखी। उन्हींके काट के आधार पर वह आदर्श सुन्दरी पाने के लिये पागल हो उठा। जब शाम हुई और यह सीन नदी के किनारे टहलने निकला, तो ठीक उन्ही मूर्तियों के समान एक सुन्दर स्त्री स्वयं हँसती हुई उसके सामने आयी और उसे लुभाने की तरह तरह की चेष्टाये करने लगी। वह सुन्दरी उस पर बिलकुल मुग्ध हो गयी। यहाँ तक कि पैसे चुक चलने पर भी वह अपने यहाँ उसे रखे रहने के लिये तैयार थी।

'फिर तुमने उससे शादी क्यों नही कर ली?' मैंने पूछा।

'उसकी सबसे बड़ी कमी यह थी कि मेरा भी जिन्दगी भर भरण-पोषण कर सकने भर धन उसके पास नही था।'

एक दिन रात को अपने लिहाफ में भली भाँति लिपट भी नहीं पाया था कि बाहर कोलाहल सुनाई दिया। खिडकी से बाहर झाँक कर देखा, तो रास्ते पर एक अजीब तरह का जुलूस जाता हुआ दिखाई दिया। सबसे आगे आगे एमिल—'पारी, पारी' वाला अपना प्रिय गीत गाता जा रहा था। उसके साथ उसीके हमउम्र गाँव के और भी बहुत से युवक थे। इन युवकों मे कई लड़खड़ाते

हुए, मस्त, झूमते-झामते अपना अलग राग अलापते जा रहे थे। मालूम पड़ता था कि किसी भी स्वर मे कोई क्यो न गाये, युवकों के उस 'कंसर्ट' में, बिना रस-भङ्ग होने की आशका किये, वह स्थान पा ही जायगा।

युवकों के पीछे पीछे बहुत सी युवतियाँ थी। वे युवकों के राग मे कभी कभी 'डूएट' की तरह अपना ऊँचा स्वर मिला देती थी। जिस युवती का स्वर तीव्र होता, उसे दो युवक दोनो ओर से पकड़ कर हवा मे झुला देते। युवती 'ऐ! ऐ!' करती और युवकों के उसे छोड़ देने पर भी वह उनके कन्धे से लटकती चलती।

रास्ते के किनारे वे जिस किसी युवा-युवती को देखते उसे भी खींच कर अपनी जमात मे शामिल कर लेते। जो सकोची स्वभाव के थे अथवा जिनके लिये शर्म नाम की कोई चीज होती वे जुलूस के पास आने के बहुत पहले ही रास्ते से दस कदम दूर हट कर खडे हो जाते।

आगे के चौराहे पर जुलूस पहुँच जाने पर मुझे होश आया कि मैं भी कमरे से न जाने कब निकल कर उनकी जमात की ओर खिचता जा रहा हूँ। सब लोग उस गाँव के सर्वप्रधान काफेघर (चायखाने) 'काफ़े पारी' मे पहुँचे। उस दिन के उत्सव के लिये उसका नाच-घर पहले से ही सजाया गया था। उस अवसर के बारे में दरियाफ्त करने पर एक परिचित ने कहा---

'आज हम जितने युवक यहाँ पर इकट्ठे हुए हैं, प्रायः सबका जन्म एक ही साल मे हुआ है। कल सवेरे से हम फ़ौजी तालीम के लिये अपने यहाँ के फौजी विभाग को सुपुर्द कर दिये जायँगे। दो साल तक हमे सैनिक बन कर फौजी बैरेकों में रहना पडेगा। वहाँ का जीवन बड़ा ही सख्त और रूखा-सूखा होता है, इसीलिये हम उसके

बदले आज ही बहुत सा सुख और मजा बटोर कर उपभोग कर लेना चाहते हैं।'

युवतियाँ उन युवकों को बिदाई देने आयी थी। उनके प्रस्ताव के अनुसार, अठारहवी शताब्दी मे लाँके द्वारा आविष्कार किये गये क्वाड्रिल नृत्य के साथ उत्सव आरम्भ हुआ। दो दो जोड़े एक साथ मिल कर नाचने लगे। अपने यहाँ का भाषा मे यदि हम इसका यौवन-नृत्य नाम दे तो अधिक उपयुक्त होगा। युवा-युवती जी खोल कर अपने भीतर के छिपे भाव इस नृत्य द्वारा व्यक्त करना चाहते थे। इस नृत्य के लिये साधारणतया जितने उछाल मारने की आवश्यकता होती है, जवानी की उमङ्ग मे आकर युवा-युवती उससे कही अधिक उछाल मार रहे थे।

पर साथ ही इस नृत्य का एक और विशेषता थी। गहरे मिलन का भाव व्यक्त करने वाला यह नृत्य था इसमें सन्देह नहीं, पर साथ ही, नाच के प्रत्येक घेरे के समाप्त होने के समय, वियोग दरवाजा खट-खटा रहा है—यह भी व्यक्त हुए बिना नही रहता था।

यह वियोग का दुःख नृत्य के सिवा और कई ढग से प्रदर्शित हो रहा था। यदि एक दल उस वियोग को जड़-मूल से भुला डालने की इच्छा से अपनी युवावस्था की सगिनी का गहरा आलिगन कर रहा था तो साथ ही एक और ऐसा दल भी था, जो उस गहरे आलि-गन की सार्थकता पर अविश्वास कर पहले से ही वियोग का सामना कर पाने के लिये एक और ढङ्ग से अपने को तैयार कर रहा था। इस दूसरे दल के लोग एकाध बार रस्म अदा करने के ख़याल से नाच कर एक कोने में जा बैठते। इन जोड़ो में कई ऐसे भी दिखाई दिये, जिनमें शुरू-शुरू में बड़ी गाढी दोस्ती थी, बीच मे आकर मनमोटाव हो गया

था और आज फिर वे विदा लेने के समय, अपनी प्रथम-प्रेम वाली सीढी पर आकर खड़े होने की चेष्टा कर रहे थे। इस ढङ्ग की आलाप-प्रिय युवतियों की भीतर की अधीरता इस समय फूटी पड़ती थी, वे इसे दवा कर सिर्फ़ अपना आन्तरिक प्रेम प्रकाश करने की चेष्टा कर रही थी।

जब इसी ढङ्ग के कई जोड़ों का एक ही स्थान पर जमघट लगने लगता तो उनमें से सकोची स्वभाव वाले जोड़े उठ कर काफ़ेघर के बाहर वाले मैदान मे आ जाते। यहाँ इस समय चाँदनी छिटक रही थी। किसी किसी लड़की ने प्रथम यौवन के प्रेम की स्मृति-स्वरूप अपने सर के कई बाल उखाड़ कर कागज में लपेट अपने अपने प्रेमी युवको को भेंट किये।

'मैं तुझे कभी भी नही भूलूँगा।' एक लड़के ने कहा।

'और देखो! तुम उस ऊपर के चमकते हुए तारों को रोज इसी समय देखा करना। तुम्हारी स्मृति में मैं भी ऐसा ही किया करूँगी।' उसकी प्रेयसी ने जवाब दिया।

'उस तारे मे मैं तुम्हारी शक्ल देखा करूँगी।' एक और लड़के ने प्रेम-विह्वल होकर कहा।

'और मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी! और किसी भी लड़के के साथ कभी घूमने नहीं निकलूँगी।' उसकी प्रेयसी ने विश्वास दिलाया।

'और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि प्रति सप्ताह तुम्हे एक न एक खत अवश्य लिखूँगा।' एक युवक अपनी संगिनी का हाथ पकड़ कर कह रहा था।

'नही! नहीं!' उसकी प्रेमिका अविश्वास सा दिखा रही थी—

'बैरेक में रहते रहते पुरुषो का मिजाज बदल जाता है! तुम प्रतिज्ञा करो कि तुम सारी जिन्दगी मुझे ऐसा ही प्यार करते रहोगे।'

और ये जोड़े अपने आँसुओं से तर रूमाल आपस में बदलते और आखिरी बार आलिङ्गन कर पाने के मौके की प्रतीक्षा में बाहर जगमगाते हुए तारों से भरे आसमानी चँदोवे के नीचे घण्टों सिहरते और काँपते हुए खड़े रह जाते।

'आओ, आओ! मौज करो!' काड्रिल का सिर्फ यही ताल मेरी समझ में आ रहा था! आँखों के सामने जो कुछ भी चल रहा था, वह मुझे खिलती जवानी का खेल ही मालूम हो रहा था। पर यह खेल अकेले नहीं खेला जा सकता था।

'अजी, यह सब सौन्दर्य तो देखने के लिए नहीं, भोग करने के लिए है।' एक परिचित युवक ने मुझसे कहा—'और तुम चुपचाप बैठे हो!'

'सचमुच सौन्दर्य से इतना डरने की क्या ज़रूरत!' मैंने मन ही मन स्थिर किया और उठा। मैंने हॉल में चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। आनेत्त एक कोने मे अकेली बैठी थी। उसकी दो सहेलियाँ काड्रिल में शामिल हो गयी थीं। वह गम्भीर मुद्रा धारण किये उनका नाच देख रही थी।

उसके चेहरे पर एक ख़ास तरह का संघर्ष चलता दिखाई दे रहा था। उस मण्डली मे क्यों आयी, शायद इसके लिये वह अपने आपको फटकार सुना रही थी। उठ कर शायद जाना भी चाहती थी, पर किसी विशेष प्रकार के असमञ्जस के कारण वैसा कर भी नहीं पाती थी। उसकी भी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। मैंने झुक कर उसे नमस्कार किया। उसकी आँखें मुझे बुलाती हुई सी नजर आयीं।

एक मकान मे ही रहने के कारण अब तक हम लोगों की दोस्ती इतनी बढ़ गयी थी कि हम एक-दूसरे को 'तू' कह कर सम्बोधन किया

करते थे।

'तू तो आज की इस मण्डली में विदेशी दिखाई दे रही है!' मैंने उससे कहा।

'कैसे?'

'ऐसी गम्भीर मुद्रा धारण किये बैठी है!'

'फ्रास मे गम्भीर लोग भी तो रहते हैं।'

'नहीं!' मैंने जोर देकर कहा।

'तब तो अच्छा है कि तुम लुई-चौदहवे नही हुए; नही तो मुझे फ्रास के बाहर कर दिया होता।'

मैं उसके पास बैठ गया। उसके लहरदार बाल ठुड्डी तक पहुँच रहे थे। कपड़े अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक चटकीले थे। आँख, गाल और होठ मुसकरा रहे थे।

'तू नाचती क्यों नही?' मैंने पूछा।

'तुम यह सगीत समझ पाते हो?'

'यह तो ऐसा-वैसा ही भ्रुम-श्राम दीखता है!'

'फिर भी बड़ा सुन्दर है। तुम्हे अच्छा नही लगता?'

'एक बार वैसा कोमल स्वर सुन लेने पर ध्रुव-धाम बड़ा कर्कश मालूम पड़ता है।'

यह तो सगीत का चढ़ाव-उतार है। तुम जानते हो यह किस गीत का स्वर है?'

'नही।'

'तुम्हारे सामने कहने में शर्म आ रही है!'

'तो कागज पर लिख दो।'

मैंने पाकेट से कागज-पेन्सिल निकाल कर उसके सामने रख दिया। उसने उस पर कुछ लिखा और कागज मोड कर मेरी जेब-

में रख दिया। जब मैं पढ़ने के लिये उसे निकालने लगा, तो उसने मेरा हाथ पकड लिया और कहा—

'अभी नही! जब मै न रहूँ तब पढना।'

जब अगले नाच का बाजा आरम्भ हुआ तब हम दोनों भी उठ खड़े हुए। नाचने की जगह तक गये। उसने मेरे हाथ पकड़ने के लिये अपने हाथ भी ऊँचे किये। वे मुझे मानो दूध मे धुले नजर आये। मैं अवाक हो उन्ही की ओर देखता रहा, उन्हे पकड़ने के लिये अपने हाथ ऊँचे नही कर सका।

'ये तो रूखे व्यवहार के लिये नही बनाये गये—' मैंने मन ही मन कहा—'यह स्निग्ध कोमल पदार्थ तो देख कर ही सन्तोष किये जाने लायक है।'

नाच आरम्भ हो गया था। नाचने वालों की मण्डली के बीच उस प्रकार खम्भे की तरह दूसरों का भी रास्ता रोककर खड़ा रहना अच्छा नही दिखाई देता था। पर मै कुछ निश्चित भी नहीं कर पाता था।

'क्यों, क्या हुआ?' उसने पूछा।

'नही—' कह कर मैं वहाँ से अपने स्थान की ओर बढ़ा।

उसने नाच के एक टैक्ट के समय अपना पाँव पटक कर मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा और कहा—

'लोग क्या कहेगे? कम से कम मुझे अपने साथ तो ले चलो! जहाँ से उठा लाये, वहाँ तक तो पहुँचा दो!'

हम लोग फिर अपनी पुरानी जगह पर जा पहुँचे। वह बैठ भी नही पायी थी कि उसी समय एक युवक ने आकर उसके सामने अपना सर झुकाया और अपने साथ नाच करने के लिये आमन्त्रित किया।

नीद खुलने पर कभी कभी उसकी साँस सुनाई देती। अब उस पर भी सन्देह होने लगा था। अब उस तरफ की हवा भी आती तो उसमे उसके और किसी से बात करने की 'फुसफुस' सुनाई देती।

उससे बोल-चाल तक बन्द हो गई थी। पहले उसके साथ पता नही कितने तरह के खेल रोजाना खेला करता था। पर अब अपना अहकार छोड़कर यदि वह कभी उन खेलों को फिर से खेलने के लिये कहती भी तो मैं उसे रूखा जवाब दे देता था। पहले उसे अपने निकट से निकट देखते रहने मे ही आनन्द आता था, पर अब उसे दूर, और भी दूर, देखना चाहता था। अब भी वह चौबीस घण्टे पहले की ही तरह मेरे निकट रहा करती थी, पर वह कितनी दूर हो गयी है मैं यही मापने की कोशिश किया करता था।

उसकी माँ की दृष्टि से अपना यह परिवर्तन छिपा रखना चाहता था, पर इसमें सफल नही हुआ। उन्होंने स्वय ही एक दिन आनेत्त को और मुझे चुपचाप अलग अलग किताब लिये पढते हुए देख कर पूछा—

'मालूम पड़ता है, तुम दोनों मे कुछ खटपट हो गयी है?'

वह चुप रही। मैंने ही उत्तर दिया—

'नहीं तो!'

पर उन्हें अपने नकार पर विश्वास नही दिला सका। उन्होंने हम दोनो मे फिर से मेल करा देने की तरह तरह की चेष्टाये कीं। पर मुझे अपने और आनेत्त के बीच का फ़ासला बढता ही जाता दिखाई दिया।

यह फासला इस हद तक बढ गया कि उस घर मे मेरा और टिक पाना कठिन हो गया। उस स्थान का प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक वस्तु, यहाँ तक कि वहाँ की प्रकृति तक मुझे दुःख देती हुई महसूस होने

लगी। जब आनेत्त के चेहरे पर भी उसी तरह के दुःख की एकाध रेखायें देखने लगा तो परिस्थिति मेरे बर्दाश्त के बाहर की हो गयी। पता नहीं एक दिन सवेरे वह मुझसे क्या पूछने आयी थी! बिना उसके चेहरे की ओर ताके अथवा प्रश्न सुने ही झिड़क कर मैंने कहा—

'मैं आज ही पेरिस चला जाता हूँ।'

फ्रेन्च लोगों को पेरिस के नाम में ही अद्भुत जादू भरा दिखाई देता है उनसे उसके सौन्दर्य का ऐसा विवरण सुन चुका था कि उस नाम के लेते ही मेरी आँखो के सामने एक बड़ी कोमल तथा सुन्दर स्त्री का चेहरा नाचने लगता था। वैसी सुन्दरता वास्तव में मैंने कभी अपनी आँखों नहीं देखी थी, पर चित्र आदि देख कर सौन्दर्य की पराकाष्ठा की जो कल्पना की जा सकती है, वही पेरिस की कल्पना करते समय मेरी आँखों के सामने मँड़राने लगती थी। अपनी कल्पना के सौन्दर्य का भी मैं उसे अगाध समुद्र देखने लगा था। इसीलिये सीन-किनारे अतृप्त रह जाने पर उस समुद्र मे गोते लगाने का जी चाहता था।

रवाना होने के दिन एमिल ने अपनी एक दोस्त लड़की का ठिकाना देते हुए कहा—

'पेरिस पहुँच कर उसे मेरा नमस्कार जतला देना। वह तुम्हे ठहरने की जगह दे देगी। तुम इतने से ही सन्तोष करना। यदि तुमने दोस्ती आगे बढाने की कोशिश की, तो भाई, और लाज-लिहाज नहीं, हमारी-तुम्हारी अनबन हो जायगी।'

अपनी फ्रेंच काकी से विदा लेकर मैं चुपचाप घर के बाहर निकल आना चाहता था। पर आनेत्त दरवाजा रोक कर खडी हो गयी।

रोटी और फल का एक पैकेट रास्ते के व्यवहार के लिये उसने मेरे हाथ मे पकड़ा दिया। चुपचाप।

मुझे अपने व्यवहार पर शर्म आने लगी। पछताने लगा। स्पष्ट देखने लगा कि व्यर्थ ही उतना कष्ट स्वयं झेला और उसे भी दिया। पर इसके लिये उससे माफी माँगने का साहस नही हो रहा था।

'तुम्हे गम्भीर फ्रेंच लड़कियाँ पसन्द नहीं ?' मुसकराहट द्वारा अपनी पीड़ा छिपाने की चेष्टा करते हुए उसने पूछा। पहले पहल जिस दिन उसे देखा था ठीक वैसा ही चेहरा मेरे सामने था।

'तुम्हे मैंने नाहक......' उसने मेरा मुँह अपने हाथ से बन्द कर दिया।

'पेरिस पहुँच कर मुझे याद रखोगे ?'

'यह भी पूछना पड़ेगा ?'

'क्या जानूँ ! मेरे जैसी बदसूरत फ्रेंच लड़कियाँ सबको कष्ट ही पहुँचाया करती हैं।'

'उस कष्ट के ही कारण वे अधिक प्रिय बन जाती हैं।'

'तुम मुझ पर नाराज नही रहोगे, तो पेरिस आकर तुमसे मिलूँगी।'

'वादा रहा ! जरूर आना ?'

'अपना पता तो लिख ही भेजोगे ?' उसने पूछा।

मन को खूब समझा-बुझा कर तैयार रखने पर भी अपने भीतर के धक्के का आघात सगीन मालूम पड़ रहा था। घाव अब तक शायद पूरा पूरा भर नहीं पाया था।

'आडियो (बिदा) !' मैंने कहा।

'नही, नहीं, ओ रिवआर (फिर मिलने तक) !'

'ओ रिवुआर !' मैंने दोहराया ।

'फिर—' कस कर मेरा हाथ दबाते हुए उसने पूछा—'दोस्त ?'

'हाँ, दोस्त ।'

'यह मुझे पेरिस ले जायगा—' नदी में चलने वाले छोटे स्टीमर पर सवार होते-होते मै सोच रहा था—'वहाँ एक दिन लुव्र में जाकर अपनी आँखों सगमरमर की मूर्तियाँ देखूँगा और सन्ध्या समय सीन नदी के किनारे 'उस' अलौकिक सुन्दरी का प्रेम-पात्र बनूँगा ।'

'हाँ, उधर ही तो पेरिस है ।' पश्चिमोत्तर दिशा की ओर देख कर मैने निश्चय किया ।

उस तरफ के आकाश मे एक विचित्र प्रकार की लाली थी। वह मुझे आनेत्त के गाल जैसी दिखाई दी। अधखिली कली सा रंग खिल रहा था ।

धीरे-धीरे बादलों ने आकर उसे ढक लिया। अँधेरा छाने लगा। सीन-किनारे के गाँव की रोशनी भी लुप्त हो गयी।

जहाज आगे बढ़ता जा रहा था ।

द्वितीय खण्ड

जेनेट

जिस समय मैं पेरिस पहुँचा, नवम्बर का महीना समाप्त हो चला था। जिधर दृष्टि जाती, उधर ही पृथिवी रुई के फाहों के समान नई गिरी हुई 'स्नो' (बर्फ) से ढकी हुई दिखलाई देती थी। लोगों तथा सवारी-गाडियो के दिन भर चलते-फिरते रहने के कारण सड़क तथा उसके किनारे के रास्तों पर बर्फ कीचड़-जैसी दीखने लगी थी। हवा में सूखापन था और अधिक चहल-पहल रहने वाले स्थान भी उजड़े हुए से दीखते थे।

सुबह सात बजे से ही एमिल की दोस्त लड़की की तलाश कर रहा था ; पर कही भी पता न चला। जिस रेस्तराँ का उसने पता दिया था उसे पेरिस मे ढूँढ़ निकालना कोई आसान काम नहीं था! मेरी जबान समझने की तो बात ही दूर रही, लोग मेरा हिन्दुस्तानी रङ्ग ही देख कर दोनों कधे ऊँचे कर विचित्र ढङ्ग से कहते—

'ज-न-से-पा।' (मैं नही जानता।)

जो कुछ अधिक नम्र होते वे 'वी···एकुटे···आले···गोश···' मालूम नहीं क्या-क्या कुछ समय तक बुदबुदाते रहते और फिर जल्दी से अपना रास्ता लेते। जमीन के नीचे चलने वाली रेल मे घण्टों सफर करता रहा। फिर ट्राम, बस आदि से चार घण्टे तक सफर

करते रहने के बाद उस रेस्तराँ का पता लगा। उसकी मालकिन से बातें करने पर पता चला कि एमिल की दोस्त कुछ महीने पहले वहाँ काम तो अवश्य करती थी, पर कई महीने हुए, एक-ब-एक, मालूम नहीं कहाँ लापता हो गयी! कई बार और प्रश्न करने पर झुँझलाया हुआ उत्तर मिला—

'किसे पता? सम्भव है, वह पेरिस मे ही हो—सम्भव है, हिन्दुस्तान, अमेरिका अथवा जहन्नुम को चली गयी हो।'

मेरी निराशा की सीमा न रही।

पर निराश होकर बैठ रहने से काम नहीं चल सकता था। उस रेस्तराँ की मालकिन ने दया कर वह रात रसोई-घर में बिताने दी। मैं बहुत थक गया था, इसलिये गन्दगी की परवा किये बिना एक गोश्त काटने वाली टेब्ल पर सो रहा। मुझे यह विश्वास नही हो रहा था कि मैं सचमुच ही पेरिस पहुँच चुका हूँ।

बीच पेरिस मे ही 'ट्रोकाडेरो' नाम का एक रात्रि-विहार है। यों तो पेरिस मे उससे बढ़े-चढ़े और ससार मे प्रसिद्धि-प्राप्त कई दूसरे स्थान भी हैं, फिर भी 'ट्रोकाडेरो' की एक निजी विशेषता है। उसके सदर दरवाजे पर दोनो ओर जो तख्तियाँ लगी रहती हैं, उन पर लिखा रहता है—'अनमोल अलौकिक अप्सराओं-जैसी औरतें : कम-से-कम कीमत!' इसके अलावा उसकी एक दूसरी विशेषता भी है। सदर दरवाजे के सामने दरबान के स्थान पर अक्सर यूरोप मे विरले पाये जाने वाले रङ्ग के लोग रक्खे जाते हैं, जिससे वे रास्ता चलने वालों का आसानी से अपनी ओर ध्यान खींच सकें और उस घर की आमदनी बढ़ायें। पहले उस स्थान पर अफ्रिका का एक असली हब्शी खड़ा रहा करता था, पर कुछ अर्से से मैं उसी काम पर रख लिया गया था। मेरा रूप-

रङ्ग हब्शियो से बिलकुल विभिन्न होने पर भी उस स्थान-विशेष की परिपाटी के अनुसार लोग मुझे नेगर (हब्शी) के नाम से पुकारा करते थे। मेरा काम शाम के सात बजे से तीन बजे रात तक दरवाजे के सामने खड़े रहना था। 'ट्रोकाडेरो' के भीतर के गरम कमरों की तो बात ही दूर रही, उसके बरामदो तक में प्रवेश करने की मेरे लिये मनाही थी !

उस दिन बाहर सर्दी थी और ठंडी हवा चल रही थी। मैं अपनी तिपाई दरवाजे के बाहर डाल वहाँ से ही सड़क की ओर देख रहा था। सड़क पर आने-जाने वाले लोग बहुत ही कम थे। उस स्थान से होकर गुजरने वालों मे केवल कई-एक विचित्र पोशाक पहने लड़कियाँ थी। स्नो पड़ती रहने पर भी लड़कियों के शरीर पर ओवरकोट नही था। वे नीचे मलमल-जैसे महीन कपडों से बनी पोशाक पहने थीं, जो ऊपर से गरम कोट डाले रहने पर भी कई स्थानों पर खुली दिखलाई देती थी—खासकर गले के नीचे और छाती के ऊपर का भाग तो बिलकुल खुला सा ही था। यदि उनमे से किसी ने खरगोश की खाल का उपयोग भी किया था तो इस प्रकार कि उसे केवल गले मे लपेट लिया था, और इस बात का पूरा ध्यान रखा था कि छाती का ऊपरी भाग खुला तथा बाहर से दिखाई देता रहे। उनके होंठ लाल रङ्ग से तथा चेहरे पाउडर से इस प्रकार पुते थे कि वे हाड़-मास की नही, बल्कि पाउडर तथा रुई के फाहों की बनी दीखती थी। उनकी भौहे उस्तरे से मुँड़ी हुई थी और वहाँ एक काली लकीर सी थी। आँखों की प्राकृतिक पपनियाँ उखड़ी हुई तथा उनके स्थान पर लम्बी-लम्बी कृत्रिम लगी हुई थी। उनके पाँवों की जूतियों की एड़ियाँ बेतरह ऊँची थी और चलते समय उनसे निकलने वाली 'टिक-टिक' की आवाज बड़ी दूर तक सुनाई देती थी। वे केवल सौ-दो सौ गज के फासले के भीतर ही

बार-बार चक्कर लगाया करतीं। यदि उनके माफिक कोई आदमी उन्हे दिखलाई देता, तो वे आसपास के 'शो-विंडो' की ओर देखने लगती। सर्दी के कारण जब उनके पॉव ठिठुरने लगते, तो वे एक विशेष ताल मे उन्हे पटकने लगती।

उन्ही लड़कियो मे से एक 'ट्रोकाडेरो' के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। यूरोप के हज्जामों की दूकानो पर रखे मॉडिलो मे युवा लड़कियों की जो अर्द्धनग्न आकृति दिखलाई जाती है, उस लड़की की शक्ल भी बहुत-कुछ उसके ही समान थी। मेरे सामने आकर एक बार भीतर झॉकते हुए उसने कहा—'आ··· · आज तू वहाँ जा बैठा है। पहले तो तुझे देखा ही नही। समझा था, तू बीमार पड़ गया है। हे··· हे···हे ··हे···सर्दी लग रही है?'

मैंने हॅकार-सूचक सर हिलाया।

'हे···हे···हे···इतने मे ही? अभी तो सर्दी शुरू ही हुई है। अगर अभी से तेरा यह हाल है, तो फिर फरवरी के महीने में क्या होगा? तेरे पास तो ओवरकोट भी है, फिर भी ऐसा सिकुड कर बैठा है! मैं तो बिना कोट के ही स्नो मे खड़ी हूँ।'

'तुझे ओवरकोट की क्या जरूरत? तेरे भीतर तो वैसे ही भट्टी जलती रहती है।'

'हे·· हे···हे···वही तो कहा। मुझसे सभी खुश रहते हैं। मेरे यहॉ से सभी सन्तुष्ट होकर लौटते हैं। जो एक बार आता है, मेरा घर सारी जिन्दगी नहीं भूलता।'

बाते करते समय वह बड़े ही अद्भुत ढङ्ग से अपने शरीर का ऊपरी भाग हिला रही थी। इसी समय उसकी बाई आँख की पपनी एक सेकेण्ड के लिये इतनी फुर्ती से हिली कि मैं अवाक् रह गया।

फिर हँसते हुए उसने कहा—'यहाँ बैठे-बैठे दाँत क्यो कटकटा रहे हो? मेरे साथ चलो, जेनेट के यहाँ सबका स्थान ···।'

वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि एक बार उसकी दृष्टि सड़क पर दौड़ी और वह क़दम आगे बढ़ाती हुई चली गई। उधर से वर्दी-पेटी लगाये गश्त लगाता हुआ एक सिपाही आ निकला। जिस सड़क पर लड़कियाँ टहल रही थी, उधर बिना देखे ही वह चौराहे पर से दूसरी ओर निकल गया। जेनेट फिर मेरे पास आकर कहने लगी—'मालूम नही, इस बेहूदे यमदूत को किस पागल कुत्ते ने काट खाया है कि ऐसे मौसम में भी गश्त लगाने निकला है।'

'आज उस पर ऐसी नाराजगी क्यों? अभी परसो ही तो तुम उससे मीठी-मीठी प्यार की बातें कर रही थी!'

'वह जहन्नुम मे जाये। उस शैतान ने मुझे कम नही सताया है। परसों बुलवार-द-मैदलिन तक मुझे सर्दी मे ठिठुरते हुए जाना पड़ा, तब जाकर उससे पिंड छूटा। शैतान ने मेरी दुर्दशा कर डाली। मालूम नही, हमे सता लेने मे ही इन जल्लादों को क्या मिल जाता है?'

दरवाजे के भीतर से किसी के निकलने की आवाज आई। वह वहाँ से हट गई। भीतर से कोई निकला नहीं। मैं अपने स्थान पर ही बैठा रहा। बाहर स्नो गिर रही थी। रास्ते पर कीचड़ के स्थान पर जमी हुई स्नो दिखलाई दे रही थी। जेनेट फिर मेरे सामने आ खड़ी हुई। इस बार उसने अपने कोट के कालर से कान तक ढक लिये थे। मैंने उसे छेड़ते हुए पूछा—'आज कोई हाथ नहीं आया?'

'मन बड़ा उदास है; सर्दी लग रही है।'

'फिर घर क्यों नही जाती?'

'तेरे लिए रुकी हूँ।'—उसने हँस कर कहा।

'मेरे लिए?'

'मुझे घर तक पहुँचा दे!'

'नहीं।'

वह थोड़ी अपमानित हुई सी दिखलाई पड़ी। अपना वह भाव छिपाते हुए उसने कहा—'मौसम कैसा रूखा है! मन बिल्कुल उचाट हो गया है। अब घर जाती हूँ। फिर कल। विदा! हाँ...'

अपने-आप ये शब्द दुहराती-तिहराती वह आगे बढ़ गई। मैं अपने स्थान पर बैठा रहा!

चारों ओर वही उदासी छाई हुई थी।

क्रिसमस के दिन आये और चले भी गये। हर साल की भाँति इस साल भी पेरिस ने यह त्योहार अपनी शान के अनुसार मनाया। सड़कें कई दिनों तक सजी-सजाई रहीं। शाम के समय दीपावली की भाँति सारा पेरिस नगर कई दिनों तक जगमगाता रहा। आमोद-प्रमोद के स्थान लोगों से ठसाठस भरे रहे। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी नर-नारियों ने अपने भोग-विलास में कोई कोर-कसर नहीं रखी। उन्होंने साल का सारा दुःख भुला दिया और जहाँ तक बन पड़ा, आगे के लिए सुख बटोर कर अपने भीतर भर लिया।

हाँ, मेरे लिए ये दिन कोई विशेष महत्त्व के न थे। मैं इन त्योहार के दिनों में सदा यह मनाता रहता था कि ज्यों-त्यों करके ये दिन जल्दी-जल्दी कट जायँ। इसका मुख्य कारण यह था कि इन दिनों मुझे 'ट्रोकाडेरो' के सामने शाम के छः बजे से लेकर सबेरे के पाँच बजे तक—जब तक मौज करने वाले अतिथि अपने-अपने घर न लौट जाते—बैठे रहना पड़ता था।

जब नये वर्ष का त्योहार समाप्त हो गया, तब मेरे सर का बोझ हल्का हुआ। जिस समय मैं 'ट्रोकाडेरो' से घर के लिए चला, उस

समय भी रास्तो पर बत्तियाँ जल रही थी ; पर रास्ता चलने वाले नही के ही बराबर थे। साँमिशेल की चौमुहानी से अपने घर की ओर मुड़ना ही चाहता था कि मुझे एक ओर कुछ लोगों का ठहाका सुनाई पड़ा। उनके पास पहुँचने पर मैने देखा कि बीच में एक युवती पड़ी है, जिसकी कमर मे स्त्रियो का पहनने वाला नकली रेशम का जाँघिया और ऊपर वैसा ही रेशम से बना हुआ एक जम्पर चिपका है। उसके शरीर के दूसरे कपड़े तथा ऊपर का कोट पास ही फेंका हुआ है।

लड़की या तो पागल रही होगी, अथवा उसे मिरगी की बीमारी होगी। यदि ऐसा न होता तो भला इस सर्दी मे, जब स्नो पड़ रही थी और हवा चल रही थी, वह सड़क पर आकर क्यों लेटती ? जो भी हो, लड़की आधी बेहोशी की अवस्था मे दीखती थी, और जो लोग उसे घेर कर खड़े थे, उनके लिए वह एक तमाशे की वस्तु हो गई थी। एक ने कहा—'नगी लड़कियो को देखने के लिए थिएटर तथा सिनेमा आदि मे जाकर पैसे खर्च करने की क्या आवश्यकता है ? यहाँ तो मुफ्त में ही देखा जा सकता है।'

यह सुन कर सभी लोग हँस पड़े। इसी बात से प्रोत्साहित होकर एक ने अपनी छड़ी से उस लड़की की कमर के रेशमी जाँघिये को भी हटा देना चाहा ; पर 'सिपाही आया'–'सिपाही आया' की आवाज सुन कर वह रुक गया। भीड़ के एक आदमी ने उस लड़की का हाथ पकड़ कर उसे उठाना चाहा ; पर लड़की बेहोशी की हालत मे थी, उठ न सकी। फिर वह आदमी 'अपने किये का मजा चख' कहता हुआ वहाँ से चलता बना।

जिस समय मैं उस स्थान पर पहुँचा, एक आदमी कह रहा था—'जो भी हो, पुलिस बुलानी चाहिये, नही तो यह लड़की सर्दी में ठिठुर कर यही मर जायगी।'

तुरन्त ही उसे उत्तर मिला—'मर जायगी तो मर जाने दो न! इसे ऐन सड़क पर आकर ऐसे खुले बदन लेट जाने के लिए किसने कहा था?'

'और आज इतने बड़े त्योहार के दिन और ऐसे समय में पुलिस की ही खोज कहाँ पर की जाय?'

एक ने हँसते हुए कहा—'इसे यहीं पड़ा रहने दो। लोगों का एक बार नंगी स्त्री देखने का शौक तो मिट जाय!'

मैंने बिना कुछ कहे-सुने लड़की का हाथ पकड़ कर ऊपर उठाया और अपने सहारे उसे चलने के लिए बाध्य किया। लड़की बेहोशी की हालत में कुछ कदम आगे बढ़ी, पर उसके पाँव काबू में न थे। वह अपना भार न सँभाल सकने के कारण फिर जमीन पर गिर पड़ी। लोग ठहाका मार कर हँसने लगे। एक ने उसके चेहरे पर से बाल हटा कर उसका चेहरा देखते हुए कहा—'देखो न, जवान लड़की है, पर शरम रत्ती-भर भी नहीं।'

लड़की को इस प्रकार चलाने का प्रयत्न करना व्यर्थ था। सर्दी में खुले बदन पड़े रहने के कारण उसके हाथ पाँव काठ-जैसे अकड़ गये थे। उसे कन्धे पर लाद कर घर तक ले जाना भी मेरे लिए असम्भव था। मैंने लोगों की ओर देखते हुए कहा—'इसके लिए गाड़ी का प्रबन्ध करना चाहिये।'

विदेशी के लहज़े में अपनी भाषा सुनकर कई आदमियों की दृष्टि मेरी ओर फिरी। एक ने कहा—'तुझे क्या पड़ी है? इसे अगर अपनी जान की फिक्र होगी, तो खुद ही उठकर घर चली जायगी।'

एक दूसरे ने कहा—'अगर इसे दुनिया को अपना सुहावना नङ्गा रूप न दिखलाना होता, तो यहाँ सड़क पर आकर यह लेटती ही क्यों?'

'अभी यह शराब के नशे में है।'—मैंने धीमी आवाज में कहा।

'जब शराब बर्दाश्त नही कर पाती, तो पीती ही क्यों है ?'

'और अगर पी भी, तो चुपचाप घर बैठे रहना अच्छा था कि यहाँ पर लेट कर अपनी फ़जीहत कराना ?'

इतना कह कर वह अपने जूते से लड़की की छाती से चिपटा नकली रेशम का जम्फर हटाने लगा। मुझसे यह बर्दाश्त न हो सका। मैंने उसे धक्का देते हुए कहा—'यह भले आदमी का काम नही ?'

उस आदमी को मेरे शब्द बुरे लगे। उसने डाँटते हुए कहा—'और तू बड़ा भला आदमी बना है ? तुझे हमारे देश की लड़कियों से क्या मतलब ? हम जो चाहे, उसके साथ करेंगे। जा, तू अपना रास्ता ले।'

इतना कह कर वह मेरी ओर लपकना चाहता था ; पर मुझे गम्भीर और अपने स्थान पर अटल देख वह रुक गया। मैंने उसकी बात का कुछ उत्तर नही दिया। जहाँ पर वे लोग खड़े थे, उसके पास ही एक घर के भीतर स्नो पर फिसलने वाली बच्चो की एक छोटी सी गाड़ी खड़ी थी। उसी गाड़ी को लाकर मैंने उसमें उस बेहोश लड़की को लादा। लड़की अपने-आप कुछ गुनगुना रही थी, पर बिना उसकी ओर ध्यान किये ही मैं गाड़ी खींच कर आगे ले चला। जो आदमी अभी कुछ मिनट पहले मुझसे झगड़ना चाहता था, वह भी गाड़ी के साथ-ही-साथ दो-चार कदम लपका और बोला—'बेशरम औरत !' इतना कह कर युवती के मुँह पर थूकते हुए वह बिदा हुआ। दूसरे लोग ठहाका मार कर हँसने लगे।

उन दिनों मैं रुए-दू-से-जाक के एक पँचतल्ले मकान में सबसे ऊपर की छत वाली कोठरी मे रहा करता था। कोठरी छोटी थी ; पर सुविधा की लगभग सभी चीजे उसमे मौजूद थीं। कोठरी का तीन-

चौथाई भाग चारपाई ने घेर रखा था। घर में घुसने के दरवाजे के पास एक छोटी सी मेज और एक छोटी कुर्सी पड़ी रहती थी। दीवारों में कीलें गड़ी थीं, जिनके सहारे बड़ी लापरवाही से कपड़े लटका दिये जाते थे।

सवेरे के आठ बज चुके थे, पर सर्दी के मौसम में जैसा पेरिस में रहा करता है, उस समय तक अन्धकार छाया हुआ था। मेज के ऊपर दीवारगीर जल रहा था। उसी मेज के सहारे मैं अपनी दाहिनी कुहनी टेके, सर का भार हाथ पर दिये, चारपाई पर लेटी उस लड़की की ओर एकटक देख रहा था। लड़की काठ के समान अकडी हुई खाट पर पड़ी थी। मेरे लिये किसी सफेद चमड़े वाली लड़की को उतने निकट से निहारने का यह सबसे पहला अवसर था।

पिछली सन्ध्या को उसने अपने होंठ लाल रङ्ग से रँगे थे, वे अब फीके हो चले थे; पर बाहर स्नो में पड़े रहने के कारण गालों पर जो लाली आ गई थी, वह अब तक दूर नहीं हुई थी। यदि मुझसे पहले किसी ने कहा होता कि लड़कियों के गाल स्वाभाविक ही इस प्रकार लाल हो जाया करते हैं, तो शायद मैं कभी उस बात पर विश्वास न करता। उसके हाथ गाल के नीचे दबे थे, फिर भी पतली उँगलियाँ और उनके लम्बे तिकोने कटे नाखून स्पष्ट दिखलाई देते थे। हाथ का चमडा दूध की तरह सफेद था। मुझे यह कुछ अजीब सा लग रहा था। मैं बहुत देर तक एकटक उसकी ओर देखता रहा। वह नींद में ही दाँत कटकटाने लगी। मैंने सोचा, शायद उसे सर्दी लग रही है; दीवार की कीलों पर लटका हुआ एक कोट उतारा और ऊपर डाल दिया। 'शैतान, तुझे शैतान ले जाय' कहती हुई वह जाग पड़ी। चारों तरफ़ कमरे में ही दृष्टि दौड़ा कर उसने पूछा—'आखिर मैं हूँ कहाँ पर ?'

'मेरी कोठरी में ।'

'तू मुझे यहाँ क्यों लाया ? पैसे तो तूने अभी मुझे दिये नही ।'

मैं चुप रहा । एक झपाटे में खाट से नीचे कूद कर उसने लैम्प बुझा दिया । अब उसे ध्यान आया था कि वह केवल कपड़ों के नीचे पहनी जाने वाली पोशाक मे है । उसने यह भी देखा कि उसकी वह पोशाक केवल कीचड़ में सनी ही नही, बल्कि स्थान-स्थान पर फट भी गई है । अभी थोड़ी देर पहले मैंने जो कोट उसे ओढा देने का प्रयत्न किया था, वही मैंने फिर से उसकी ओर बढ़ा दिया ।

उसने हँसते हुए कहा—'मेरे लिये तेरे पास पैसे ही नहीं !'

मुझसे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने खूँटी से मेरा ओवरकोट उतार कर पहन लिया और दरवाजा खोल कर बाहर जाने लगी , पर सीढ़ियों तक पहुँचने के पहले ही रुक कर उसने मुझसे कहा—'दिन में सड़क पर अकेले चलने मे मुझे भय लगता है । मेरे घर तक मुझे पहुँचा दो न !'

उसने एक दिन मुझे अपने घर बुलाया । उस दिन वह नशे मे चूर थी ; पर मेरी ख़ातिरदारी के लिए उसने कहा—'सबसे पहले थोड़ी ब्राडी पी जाय ।'

उसने आलमारी से सुनहले चमकते हुए कागज में लिपटी हुई लम्बी गर्दन वाली एक शराब की बोतल तथा दो शीशे के छोटे गिलास निकाल कर मेज पर रखे और उन्हे शराब से भरते हुए कहा—'बाहर कैसी ठण्ड है ! हु...हु...हु...हु...गरमाने के लिए ब्राडी आवश्यक है । राइन या मोजल की बनी शराब या 'शेम्पेन' मुझे अच्छी नहीं लगती । 'बिअर' तो मैं छूती तक नहीं । हाँ, 'लिकर' चाहे जितना उड़ेलो, मैं पी जाऊँगी ; पर सबसे अच्छी 'ब्राडी' है । अच्छा, खुश रहो !'

उसने एक बार में ही अपना गिलास खाली कर दिया। थोड़ी देर मे अधिक नशा चढ जाने पर वह अपने स्वभाव के विपरीत बहुत गम्भीर बन गई, और कहने लगी—'तुम समझते होगे कि मैं नशे में मस्त रहने के लिए ब्राडी पीती हूँ, पर बात ऐसी नही है। मैं इसे इसलिए पीती हूँ कि इसके पीने पर मेरे भीतर सबसे प्रबल भाव यह उठता है कि मैं मनुष्य-समाज को अन्तःकरण से घृणा करूँ; किसी आदमी के हक़ में जो भी बुरे-से-बुरा काम किया जा सकता है, वह कर गुजरूँ। और वह भी ऐसा कार्य नहीं कि जिससे उसे केवल थोड़ी ही तकलीफ बरदाश्त करनी पडे, बल्कि इस प्रकार की कि उसका रोओं-रोआँ जहरीले-से-जहरीले विष से भर जाय, उसके जीवन के प्रत्येक क्षण में यह विष उसके हृदय को जलाता रहे, उसके शरीर के रोएँ-रोएँ को—उसके हृदय के प्रत्येक कण को—बराबर पेरता रहे, विषैला बनाता रहे और उसे मार्मिक-से-मार्मिक पीड़ा पहुँचाता रहे।'

अन्तिम शब्द कहते-कहते वह दाँत पीसने लगी। उसी उन्माद मे सामने का गिलास उसने फिर से खाली कर दिया और आगे कहने लगी—'हमे मनुष्यो से इस प्रकार घृणा करने का, उन्हे पीड़ा पहुँचाने का, उनसे बदला लेने का अधिकार है। अगर मेरा बस चले तो मैं सारे मनुष्य-समाज को ही शैतान के घर भेज दूँ। उन्हे मार्मिक पीड़ा पहुँचाते रहने का मैंने प्रण कर लिया है, शायद इसीलिए मैं जिन्दा भी हूँ। अगर मैं आदमियों को जिन्दा जलते हुए देखूँ, तो भी मेरे भीतर उनके लिये नाम को दया का भाव तक न आयेगा। नहीं, नहीं, दर्द के मारे उनका चिल्लाना सुन कर मैं हँसूँगी, ठहाके लगाऊँगी, अट्टहास करूँगी।

वह पागलो की भाँति ठहाका मार कर हँसने लगी। जल्दी-जल्दी अपने सामने का गिलास दो बार और भरा और उसे इस प्रकार गले के

नीचे उतार लिया, मानो उसके जीवित रहने की वही एकमात्र प्रिय औषध हो। फिर उसने देखा कि बोतल में बहुत थोड़ी शराब बाक़ी बच रही है ; उसे भी उसने पी लिया और खाली बोतल सोफ़े के नीचे लुढ़का दी। बोतल के लुढ़कते ही शीशे के चूर-चूर होने की आवाज आई। वह सँभलकर बैठ गई और कहने लगी—'कुछ दिन पहले जब मैं डाक्टर के यहाँ गई थी तो उसने कहा कि मेरा फेफड़ा शराब से बिल्कुल चलनी हो चुका है। उसने एक दवा भी दी थी ; पर मैंने उसे रास्ते की नाली मे फेंक दिया और घर लौटकर फेफड़े का चलनी होना रोकने के लिए फिर उसे ६० डिग्री तेज़ ब्राडी से तर कर लिया। अब डाक्टर कहा करते हैं कि मेरे जीने की बिलकुल ही आशा नहीं।'

वह और कुछ कहना चाहती थी, पर मैंने कहा—'आखिर तुम्हे इसकी आदत कैसे लगी ?'

उसने मेने प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया। वह मेरा प्रश्न टालना चाहती थी, इसीलिए उसने कहा—'जरा जाकर एक फ्रैंक की सिगरेट तो खरीद लाओ।'

फ्रैंक उसने मेरे सामने पटक दिया। मुझे उसका हुक्म अच्छा नहीं लगा, फिर भी मैं सिगरेट लाने चला गया। मेरे लौटने पर उसने सिगरेट ले ली और सर-दर्द का बहाना कर मुझे बिदा कर दिया।

उस दिन के बाद जेनेट से और कई बार मुलाक़ात हुई ; पर अपने निज के जीवन-सम्बन्धी प्रश्नों के छिड़ते ही वह बातचीत का रुख बदल दिया करती। वह अपना पिछला इतिहास छिपाये रखना चाहती थी, इसलिए मैंने भी उसे जानने की उत्कण्ठा नहीं दिखलाई।

एक दिन शाम को सर्दी लग जाने के कारण मैं अपने काम पर नहीं गया। मेरा सारा शरीर दर्द कर रहा था। अभी दरवाजा बन्द कर और दीवारगीर बुझा कर सोने की तैयारी कर ही रहा था कि एक-ब-एक सीढ़ी पर किसी के ऊपर आने की आहट सुनाई दी। मैं पहचान गया, जेनेट थी। उस दिन उसने, न मालूम क्यों, अपने जीवन का पूरा इतिहास खोल कर मुझे बतला दिया। मैंने समझा, शायद वह शराब के नशे में रही हो; पर उसके मुँह से बदबू का नाम-निशान तक न था।

उसने स्वयं ही चर्चा छेड़ी—'मेरा इतिहास सुनोगे? आज मैं तुम्हे जी खोल कर सुनाऊँगी। बात आज से पाँच वर्ष पहले की है। उस समय मेरी मा ज़िन्दा थी और मेरी छोटी बहन 'इंगे' भी साथ ही रहा करती थी। पिता 'लिल' के कपड़े के कारखाने में काम करते थे। उनके मरने के बाद हम लोगों का गुजारा चलना मुश्किल हो गया। मैं ही बड़ी लड़की थी, इसलिए बूढी माँ और छोटी बहन को अपनी आँखों के सामने भूखों मरते देखना मुझसे बर्दाश्त न हुआ। पहले मैंने कपड़े के कारखाने में काम पाने की बहुत चेष्टा की, पर असफल रही; फिर पेरिस आई। बहुत धक्के खाने के बाद भूख की ज्वाला को और अधिक न सह सकने के कारण मैंने एक 'रात्रि-विहार' में काम करना स्वीकार किया। यदि तुम वहाँ पहुँचने के पहले मुझसे परिचित होते, तो तुमने मुझे किसी दूसरे ही रूप मे देखा होता और उस समय तुम मेरे आज के इस स्वरूप को देखने का अनुमान तक न कर पाते। उस समय मैं कुछ दूसरी ही थी।'

इतना कह कर जेनेट ने एक लम्बी साँस ली, जिससे मालूम हुआ कि उसके भीतर कोई वेदना छिपी हुई है और वह उस वेदना के प्रति बिल्कुल उदासीन है। वह आगे कहने लगी—'भूख की ज्वाला से

पीड़ित होकर मुझे पहले ही दिन अपनी लज्जा और शर्म धोकर पी लेनी पड़ी। तुम मेरी आज की यह चाल-ढाल देख कर कहते होगे कि मेरा चाल-चलन कभी अच्छा रहा ही नहीं होगा ; पर किसी भी कुरूप-से-कुरूप षोडशवर्षीया बालिका से पूछ देखो, उसे पहले-पहल अपना यौवन बेचना कितना अखरता है, वह उसे बेचने के पहले कितना रोती है ! और सबसे बुरी बात तो यह होती है कि उसका अन्तःकरण उसे इतना कोसता है कि उसका पागल न हो जाना ही आश्चर्य की बात है।

'रात्रि-विहार में जिस दिन मैंने प्रवेश किया, उसी दिन से मैंने एक दूसरे ही संसार मे पाँव रखा। लोग इस ससार को नरक कहा करते हैं ; पर इसके बिना उनका काम चलता भी नहीं। वे इस स्थान पर जितना समय बिताते हैं, उसे अपने जीवन की सबसे सुन्दर घड़ियों मे गिनते हैं ; पर हम लोगो पर कैसी बीतती है, यह हमीं जानती हैं।

'पहले दिन शीशे में अपना बदला हुआ चेहरा देख कर चीख कर रोने की इच्छा हुई , पर फिर खयाल आया कि अब बहुत देर हो चुकी है, पीछे लौटना असम्भव हो चुका है। अपने-आपको भूख के मारे बेच चुकी थी ; अपने ही शरीर पर मेरा अधिकार नहीं रह गया था। मैं दूसरों की बन चुकी थी। दूसरे अब मुझे जिस रूप मे देखना चाहते, मुझे वैसा ही बनना पड़ता था।

'शायद तुमने मनुष्यों का वह स्वर्ग नहीं देखा है। कुरूप-से-कुरूप, बूढ़े-से-बूढा पुरुष वहाँ पर जाता है और सुन्दरियाँ उसे अपने प्यार से वञ्चित नहीं रखती हैं। कुरूप बुड्ढे कमरे में जाकर एक स्थान पर बैठ जाते हैं ; हम उनके पास से होकर निकलती हैं। हमें कमर के ऊपर का भाग ढके रखने की मालिक की ओर से मुमानियत रहती है, और दूसरे भाग भी वैसे ही ढके होने चाहिए कि हमारे शरीर की पूरी-

पूरी गठन दिखलाई देती रहे और पुरुष अपने इच्छानुसार चुनाव कर सकें। फिर भी वह चाहे जो भी हो और वह चाहे जिस रोग से भी पीड़ित क्यों न हो, यदि उसने हमे चुन लिया, तो हमें उसके पास जाना ही पड़ता है और उसके इच्छानुसार हँसना तथा उसके प्रति प्यार प्रकट करना ही पड़ता है।

'यही है पुरुषों का स्वर्ग! उन्हे 'स्वर्गीय' आनन्द पहुँचाने के लिए हमें कितना कष्ट सहन करना पड़ता है! उस विहार-गृह में इस प्रकार के कितने लोग आया करते हैं, जिन्हे केवल उतने से ही सन्तोष नहीं होता। वे हमे नशे में जमीन पर लोटती हुई तथा बेचैनी के मारे अंटसट बकती हुई देखना चाहते हैं। उन्हे इसी में आनन्द आता है।

'अब जरा आमदनी का हाल सुनो। अपना उतना 'प्यार' सारी रात उड़ेलते रहने और सब कुछ बर्दाश्त करते रहने के बाद जब मैं घर लौटती, तो मालिक से मुझे केवल उतना ही द्रव्य मिलता, जितने में मैं अपनी कोठरी का किराया चुकता कर पाती तथा दूसरे दिन शाम तक खाने का खर्च चला सकती।

'पुरुषों के स्वर्ग ने मुझे शराब से खोखला कर दिया। अभी बीस वर्ष की ही उम्र में सत्तर वर्ष की बुढ़ियों की तरह खाँसने लगी हूँ। यदि ऐसा न होता, तो पुरुषों के 'स्वर्ग' की नीव ही कैसे क़ायम रह सकती थी?'

इतना कह वह रूखी हँसी हँसने लगी। वह अपने जीवन के प्रति कितनी हताश हो चुकी है, यह उसकी हँसी मे स्पष्ट दिखलाई देने लगा। उपर्युक्त बातें कहते समय उसका कलेजा रो रहा था, यह उसके चेहरे से जान लेना कठिन नही था; पर वह इसे प्रकट नही होने देना चाहती थी। वह स्वयं ही आगे कहती गई—'तुम्हारे जैसे सीधे-सादे लोग हमारे ससार से परिचित नहीं। तुम मनुष्यों को एक दूसरी

ही आँख से देखते हो, पर हमे किसी भी मनुष्य के चेहरे मे भयावनेपन के सिवा और कुछ दिखलाई ही नहीं देता। वे जितने ही भयावने होते हैं, हम उनके उतने ही निकट जाती हैं; वे जितने ही कुरूप होते हैं, हम उनकी सुन्दरता की उतनी ही सराहना करती हैं; वे जितने ही मूर्ख होते हैं, हम उनके गुणों का उतना ही बखान करती हैं। इसी प्रकार तो हम अपने को बेच पाने मे समर्थ होती हैं। मुझे सड़क पर अपना चेहरा दिखलाने में शरम आती है, इसीलिये खास चौराहो पर जाकर खड़ी होती हूँ। वहाँ जिन पुरुषों का भद्दा, कुरूप चेहरा देख कर मुझे भय लगता है, उनके ही पास हँसती हुई जाती हूँ। वे अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर मेरे घर आते हैं। उनके नाली से भी अधिक गन्दे तथा बदबूदार होंठ जब मुझे चूमने के लिये आगे आते हैं, तो मैं भी अपने होठ आगे बढ़ा देती हूँ और हँसती हूँ।

'हाँ, उस समय मेरे हृदय में जो आग जलती रहती है, तुम उसका अनुमान भी नहीं कर पाओगे। जिस समय वे मुझे एक खिलौने के रूप में, एक वैसी चीज के रूप में देखते हैं, जिसे उन्होंने एक संध्या के लिये खरीद लिया हो, तो मुझे ठीक वैसा ही प्रतीत होता है, जैसे मैं मधुमक्खियों के छत्ते में बैठा दी गई हूँ। जिस समय वे मेरा आलिंगन करने के लिये आगे बढ़ते हैं, उस समय इच्छा होती है कि यदि मेरे हाथ मे एक लम्बी छुरी होती, तो मैं उसे उनकी छाती के आरपार कर देती। पर मुझे अपना वह भीतरी स्वरूप दिखलाने का अवसर नही मिलता। अगर वैसा अवसर मिले, तो एक ही वार मे सभी पुरुषों को जहन्नुम भेज दूँ।'

वह दाँत पीसती हुई चारपाई पर लेट गई। मैं उसके चेहरे की ओर एकटक देख रहा था। आँखें खोलने पर उसने कहा—'क्या देखते हो? संसार इसी को 'प्यार' 'सुख' 'स्वर्ग' के नाम से पुकारता है।

इसके लिये हमें शरीर का रोआँ-रोआँ बेच देना पड़ता है ; केवल इतना ही नहीं, वह इतना सस्ता बना दिया जाता है कि जिसके पास एक टुकड़ा हो, वही हमें जिस रूप में चाहे देख सकता है। मैं हूँ खिलौने की वस्तु और पुरुषो ने उसका दाम लगा रखा है—यदि रक्त-मास के सहित लो तो दो रुपये और यदि क़ागज पर तो एक टुकड़ा ! आज भी यदि इस शहर के अनेक भागों में जाओगे तो देखोगे कि व्यवसायियों ने लेटरबक्स के समान कई बक्स लगा रखे हैं, जिनमे एक टुकड़ा डालने पर तुम मेरा तरह-तरह के वेश में स्वरूप देख सकोगे। उसका नाम मेरे चित्र से पैसे कमाने वालों ने दे रखा है—'नग्न सौंदर्य', 'खिलती जवानी', 'रात का शृङ्गार', 'प्रातःकाल का शृङ्गार', इत्यादि ! मेरी क़ीमत भी बाजार में और दूसरी वस्तुओं की ही भाँति लगाई जाती है।

'और इतना सब होने पर भी हमें हर समय हँसते रहना पड़ता है। हा ··हा···हा···हा '

ऐसा लगने लगा, मानो वह स्वय मेरा आलिंगन करने जा रही हो , पर नही, उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ कर मुझे फिर बैठा दिया और गम्भीर होकर कहने लगी—'नहीं, तुम सुन्दर हो, मुझसे दूर रहो।'

मैं अवाक् सा बना रहा। जेनेट स्वय चिल्ला कर कहने लगी—'यही मेरा ससार है। यहाँ का मजा लूटो। पैसे निकालो, हैं कुछ पास में ?'

मैं काँपने सा लगा। जमीन की ओर देखते हुए मैंने कहा—'मुझे भय लग रहा है।'

जेनेट पहले की ही भाँति ठहाका मार कर हँसने लगी और साथ ही उसके गाल भी आँसुओं से तर होने लगे।

सैर

सर्दी का मौसम खत्म हो चुका था। एक दिन सदा की भाँति, जैसे ही मैं काम पर पहुँचा, मैनेजर ने एक वाक्य में ही मेरा सारा मामला निपटा दिया—

'अब यह ऋतु समाप्त हो गयी, आप अपना काम और कहीं दूसरी जगह ढूँढ़िये। मुझे बड़ा अफसोस है, पर कुछ किया नहीं जा सकता।'

जो आदमी मुझे मैनेजर के पास ले गया था उसने मेरी ओर एक लिफाफा बढ़ाते हुए कहा—

'आपका आज तक का हिसाब साफ कर दिया गया है।'

मैं रेस्टुराँ के फाटक पर बिना एक क्षण रुके ही साँमिशेल की ओर चल दिया।

आज वास्तव में मेरे लिए पहला दिन था जब मैं शाम को बत्ती जलने के समय पेरिस की सड़कों पर टहलने निकला था। रास्ते पर बहुत से सिपाही और बहुत सी लड़कियाँ चक्कर लगा रही थीं। इसमें मेरे लिए कोई नवीनता नहीं थी। रेस्टुराँ में अपने बैठने के स्थान से मैं नित्य ही यह तमाशा देखा करता था। पर रेस्टुराँ के भीतर का दृश्य, जो सड़क की ओर लगी शीशे की बड़ी-बड़ी खिड़कियों से दिखलाई देता था, अवश्य ही मेरे लिए नवीन था।

सॉमिशेल के पास शीशे की खिड़की से देखा कि एक कमरे में मेजें सजी-सजाई रखी हैं और उनके दोनों ओर लोगों के बैठने के लिए कुर्सियाँ हैं। और सब कुर्सियाँ खाली थीं, केवल एक पर एक बड़ा मोटा आदमी भूरे रङ्ग का ओवरकोट पहने बैठा था और उसके सामने बिअर का एक बड़ा गिलास फेन से भरा रखा था। उस आदमी की खोपडी टेढी-मेढी हाँड़ी सी और बिलकुल घुटी हुई चिकनी थी। सर के पिछले भाग में उंगलियों पर गिने जाने लायक कुछ-एक सफेद बाल जहाँ-तहाँ बिखरे हुए थे। नाक बहुत चपटी तथा होंठ बड़े मोटे थे। चेहरे का रङ्ग आग मे तपने वाली हाँड़ी-जैसा लाल हो रहा था। अभी मैं वहाँ खड़ा ही हो पाया था कि उस आदमी ने बिअर के कई घूँट पिये और दाहिनी ओर देख कर आँखें मारने लगा; उसी ओर से बाजे की आवाज आ रही थी। थोड़ी देर मे उधर से अपने हाथ मे एक छोटी सी वाएलिन लिए हुए एक दुबली-पतली और लम्बी सी लड़की आकर उस आदमी के सामने खड़ी हो गई और कुछ बोली। उनकी बातें खिड़की के बाहर तक सुनाई नहीं पड़ी। उस आदमी ने लड़की का कपड़ा पकड़ उसे अपनी गोद में बिठा लिया। लड़की हाँफती हुई वाएलिन बजाने लगी। वह आदमी उस लड़की को एक बच्ची की तरह हिलाने लगा। साथ ही, उसकी आँखों की ओर देख अपनी आँखें मटकाने लगा। लड़की हिलते-हिलते थोड़ी देर मे पीछे की ओर खिसक जाती, पर वह आदमी उसे फिर सीधा करके बैठा देता।

बड़ी देर तक खड़ा-खड़ा मैं उनकी ओर देखता रहा। जब लडकी वाएलिन बजाना बन्द कर देती तो वह आदमी भी अपने दोनों होंठों को इकट्ठा कर उस लड़की का कस कर आलिंगन करता। फिर जब वह अपनी बाँहे ढीली करता तो लडकी हँसने लगती और दोनों ताली पीटने लगते। बीच-बीच मे वह आदमी अपने सामने के गिलास से

पहले उस लड़की को बिअर पिलाता और तब स्वय पीता। उनके गाने-बजाने और आलिगन आदि का कोई अन्त होता नही दिखलाई देता था।

चौराहे के दूसरे कोने पर पहुँचने पर मैंने देखा कि एक रेस्टुराँ के सामने की तख्ती पर लिखा है—'बिना मूल्य प्रवेश।' मैं शीशे के भीतर से झाँकना ही चाहता था कि दरवान बाहर निकल कहने लगा—

'वहाँ से क्या झाँकते हो, भीतर चले आओ। 'प्रवेश-फी' कुछ भी नही , कुछ पीने की इच्छा हो, पियो ; न पीना हो, तुम्हारी खुशी। कोई तुहे बाध्य नही करता।'

मैं रेस्टुराँ के भीतर चला गया। बरामदे से ही देखा कि एक बड़े से कमरे मे जोरों से बाजा बजाया जा रहा है और बड़ा शोरगुल मचा हुआ है। मैं उस दरवाजे के पास ही एक पाये के सहारे खड़ा हो गया। यह बाजे बजाने वालों के लिए दम लेने का वक्त था। मजलिस अपने ढङ्ग की बिलकुल निराली थी। जितनी औरतें जहाँ पर थी, लगभग सभी की उम्र ढलती जवानी की थी ; कई तो बिल्कुल बूढ़ी थी। पर उनके कपड़े बड़े-भड़कीले थे और चेहरा पाउडर से ऐसा पुता था कि सर हिलाते समय झड़ कर नीचे गिर रहा था। कितनो को उतने से भी सन्तोष नहीं हो रहा था ; हर दो मिनट के बाद वे अपना बस्ता खोलती, आइने मे मुँह देखती और चेहरे को पाउडर से और भी अधिक पोतने लगतीं। पर अनेक प्रयत्न करते रहने पर भी वे अपनी असली उम्र छिपा नही पाती थी। चेहरे पर पड़ी हुई झुर्रियाँ बड़ी स्पष्ट दीखती थीं, और कितनी ही तो रँगे हुए लाल-लाल गालों के कारण सुन्दर होने के बजाय कही अधिक भयङ्कर दीख रही थी। बाजा बजाने वालों के बीच जो दो औरते बैठी थीं, वे भी बेतरह मोटी थीं और उनमें एक के बाल बिल्कुल लाल थे, जिससे उसका चेहरा देखने

सौंमिशेल के पास शीशे की खिड़की से देखा कि एक कमरे में मेजें सजी-सजाई रखी हैं और उनके दोनों ओर लोगों के बैठने के लिए कुर्सियाँ हैं। और सब कुर्सियाँ खाली थीं, केवल एक पर एक बड़ा मोटा आदमी भूरे रङ्ग का ओवरकोट पहने बैठा था और उसके सामने बिअर का एक बड़ा गिलास फेन से भरा रखा था। उस आदमी की खोपडी टेढ़ी-मेढ़ी हाँड़ी सी और बिलकुल घुटी हुई चिकनी थी। सर के पिछले भाग में उंगलियों पर गिने जाने लायक कुछ-एक सफ़ेद बाल जहाँ-तहाँ बिखरे हुए थे। नाक बहुत चपटी तथा होंठ बड़े मोटे थे। चेहरे का रङ्ग आग में तपने वाली हाँड़ी-जैसा लाल हो रहा था। अभी मैं वहाँ खड़ा ही हो पाया था कि उस आदमी ने बिअर के कई घूँट पिये और दाहिनी ओर देख कर आँखें मारने लगा ; उसी ओर से बाजे की आवाज आ रही थी। थोड़ी देर में उधर से अपने हाथ मे एक छोटी सी वाएलिन लिए हुए एक दुबली-पतली और लम्बी सी लड़की आकर उस आदमी के सामने खड़ी हो गई और कुछ बोली। उनकी बातें खिड़की के बाहर तक सुनाई नहीं पड़ी। उस आदमी ने लड़की का कपड़ा पकड़ उसे अपनी गोद में बिठा लिया। लड़की हाँफती हुई वाएलिन बजाने लगी। वह आदमी उस लड़की को एक बच्ची की तरह हिलाने लगा। साथ ही, उसकी आँखों की ओर देख अपनी आँखें मटकाने लगा। लड़की हिलते-हिलते थोड़ी देर में पीछे की ओर खिसक जाती, पर वह आदमी उसे फिर सीधा करके बैठा देता।

बड़ी देर तक खड़ा-खड़ा मैं उनकी ओर देखता रहा। जब लड़की वाएलिन बजाना बन्द कर देती तो वह आदमी भी अपने दोनों होंठों को इकट्टा कर उस लड़की का कस कर आलिंगन करता। फिर जब वह अपनी बाँहे ढीली करता तो लड़की हँसने लगती और दोनों ताली पीटने लगते। बीच-बीच में वह आदमी अपने सामने के गिलास से

पहले उस लड़की को बिअर पिलाता और तब स्वयं पीता। उनके गाने-बजाने और आलिंगन आदि का कोई अन्त होता नहीं दिखलाई देता था।

चौराहे के दूसरे कोने पर पहुँचने पर मैंने देखा कि एक रेस्टुराँ के सामने की तख्ती पर लिखा है—'बिना मूल्य प्रवेश।' मैं शीशे के भीतर से झाँकना ही चाहता था कि दरवान बाहर निकल कहने लगा—

'वहाँ से क्या झाँकते हो, भीतर चले आओ। 'प्रवेश-फी' कुछ भी नही; कुछ पीने की इच्छा हो, पियो; न पीना हो, तुम्हारी खुशी। कोई तुहे बाध्य नही करता।'

मैं रेस्टुराँ के भीतर चला गया। बरामदे से ही देखा कि एक बड़े से कमरे मे जोरों से बाजा बजाया जा रहा है और बड़ा शोरगुल मचा हुआ है। मैं उस दरवाजे के पास ही एक पाये के सहारे खड़ा हो गया। यह बाजे बजाने वालों के लिए दम लेने का वक्त था। मजलिस अपने ढङ्ग की बिलकुल निराली थी। जितनी औरतें जहाँ पर थीं, लगभग सभी की उम्र ढलती जवानी की थी; कई तो बिल्कुल बूढ़ी थी। पर उनके कपड़े बड़े-भड़कीले थे और चेहरा पाउडर से ऐसा पुता था कि सर हिलाते समय झड़ कर नीचे गिर रहा था। कितनों को उतने से भी सन्तोष नहीं हो रहा था; हर दो मिनट के बाद वे अपना बस्ता खोलती, आइने में मुँह देखतीं और चेहरे को पाउडर से और भी अधिक पोतने लगतीं। पर अनेक प्रयत्न करते रहने पर भी वे अपनी असली उम्र छिपा नही पाती थी। चेहरे पर पड़ी हुई झुर्रियाँ बड़ी स्पष्ट दीखती थीं, और कितनी ही तो रँगे हुए लाल-लाल गालों के कारण सुन्दर होने के बजाय कही अधिक भयङ्कर दीख रही थी। बाजा बजाने वालों के बीच जो दो औरते बैठी थीं, वे भी बेतरह मोटी थीं और उनमें एक के बाल बिल्कुल लाल थे, जिससे उसका चेहरा देखने

से ही डर लगता था। कोई भी नया भलामानस यदि पहले-पहल उस कमरे में प्रवेश करता तो वह पहले तो यही समझता कि यहाँ पर बदसूरत औरतों की नुमाइश की गई है।

पर नही! जिन मेजों के सामने ये औरतें बैठी थी, वहाँ कुछ नौजवान भी बैठे दिखलाई देते थे। कई युवक तो ऐसे थे, जिनकी अभी किशोरावस्था थी। उतनी और उस प्रकार की स्त्रियो की मजलिस में वे थोड़े से युवक क्योंकर टपक पड़े, कुछ पता नही चलता था।

मैं यह सब सोच ही रहा था कि बाजा बजने लगा और नाच शुरू हो गया। जो लोग यूरोपीय नाच देखने के अभ्यस्त होंगे, उनके लिए भी यह नाच अवश्य ही निराला था। हाथ इस प्रकार बेतरह हिलाये जा रहे थे और पॉव ऐसे पटके जा रहे थे कि बाजे के साथ उनका भी एक अपना अजीब ताल मिलता जा रहा था। शरीर मे स्वाभाविक लचक न होने पर भी जब औरते अपना निराला 'कलापूर्ण' नाच दिखलाने लगतीं तो कोई नया आदमी उसे देख अपनी हँसी नही रोक सकता था। मैं मुँह नीचा कर हँसने लगा। इसी समय एक मेज के सामने बैठी दो औरते उठ कर मेरे पास आईं। एक के ऊपर के दॉत सदा ही बाहर निकले रहते थे और दूसरी को पता नहीं इस समय क्या हो गया था कि वह बिलकुल बेचैन होकर हाँफ सी रही थी। मैंने समझा, वे बाहर जाना चाहती हैं; इसलिए रास्ते से एक किनारे, जितना संभव हो सका, हट गया। पर वे औरतें वहाँ से गुजरी नही; मेरे सामने आ खड़ी हुई। जिस औरत के दाँत निकले हुए थे, उसने मुझसे कुछ पूछा। मैं उसका कुछ भी मतलब न समझ सिर्फ यही जान सका कि उसकी आवाज बड़ी कर्कश है। दूसरे ही क्षण मुझे स्पष्ट हो गया कि वे नशे में चूर हैं। मैंने उन औरतों के प्रश्नों के समझने की भी चेष्टा

नही की और केवल बाजा बजाने वालों की ओर देखता रहा। पर वे औरतें भी बाज़ आने वाली नही थी ! कर्कश आवाज़ वाली औरत ने डाँटते हुए पूछा—

'बहरे ! सुनता है कि नही ? तेरा यहाँ पर क्या काम ?'

उन औरतों के चेहरे पर स्त्री-भाव का नाम-निशान तक नही था। शराब के कारण चेहरा और भी भयानक दीखता था। मैंने बिना उनकी ओर देखे ही उत्तर दिया—

'मैं बाजा सुन रहा हूँ।'

'धत्तेरे बाजे की ! अभी तुझे शैतान के घर भेजती हूँ। निकल......'

अब मुझे वे और भी भयावनी दीखने लगी। मेरे मन मे आया कि उनके पाउडर से पुते चेहरे और शराब की बू से भरे मुँह और साथ ही उनके बेशक़ीमत कपड़ों पर थूक कर वहाँ से भाग निकलूँ ; पर मैंने अपने को रोक लिया ! इस समय तक उन औरतों का साहस और भी बढ़ गया था। हाँफती हुई औरत अपनी लड़खड़ाती ज़बान मे मुझसे कहना चाहती थी—

'चल ! निकल यहाँ से !'

पर उसके मुँह से ये शब्द साफ-साफ नही निकल पाते थे। मुझे निकालने के बजाय स्वय लुढ़क पड़ने से वह अपने को बड़ी कठिनाई से रोक रही थी। पर दूसरी औरत मेरा हाथ तक पकड़ने लगी।

'मुझे तो तुझ पर थूकने में भी शरम आयगी।'

इतना कह मैं बाहर निकल आया। उस मजलिस से मेरी तबीयत ऐसी भिनक गई थी कि दूसरी खिड़कियों में बिना झाँके ही रेलवे स्टेशन तक चला गया। वहाँ पर एक बड़ा सा काफे-घर (चाय-गृह) था, जिसके निचले तल्ले पर नाच हो रहा था ! उस ओर

अनायास एक निगाह दौड़ाने पर दिखलाई दिया कि एक जोड़ा नाचते हुए एक कोने तक आ पहुँचा था और पुरुष अपने साथ नाचने वाली का मुँह जबरदस्ती अपने निकट लाने का प्रयत्न कर रहा था, पर वह औरत उससे अपने को बचाना चाहती थी और हँस रही थी।

उस दिन वह रास्ता मुझे सिनेमा के फ़िल्म-जैसा दिखलाई पड़ा। मैंने लोगों को एक-दूसरे पर बिअर की बोतलें तथा गिलास फेंकते, मार-पीट करते, ताश खेलते, नाचते और चूमते देखा। एक क्षण के लिये यह विश्वास कर लेना भी असंभव नहीं था कि यह वास्तविक जीवन नहीं, बल्कि एक नाटक था और लोग फ़िल्म में चित्रित होने के लिए यह खेल खेल रहे थे।

इस प्रकार के अनेक दृश्यों ने मेरे मन पर अपनी गहरी छाप डाल दी। कभी कभी उस अनोखी मजलिस का खयाल कर मन में आता—

'यह सब भठियारखाना है, इसमें कुछ मजा नहीं।'

और, कभी यह भी मन में आता—

'काफे में बैठी लाल झुलिया वाली लड़की वास्तव में सुन्दर थी।'

इस प्रकार प्रेम और घृणा, राग और द्वेष, आकर्षण तथा धिक्कार के भावों से मैं उस शाम को ऐसा घिरा रहा कि उस दिन काम न करने पर भी घर उसी समय लौटा जिस समय पिछले महीनों में काम से छुट्टी पाने पर लौटा करता था। आज मेरी नौकरी छूट गयी है, मेरी जीविका का दूसरा कोई ठिकाना नहीं, अपने निर्वाह के लिये न जाने कहाँ-कहाँ भटकना पड़ेगा ; सुख-ऐश्वर्य की कौन कहे, निश्चित जीवन से—नित्य के जीवन की आवश्यकताओं तक से—मुझे कितनी दूर तक वञ्चित रहना पड़ेगा, आदि बातें मेरी स्मृति मे थीं और वे खटक भी रही थी ; पर उन पर जान-बूझ कर मैं एक प्रकार का पर्दा

सा डाल लेना चाहता था। उन चिन्ताओं के बार-बार मन में उठते रहने पर भी उन्हे अपने भीतर स्थान नही देना चाहता था।

बहुत देर के बाद मुझे चेत हुआ कि भूख बड़ी देर से लगी है, पर इस विचार को भी यह समझा कर कि घर पास है, शात कर लिया। फिर भी ज्यों-ज्यों घर के पास पहुँचता जाता था, मेरे भीतर एक विचित्र प्रकार के क्रोध की भावना आती जा रही थी! क्रोध का क्या कारण है, क्रोध किसके प्रति और क्यों है, आदि बातें मेरे लिये स्पष्ट नही थी। स्पष्ट केवल इतना था कि मेरा मिजाज चिड़चिड़ा सा होता जा रहा है।

जिस समय घर का दरवाजा खोलने लगा उस समय मेरे भीतर का यह भाव यहाँ तक पहुँच गया कि मैं कह उठा—

'मरे, सारी दुनिया मरे। मुझे किसी से वास्ता नही।'

कमरे में पहुँच कर देखा कि खाने की कोई चीज नहीं है; पर खाट की ओर दृष्टि जाने पर ढाढ़स बँधा—

'खैर, सोने का तो ठिकाना है न!'

फिर बिस्तर पर लेटते-लेटते सोचने लगा—

'कल क्या होगा? कल कहाँ रहूँगा?'

थोड़ी देर में मन मे यह बात आई कि 'कल जो होना होगा, होगा। देखा जायगा। आज अब सोऊँ।' मन मे यह कहते-कहते सोने का प्रयत्न करने लगा। कुछ ही मिनटों में सचमुच ही सो गया। पर उस नीद मे देखा कि एक अपरिचित लड़की आलिंगन करने के लिए आगे आ रही है। और तब जी-भर तृप्त होकर मैंने अपने-आपसे कहा—

'मेरा जीवन कैसा सुखमय है !'

मैं कई दिन से आनेत्त के पत्र की प्रतीक्षा मे था। एमिल को मैंने पेरिस से एक खत डाला था, इसीलिए आशा कर रहा था कि उसने आनेत्त को अगर वह ठिकाना दिया होगा, तो उसका खत अवश्य ही अब तक आ जाना चाहिये था।

डाकिया उस दिन भी मेरे लिए कोई खत नहीं लाया। मैंने सोचा, आनेत्त मुझे अवश्य ही भूल गई होगी। पर इस विचार को स्वीकार कर पाना भी मेरे लिए कठिन हो रहा था। बिस्तरे के नीचे उतरते समय पाँव वेदम से मालूम हुए।

उसी दिन मैं अपना आगे का कार्यक्रम ठीक करना चाहता था, पर घर से निकलते ही एमिल से मुलाकात हुई। वह मुझे ही ढूँढ़ता आया था।

'आनेत्त ने तुम्हे नमस्कार कहा है।' हाथ मिलाते हुए उसने मुझसे कहा।

'और ?'

'और, और क्या ? कुछ भी नहीं। उस गाँव में और रखा ही क्या है; सब-के-सब असभ्य हैं। वहाँ से मेरी तबीयत ऊब गयी। अब मैं फिर देशाटन के लिए निकल रहा हूँ।'

उसने अपना प्लैन बतलाया। नैपल्स में अफीम और कोकेन की तिजारत से फायदे के साथ-साथ दक्षिण इटली की कुमारियों के सौंदर्य का उसने विस्तार से वर्णन किया। मुझे वह अपना शागिर्द बनाना चाहता था।

'तुम्हारा रङ्ग इटालियनों जैसा है। जबान सीख लेने पर तुम पूरी

तरह से दक्षिण इटली के बाशिन्दे बन जाओगे और हमारे काम में बहुत अधिक सहूलियत हो जायगी।'

'तो तुम किसी इटालियन को ही अपना शागिर्द क्यों नहीं बनाते?'

'वे अव्वल दर्जे के धोखेबाज होते हैं; उन पर मेरा विश्वास नही।'

पुलिस के भय की मैंने उससे चर्चा की तो उसने कहा—'जब तुम्हारा नाम ही उनके काले रजिस्टर में दर्ज नहीं, तो फिर किसी पागल कुत्ते ने उन्हे थोड़े ही काट खाया है कि वे तुम्हारी पेशवाई के लिये आगे आयँगे।'

अपने प्लैन में मेरी अधिक दिलचस्पी न देख वह बोला—

'यहाँ आकर भी तुम पूरे बेवकूफ़ ही बने रहे।'

मैं चुप रहा। वह कहता ही गया—

'मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि पास मे अगर पैसे न रह जायँगे, तो पेरिस शैतान का बसाया हुआ दीखने लगेगा। नैपल्स से एक महीने में तुम मालामाल होकर लौटोगे; फिर देखना यहाँ की बहार!'

मै उसके प्लैन में शरीक होने के लिए तैयार नही हुआ। उस समय और अधिक जोर देना शायद उसने भी उचित नहीं समझा। बातो का सिलसिला बदल कर कहने लगा—

'अच्छा, न जाओगे तो न सही। आज मेरे साथ चल कर पेरिस की सैर तो करो!'

'यहाँ रखा ही क्या है?'

तुम तो बिलकुल मनहूसों सी बातें करते हो! चलो, न हो किसी बुलवार के मेले से ही शुरू किया जाये।'

मेरे रहने के स्थान से वह मेले वाला बुलवार दूर नहीं था। एमिल ने वहाँ पहुँचते-पहुँचते कहा—

'सर्दी न रहने पर यूरोप के प्रत्येक बड़े शहर में इस प्रकार के मेले लगते हैं ; पर उन सबकी अपनी-अपनी विशेषता होती है। मुझे तो यहीं का सबसे अच्छा लगता है।'

दूर से ही मेले के एक आदमी पर मेरी दृष्टि पड़ी। न जाने क्यों मेरे मन मे एक-ब-एक यह भाव जम गया कि आज मैं फिर शैतान के पाले पड़ा हूँ।'

जैसा मेलों में प्रायः हुआ करता है, चारों तरफ काफ़ी शोर-गुल मचा हुआ था। पहली सड़क पर ही दाहिनी ओर एक दृश्य देख कर हम लोग उसके सामने खड़े हो गये। वहाँ पर एक विचित्र पोशाक में एक आदमी आ खड़ा हुआ था और चिल्ला-चिल्ला कर सामने खड़े हुए लोगों से कुछ कह रहा था। उस आदमी ने अपने सर पर एक साफा सा बाँध रखा था। नीचे की पोशाक होटलों के दरवाजे पर खड़े रहने वाले दरवानों जैसी थी; अन्तर केवल यह था कि उसकी पोशाक में चारों ओर चमकते हुए शीशे से लगे हुए थे, जो होटल वालों की पोशाक में नहीं रहा करते। वह आदमी दुहरा-तिहरा कर एक ही बात बार-बार कह रहा था और जब उसका व्याख्यान खत्म हो जाता तो फिर शुरू से आरंभ करता। वह कह रहा था—

'सज्जनो! आप लोगों ने कभी पेरिस के सितारे देखे हैं? अगर आप यहाँ रहते भी होंगे, तो भी आपने वह सुन्दरता न देखी होगी जिसे दिखाने के लिए मैं यहाँ खड़ा हूँ। यह एक अपूर्व सुन्दरता है। यहाँ ये सितारे सभी रूप में दिखलाये जाते हैं। शाम के वक्त,··· प्रातःकाल, आधी रात को···। प्यार में, क्रोध के वक्त, ईर्ष्या दिखलाते

समय, विभिन्न मौकों पर ये सितारे कैसे बदलते हैं, यह भी आपको प्रत्यक्ष खोल कर दिखलाया जायगा!

'साथ ही आप इस बात का पक्का इतमीनान रखे कि उन सितारो के शरीर पर चार अगुल क्या, अंगुल भर की धज्जी भी नही होगी। अगर वे बिलकुल ही नगी न हुई तो आपके टिकट के केवल दाम ही नही, बल्कि उसका दसगुना मैं अपनी गाँठ से वापस कर दूँगा! यह बहार और कही अथवा और कभी नहीं मिलने की। परियों की, स्वर्ग की, अप्सराओं की कीमत आप लोगो के लिए केवल एक आना लगा रखी है। आइये! आइये!! आप सभी सज्जन इस तम्बू के भीतर पधारिये और सिर्फ एक आने के खर्च में स्वर्गीय आनन्द—अप्सराओं के नग्न सौन्दर्य का आनन्द—लूटिये। आइये! आइये!! आपके लिए फिर दरवाजा खोल दिया जाता है।'

हम दोनों भी तमाशा देखने गये। वहाँ से बाहर आते ही मेरे मुँह से निकला—

'अजीब बेहूदगी है! पेरिस मे बेहूदगियों की नुमाइश लगी हुई है।'

सचमुच उस प्रकार की बेहूदगी मैंने अपने जीवन में और कभी नही देखी थी।

मैं घर लौट आना चाहता था, पर एमिल ने कहा—

'अभी से घर जाकर क्या करेंगे? चलो, आज एक बिअर पीये। यहाँ बिअर की कुछ अच्छी दूकाने हैं जो और शहरो की अपेक्षा कहीं ज्यादा सस्ती हैं।'

हम लोग एक गली में पहुँचे। कुछ दूर सामने एक तख्ती पर 'इन्द्रा' लिखा हुआ जगमगा रहा था। रङ्ग-ढङ्ग से ही दीखता था कि यह कोई 'बार' होगा। हम लोग उसीकी ओर बढ़ते जा रहे थे। एमिल ने कहा—

'कितनी भी कंजूसी करूँ, तो भी जो दस रुपये मेरे पास अभी बचे हुए हैं, उनसे अधिक-से-अधिक कुछ दिन ही और कट सकते हैं। इन कुछ दिनों के बाद क्या होगा ? कहाँ से खाना मिलेगा ? कुछ भी पता नहीं ! उस समय हमें मारे-मारे फिरना ही है। तो फिर कल के ही दिन को हम वह दिन क्यों न मान लें ? जो बात कई दिन बाद आने वाली है उसे कल ही आया क्यों न समझ लें ? इसमें हमारा कुछ बिगडता तो है नहीं—और फ़ायदा यह है कि एक दिन तो मजा लूट लेंगे ! यह अफसोस नहीं रह जायगा कि जीवन में मजा न लूट सके। अगर कुछ दिन बाद चाहेंगे भी तो फिर इसे लूटने में असमर्थ रहेंगे। चलो, आज जम कर पिया जाय।'

वह बड़ी तेजी से आगे बढ़ने लगा मानो उसकी कोई बड़ी आशा सफल होने जा रही हो; पर वह आशा नहीं, उसकी निराशा की सीमा थी। मैं अपना भाग्य भी उससे कुछ भिन्न नहीं समझता था।

हम लोग 'इन्द्रा' नाम के जिस आमोद-गृह में घुसे वह वास्तव में ही एक 'बार' था। वहाँ एक बड़े से हॉल के बीच का भाग घिरा हुआ था और आँगन सा दिखलाई देता था। उसी के एक ओर बाजा बजाने वाले बैठे थे। लड़कियाँ जमात बाँध-बाँध कर आती थीं और बैलेट के तर्ज पर नाचती थी।

उस आँगन के चारों ओर उसारे से पड़े थे और उन उसारों में कपड़ों से घिरे हुए छोटे छोटे कमरे से थे। उन कमरो में लाल रङ्ग की धीमी बत्तियाँ जल रही थीं। वैसे ही एक कमरे के भीतर से दो लड़कियों ने हँसते हुए हमारी ओर देख कर कहा—

'आप लोग चक्कर लगाते-लगाते थक गये होंगे। आइये, यहाँ बैठ कर थोड़ा आराम कीजिये। यह केबिन खाली ही है।'

वे दोनों लडकियाँ आमने-सामने बैठी थीं। हम दोनो भी वहाँ

जा बैठे। बिअर तथा ब्राडी के गिलास ढलने लगे। थोडी देर मे ही सर्वसाधारण के नाच का बाजा बजने लगा और एमिल बगल में बैठी हुई लड़की के साथ नाचने के लिए उठ खडा हुआ। मेरी बगल में बैठी हुई लड़की से उसने कहा—

'आप इन्हे सिखलाइये।'

वह भी उठ खड़ी हुई और बिना एक शब्द उच्चारण किये ही मेरे कन्धे पर हाथ रखा। फौक्सट्रौट का बाजा बज रहा था। मैं उसके ताल मे नाचना चाहता था, पर ऐसा चक्कर आने लगा कि सीधे खड़ा रहना भी मुश्किल था। पहले दस कदम मे ही कई बार उस लड़की के पजे अपने जूते से दबा दिये। वह दबी जबान से चिल्लाने लगी—

'अउ! जरा खयाल रखिये, मेरी उँगलियो में घट्टे पड़े हैं।'

उस लड़की के साथ नाचने की वैसे ही मेरी इच्छा नहीं थी। इस-लिए मैंने उससे माफी भी नही माँगी। पता नही क्यों, इस समय वहाँ पर जितनी लडकियाँ थी उन पर मुझे घृणा सी आ रही थी। वे मुझे बाजारू लड़कियों से भी कही सस्ती दिखाई दे रही थीं। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि जो चाहे वही उन्हे साथ ले जा सकता था, इसलिए उनके पास बैठने मे भी मुझे अपना अपमान सा हुआ दीखता था।

नाचना बन्द करने पर भी मैंने उसे धन्यवाद नहीं दिया और जब मैं अपनी केबिन की ओर आने लगा उस समय भी उसे आगे न घुसने देकर खुद पहले घुस आया और जा बैठा। मैं समझ रहा था, वह जरूर ही मुझ पर नाराज हो गई होगी, पर नहीं, वह मुसकुराने की चेष्टा कर रही थी। मैं अपने सामने का बिअर का गिलास उठा कर पीना चाहता था, पर वह मेरे हाथ से छूट गया और मेज पर लुढक गया। सौभाग्य से उसमें थोड़ी ही सी बिअर थी, और इसीलिए केवल मेज ही भीगी, हम जहाँ बैठे थे वह स्थान नहीं भीगा।

वह लड़की फिर मेरी बगल में आ बैठी और एमिल जिस लड़की के साथ नाचने गया था वह और एमिल मेरे सामने अपने पहले के स्थान पर आ बैठे। एमिल ने मेरी ओर देख कर अपनी बाईं आँख दबाई। मैं उसका कोई मतलब न समझ सका। फिर उसने अपनी बगल मे बैठी लड़की को अपनी गोद में बिठा लिया। उसे वहाँ बैठने मे कोई एतराज़ भी नही हुआ। हाथ में लटकाने वाले चमड़े के बैग से छोटा आइना निकाल कर वह अपने चेहरे पर पाउडर पोतने लगी; साथ ही उसने अपनी एक टाँग दूसरी पर इस तरह रख ली थी कि जाँघ के मोजे बाँधने वाले फीते तक दीखने लगे थे! उसने मेरी ओर देखते हुए कहा—'

'आप तो ऐसे गुस्से मे भरे दीखते हैं मानो किसी को खा जाने पर उतारू हो।'

'हाँ, बच कर रहिये। कही मैं आपको ही न चट कर जाऊँ।'

हम सब लोग हँसने लगे, विशेषकर दोनों लड़कियाँ, और उनमे भी जो मेरी बगल मे बैठी थी वह और भी अधिक।

'ऐसी नाराजी क्यो?' उसने पूछा।

मैंने कोई जवाब नही दिया। मेरा क्रोध बढता जा रहा था। किसके ऊपर वह क्रोध था यह मुझे ठीक नही मालूम था—उन लड़कियो पर, जो इतनी बेशर्म थीं, या अपने ऊपर, जो बिना समझे-बूझे ऐसी बेहूदी जगह आ फँसा था? मेरे दिल पर एक गहरा आघात पहुँचा था। नारी-जाति के प्रति मेरी जो उच्च भावना थी उसे उन लड़कियो ने नष्ट सा कर दिया था। जिसे मैं अपनी कल्पना में कहीं सुन्दर समझ बैठा था उसे ही उन दोनो ने इस रूप में पेश किया कि वह सुन्दरता तो जड़-मूल से नष्ट होती मालूम ही पड़ी, साथ ही उसके स्थान पर एक प्रकार की घृणा ने नई जड़ सी जमा ली। इस समय मुझे नारी-जाति मे पशुता के सिवा और कोई चीज़ दिखाई ही नहीं दे

रही थी। पहले उनके प्रति मेरे मन मे एक सहज आकर्षण था, जिसके कारण मै उनके लिए सब कुछ त्याग सकने की क्षमता रखता था, पर अब वे मुझे इतनी पतित दिखलाई दे रही थी कि उनके साथ बैठने मे न केवल घृणा हो रही थी, बल्कि ऐसा लग रहा था मानो मै स्वय पतन के गहरे खड्ड मे गिरने जा रहा हूँ।

मुझसे कोई जवाब न पाकर और उसके बदले मेरे चेहरे पर इस तरह के उतार-चढ़ाव देख कर उस लड़की ने मानो आग पर घी डालने के लिए ही पूछा—

'ज्वालामुखी किस पर फटना चाहता है ?'

'तुम लोगो की बेशर्मी और बेहयाई पर!' मैंने आवेश मे कह डाला।

दोनो लड़कियाँ और एमिल भी स्तब्ध से रह गये। थोडी देर मे उन लड़कियो का आश्चर्य क्रोध मे बदल गया और वह लड़की, जो एमिल की गोद मे बैठी थी, बोल उठी—

'आपको हमारा अपमान करने में शर्म नही आई ?'

'माफ कीजियेगा, मेरे दोस्त को शराब पीने की आदत नही, थोड़ा नशा चढ आया है। नही तो वैसे उनका स्वभाव ऐसा नही है।' एमिल ने लडकियो को शान्त करने के लिए कहा।

'जी नही, मैं नशे में नही हूँ।' मैंने उसी आवेश मे एमिल की बात काट दी।

'तो फिर हम बेशर्म और बेहया हैं ?' मेरे पास बैठी लडकी गरज उठी।

'बेशर्म और बेहया ही नही हैं, आप लोग गन्दगी की खान हैं, आप लोगों के साथ बैठने से मेरा जी मचलाने लगा है।' मैंने भी गरमी के साथ जवाब दिया।

'तुम्हे क्या हो गया है आज, कैसी बातें बक रहे हो ?' एमिल ने घबड़ा कर कहा। पर उसकी गोद में बैठी लड़की बोली—

'आपके मुँह से हम भद्र फ्रेंच महिलाओं के प्रति ऐसे भद्दे शब्द निकल रहे हैं, और आप उनके लिए माफी माँगने के बजाय उलटा उन्हें सत्य सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं ! आपकी अभद्रता तो कुछ साधारण नहीं है !'

'मेरी अभद्रता ?' मैं और भी जल-भुन कर बोला—'जरा खुद अपनी ओर तो देखिये, आपमे किधर से भद्रता के लक्षण दिखाई दे रहे हैं ?'

'आप तो ऐसी बाते कर रहे हैं मानो मेरे ऊपर आपका पूरा अधिकार ही हो। आप कुछ ऐसा तो नही समझ बैठे हैं कि इस शराब और बिअर का दाम चुकता कर देने से मेरे शरीर पर आपका अधिकार हो जायगा ? हम लोग वैसी लालची नहीं, और न हमे वैसे किसी पैसे की ही दरकार है। मेरा पति खुद यहाँ के बड़े इजीनियरों में एक है ; हैसियत मेरी ऐसी है कि आपको खरीद ले सकती हूँ।'

उस लड़की की बात काटती हुई मेरी बगल में बैठी लड़की कहने लगी—

'शायद इस खर्च के कारण आप बहक रहे हैं। यहाँ आपने भी जो कुछ पी है उसका दाम हम लोग चुकायेंगी। आप हमे कोई ऐसी-वैसी खरीदी जा सकने वाली लौंडी-बाँदी न समझिये। हम आपकी तरह अशिक्षित भी नही हैं। हम लोग अभी पिछले साल यूनिवर्सिटी से पढ़ाई खत्म करके निकली हैं और केवल छः माह ही पहले मेरा विवाह हुआ है।'

मैं सन्न हो गया। एक-ब-एक मन मे आया—'सबसे अधिक सभ्य लोगों में इन्ही की गिनती होती है ?'

'मेरे दोस्त की बातो का आप लोग खयाल न करे। वे इस समय नशे में हैं।' एमिल ने कहा।

'पर जब वे हमें बेशरम, बेहया ठहराने लगे हैं तो हम कैसे चुप रही सकती हैं?'

'जी हाँ! अगर मैंने अपने भीतर सच्ची बात छिपा कर आपसे यह कहा होता कि आपका चेहरा बड़ा ही सुन्दर तथा आकर्षक है तो आप जरूर ही नाराज न होती, पर मैं यह कह ही कैसे सकता था? मेरे मन की असली बात......'

मेरी बात काट कर सामने बैठी लड़की कहने लगी—

'यही न कि हम बड़ी कुरूपा हैं?'

'नही, नही! इन्हे ही कहने दो! आपके मन की असली बात हमारे सम्बन्ध मे क्या थी?' मेरी बगल मे बैठी लड़की ने पूछा।

'जाने भी दीजिये! यह बात कुछ मजे की नही! अजी, तुम भी यहाँ क्या बातें करने लगे!' एमिल ने कहा।

'हाँ, हाँ, आप अपनी बात तो पूरी कर डालिये।'

'जी हाँ! असली बात यही है कि मुझे पाउडर की पुतलियाँ बिलकुल ही पसन्द नही और मैं उन्हे देखना नही चाहता।'

'जब उन्हे देखना ही नही था तो फिर आप यहाँ आये ही क्यों?'

'अनजाने।'

'पर अब तो जान गये हैं।'

'इसीलिए जा भी रहा हूँ।'

'आनन्द से, खुशी से रहिये।' दोनों लड़कियों ने दुहराया।

मैं उस आमोद-भवन से बाहर निकला। बाहर इस प्रकार साँस लेने लगा मानो अब तक उस घर के भीतर दम घुट रहा था, साँस लेने

की साफ हवा मिल ही नही रही थी। फिर उस स्थान से सटे एक पार्क की ओर निकल गया और बहुत देर तक वहाँ घूमता रहा।

'इतने दिनो से मनुष्य-समाज में रहता चला आ रहा हूँ, पर अब तक उसे पहचान नही पाया। कवि, कलाकार, साहित्यिक खुद धोखे में रहते हैं और दूसरों को भी धोखा दिया करते हैं। उनके ही बहकावे में आकर लोग 'रोमैंटिक जीवन' के फेर में पड़ते हैं। अपने दैनिक जीवन के कड़वेपन को लोग स्वीकार नहीं करना चाहते और इसीलिए वे बहकावे मे आ भी जाते हैं।'

यही सोचता हुआ घर लौटने का विचार कर पुनः सॉमिशेल के पास आया। अभी कुछ देर पहले जैसी मेरे मन की अवस्था थी, इस समय ठीक उसकी प्रतिक्रिया सी दिखलाई देने लगी। इस समय मन में आने लगा—

'मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। नाहक एक बड़ा ही अच्छा मौका हाथ से निकल जाने दिया। लोग ससार मे जिसे सबसे बडा सुख कहा करते हैं, उसका उपभोग न सही, पर कम-से-कम उससे एक बार भली भाँति परिचय तो प्राप्त कर लेता। सचमुच ही मैंने बहुत बड़ी भूल की है। नारी-जाति के प्रति मैं जैसे ऊँचे विचार रखा करता हूँ, उन्हे जितना ऊँचा स्थान दिया करता हूँ, दर-असल यह सब कल्पना-जगत् अथवा कविता के लिए ठीक है। असली जिन्दगी मे उन्हे कोई उसी दृष्टि से देखना चाहे तो दर-असल ही उससे बड़ा मूर्ख दूसरा और कोई नहीं। मुझे यही अचरज हो रहा है कि आखिर उस लड़की ने मुझे मूर्ख क्यों नही कहा। स्त्रियो के सम्बन्ध में जैसी मूर्खता मैं दिखलाया करता हूँ उससे बढ कर दूसरी और क्या हो सकती है? मैं उन्हे एक प्रकार का खिला हुआ फूल समझा करता हूँ, जिसका सौन्दर्य देख कर ही तृप्त हो

जाने मे मुझे औचित्य दिखलाई देता है। उसे डाली से अलग कर हाथों से मसल डालने वाला मेरी दृष्टि मे बड़ा क्रूर बन जाता है, और मसली जाने वाली स्त्रियों की सुन्दरता भी नष्ट हो जाती है।

'पर उन्हे देख कर ही सन्तोष कर लेना कैसे निभ सकता है? उनके सम्बन्ध मे ये बाते, ये भाव कागज पर लिखने के लिए हैं। असली जीवन में उनका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे मसला जाना पसन्द करती हैं। जो इस दृष्टि से उनके समीप नही पहुँचता उसे वे अवश्य ही मूर्ख कहती होंगी, और उनका यह कहना भी जायज है।'

सॉमिशेल मे बहुत से स्त्री-पुरुषों को हाथ मे हाथ डाले हुए जाते देख रहा था। उन्हे देख कर सोचने लगा—

'सब लोगों का रास्ता एक ही तरह का है। मैं ही क्यों उनसे भिन्न एक दूसरे ही रास्ते पर चलना चाहता हूँ? उस सुख से, जिसे मैं भी भीतर-ही-भीतर सुख मानता हूँ, अपने को अलग क्यों रखूँ? उससे वंचित रहने पर अपना जीवन नीरस बनाने के सिवा मेरे हाथ और क्या चीज लग सकती है?

'एमिल ही मेरे सामने एक मिसाल है। अवश्य ही उसका जीवन मेरे जीवन से कहीं सुखमय है।'

एमिल शायद अब भी उसी इन्द्रा नाम के आमोद-भवन मे हो, इस खयाल से उपर्युक्त बाते सोचता हुआ उसी ओर बढ़ता जा रहा था। अभी उस गली में मुड़ना ही चाहता था कि पीछे से किसी ने पुकारा—

'नेगर!'

आवाज बिलकुल परिचित स्वर में होने के कारण मैं चौंक गया और मुड कर देखा। जेनेट हँसती हुई सामने से आई और अपना हाथ बढाया। उसके शरीर पर वही कपडे थे जिन्हे मैं पेरिसियन करार दिया

करता था। केवल चेहरा थोड़ा और भी बदल गया था। पाउडर से पुते रहने पर चेहरे का फीकापन तथा पीलापन दूर नही हो पाया था। आँखो के पास तथा गालों पर की ढलती जवानी की रेखाएँ इस समय साफ़-साफ दिखलाई दे रही थी।

'अब तुम बड़े आदमी हो गये हो, मुझे पहचानना भी नहीं चाहते।' उसने ताना कसा।

जिस पार्क से मैं अभी आ रहा था, हम लोग फिर से उसी ओर चले। थोडी देर इधर-उधर की बाते करते रहने के बाद उसने कहा—

'माफ करना! मैं थक गई हूँ। मुझे थोड़ा सहारा दो।'

इतना कह वह मेरी बाँह पकड़ कर चलने लगी। रास्तों पर काफी रोशनी थी। उसका मेरे साथ इस तरह चलना देख कर लोग मेरे विषय मे क्या धारणा बनायेंगे, यह बात मुझे खटकने लगी। पर यह सोच कर अपनी तसल्ली कर ली कि आखिर यहाँ मुझे जानता ही कौन है?

जेनेट के कथनानुसार उसका जीवन पहले की ही तरह चल रहा था, सर्दियों के बाद से अब तक कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ था। इधर अक्सर बीमार रहने के कारण व्यवसाय भली भाँति नही चल पाता था, इसलिये गरमी के दिनों के लिये उसने मेलों में तमाशा दिखाने वालों के हाथ पट्टा लिख दिया था और उन्ही के साथ बुलवार के मेले में तमाशा दिखलाया करती थी। वह कौन सा तमाशा दिखलाती होगी, यह बात मैं सोच ही रहा था कि उसने तुरन्त 'पेरिस के सितारे' नाम के ख़ीमे का जिक्र किया, बस पूरा दृश्य ही मेरे सामने आ गया। उसका बात करने का ढङ्ग अब भी पहले की ही भाँति था। रूखी हँसी चेहरे पर दिखलाते हुए उसने कहा—

'अब ज्यों-ज्यों जवानी पीछे हटती जाती है, मेरी क़ीमत भी कम

होती जाती है। यह स्वाभाविक ही है। पुरानी चीज़ो की कीमत दिन-ब-दिन कम ही हुआ करती है। पहले मेरे चित्र देखने की कीमत एक आना थी और अब साक्षात् देखने की उतनी हो गई है! कुछ दिनो के बाद मेरी कीमत इतनी भी नही रह जायगी।'

मेरा ध्यान उसकी बातों की ओर नहीं था और न मैं उसके चेहरे को ही देख रहा था। उसका चेहरा मैं बहुत-कुछ अपनी कल्पना मे देख रहा था और वह मुझे स्वप्न में दिखलाई देने वाली छाया-जैसी दीख रही थी। उसने अपने गले में, बाहर सर्दी न रहने पर भी, वही अपनी पेरिसियन ढङ्ग की पुरानी खाल लपेट रखी थी और कोट भी पहने थी; पर मुझे अपनी कल्पना मे वह ऐसी दीखती थी मानो सर्दी के कारण वह थर-थर काँप रही हो। मुझसे बाते करते समय जब वह अपना मुँह खोलती तब उसके दाँत दिखलाई देते; पर मुझे ऐसा जान पड़ता मानो उसके दाँत बिलकुल हैं ही नही। चेहरा उसका अब भी अपनी पूरी जवानी को न पहुँचा हुआ सा दीखता था, पर दृष्टि ऐसी साठ वर्ष की बुढ़ियो जैसी थी जो जीवन में बहुत-कुछ झेल चुकी होती हैं। चेहरा भरा रहने पर भी वह मुझे हड्डियों की माला सी बनी दीख रही थी। मैं डर रहा था कि वह मेरे हाथ का सहारा लिये अपने को घसीटती आ रही है, कहीं एक-ब-एक अचेत होकर वहाँ सड़क पर ही न गिर पडे। अपने भीतर मैं उसके चेहरे पर कोमलता और भयानकता का एक साथ ही अद्भुत मिलन देख रहा था और वह मिलन इस प्रकार का था कि मुझे भात सा कर रहा था।

सबसे अधिक मार्के की बात यह थी कि उस लड़की मे मुझे ऐसा दिखलाई देता था मानो संसार को दोष, पाप अथवा भयानकता से भरने वह नहीं आई है, जैसा कि बाहर से पहली दृष्टि मे वैसी लड़कियो का चेहरा अक्सर दिखलाई दिया करता था। जवानी और बुढ़ापे का

जैसा मिलन उसके चेहरे से टपकता था उसके भीतर से भी वैसा ही दोष तथा निर्दोष, कोमलता तथा भयानकता का चलता हुआ द्वन्द स्पष्ट झलक रहा था। एक क्षण के लिये अपने को यह सोचने से भी नहीं रोक सका कि मैं जिस प्रकार के द्वन्द उसमें देख रहा हूँ, वह लड़की भी अपने भीतर चल रहे इस द्वन्द का अनुभव कर रही है।

'आखिर हम लोग जा कहाँ रहे हैं?' वह एक-व-एक मुझसे पूछ बैठी।

'उस पार्क की ओर।'

'मुझे सर्दी लग रही है। पार्क की हवा मुझे पसन्द नहीं। इन गलियों में तथा यहाँ रहने वाले लोगों में जो विशेष प्रकार की गन्ध का अनुभव करती हूँ, उससे मैं अपने को अलग नहीं कर सकती। नहीं, स्वच्छ हवा से मुझे चिढ है। चलो, लौट चलें।'

हम लोग जिस रास्ते से अभी आ रहे थे उधर ही लौट चले। वह लड़की स्वयं आगे बकती-झकती जा रही थी; वह शायद कुछ देर के लिये यह भूल गई थी कि मैं उसके साथ-साथ चल रहा हूँ। वह बहुत-कुछ अपने आपसे बातें कर रही थी। वह कह रही थी—

'इन गलियों और ऐसे मकानों से मुझे बिलकुल ही भय नहीं लगता, अपने को यहाँ पर बिलकुल ही सुरक्षित पाती हूँ, पर ज्योंही यहाँ से निकल कर किसी खुले मैदान अथवा बाग़ में जा पहुँचती हूँ, मेरा कलेजा धड़कने लगता है; मालूम पडता है, मेरे चारो तरफ लोग खड़े हैं जो मेरी ओर अन्धाधुन्ध पत्थर फेंकते जा रहे हैं। तुरत ही खयाल आता है कि अगर अपने को बचाना है तो सर नीचा कर लेना चाहिये, जमीन में अगर कहीं पर खड्ड या गढ़ा हो तो वहाँ छिप जाना चाहिये। अभी-अभी हाल की बात है, मैं अकेली एक दिन टहलने निकली थी। जिधर निकली उधर एक खुला मैदान सा था। दिन का समय था। अभी

आधा मैदान भी पार नही कर पाई थी कि दीखने लगा मानों चारों ओर से लोग मेरी ओर पत्थर फेंक रहे हैं और उनकी चोटों के कारण मेरे सारे शरीर से खून बहने लगा है। मै जमीन मे गड़ कर बैठ गई, घण्टो वैसी ही बैठी रही, जब अन्धेरा हो गया तब जाकर मेरा मन शात हुआ और उठ कर घर आई। अन्धेरे मे मुझे अपनापन दीखता है, उससे मुझे भय नही लगता; पर मैदानों का अन्धेरा नही, इन गलियों का। इन गलियो मे ही और विशेषकर अन्धकार के समय जब किसी परदेशी का यहाँ दम घुटने लगता है, मैं भली भाँति खुल कर साँस लेती हूँ। पर बाहर खुले मैदान मे मेरी साँस घुटने लगती है।'

वह आगे और भी कुछ कहना चाहती थी, पर यह देख कर कि मैंने उसका हाथ छोड़ दिया है और सामने से आते हुए लोगो की ओर देखने लगा हूँ, वह चुप हो गयी। हमारे सामने की ओर से एमिल अपने दोनों ओर की दोनों लड़कियो की बाँह में बाँह डाले चला आ रहा था। मै उनसे अपनी नजर बचाना चाहता था, पर बचा नहीं पाया। एमिल के दाहिनी ओर को लड़की बोल उठी—

'ओः! कहिये, यह जनाब आप ही हैं? अभी कुछ देर पहले तो आप सदाचार की ऐसी डींग मार रहे थे कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं। और अब वेश्याओं के साथ जाने में आपके सदाचार को धक्का नही लग रहा है?'

मैं सर नीचा किये उसकी बात सुन रहा था; पर मेरी बगल में खड़ी जेनेट अपने पाँव इस प्रकार पटक रही थी मानो हजारो मच्छर तथा खटमल उसे एक साथ ही काट खाये जा रहे हों।

'इन्हे भली औरतो से क्या मतलब?' दूसरी लड़की आगे कहने लगी—'ये तो डायनों के ही—और वह भी ऐसी कि जिन्हे देख कर ही भय लगे—पीछे जाया करते हैं।'

जेनेट का चेहरा तमतमा आया। पाउडर से पुते सफेद चेहरे पर भी क्रोध की लाली स्पष्ट दीखने लगी। वह बिना किसी की ओर देखे ही आगे बढ़ने लगी। उसके पाँव इस प्रकार पड़ रहे थे मानो उसके भीतर जितना कुछ अभिमान का भाव है उसे इस समय वह अपनी चाल में दिखलाना चाहती है। उसका उस प्रकार से चलना देख कर मेरे सामने खड़ी लड़कियाँ हँसने लगी।

एक ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे रोकते हुए कहा—

'जरा रुकिये। यह तो मुझे बतलाइये कि आप अभी तो हमें और हमारे साथ ही-साथ सभी सभ्य फ्रेंच महिलाओं को पाउडर की पुतलियाँ बतला रहे थे और बदसूरती का नमूना सिद्ध करना चाहते थे, पर क्या वह डायन ही आपकी पसन्द के अनुसार सुन्दरी कही जाने योग्य है?'

मुझे उन 'सभ्य' तथा उस 'डायन' मे इस समय कोई भी अन्तर नही दिखलाई दे रहा था।

सेलीन

साँमिशेल के पास ही पेरिस का विश्वविद्यालय सौरबोन था। कभी कभी मैं उस ओर टहलने निकल जाया करता था। मेरी दृष्टि एक खास किस्म के चेहरों पर पड़ती। वे जगे हुए दिखाई देते—नीरोग शरीर, पतली ठुड्डी और प्रशस्त तथा उन्नत, गोल ललाट। बुद्धि उनमें कूट-कूट कर भरी दिखाई देती। ऊपर ऊपर आनन्द पाने की इच्छा अपना खेल दिखाती होती और उसके पीछे से गम्भीर, सरल, सच्चा हृदय बाहर को झाँक रहा होता। आनन्द पाने की इस इच्छा और हृदय की सरलता के बीच किसी किस्म का सघर्ष चलता नहीं दिखाई देता था—दोनों समान रूप से साहस और निष्कपट भाव धारण किये होते।

भली भाँति उन्हें देख पाने के लिये कभी कभी मैं ऐसे चेहरे वालों के पीछे हो लिया करता। वे मुझे कतरी हुई दाढी वाले, कानों पर न अटकाये जाने वाले चमकते हुए चश्मे लगाये प्रोफेसरों के व्याख्यान देने वाले कमरे में ले जाते। जिनका चेहरा अधिक गम्भीर होता वे किताबों से भरे हॉल में पहुँचा दिया करते। मैं समझ जाता, यह ज्ञानोपासना का मन्दिर है।

पेरिस का सबसे बड़ा उपासना-मन्दिर मैं पहले ही देख चुका था। अलखला की तरह का लम्बा कोट धारण किये भक्तों की सी शक्ल के दिखाई देने वाले व्यक्ति एक खास तरह के घण्टे की आवाज सुन कर सीन के एक टापू पर जाते। उनके साथ हो जाने पर मैं पेरिस के प्रख्यात गिरजे—नोत्रदाम—के सामने जा खड़ा होता। 'गौथिक' ढङ्ग की कला मे उस गिरजे को तैयार कर फ्रेंच लोगो ने वास्तव मे ही उसमे अपना हृदय आँकने की कोशिश की है। इसमें सचमुच ही फ्रांस का सार्वजनिक हृदय छिपा है। शताब्दियों से यही अकेला गिरजा पेरिस का सार्वजनिक उपासना-मन्दिर रहता चला आया है। इसीलिये जब जब फ्रास पर बड़ा-बड़ी विपत्तियाँ आयी हैं लोग वहाँ जाकर उपसना करते, सान्त्वना पाते और आगे के जीवित रहने के सग्राम के लिये वहीं से शक्ति पाते आये हैं।

सौरबौन में भी मुझे घण्टी की टुनटुनाहट सुनाई देती। यह भी नोत्रदाम के घण्टे की तरह कानों को पार करती हुई हृदय तक पहुँच जाती थी। इन दोनों ही आवाजो मे मुझे शुद्ध फ्रासीसी हृदय की धड़कन सुनाई देती थी।

पर तुरन्त ही खयाल आता कि उस आवाज को अनसुनी करते रहने वालों की ही तो सख्या पेरिस में अधिक है। जिन कई अन्धेरी गलियों की झाँकी लगा चुका था वहाँ तक तो वह आवाज पहुँचती ही नही थी। उन गलियों मे चक्कर काटने वाले चेहरे सौरबौन और नोत्रदाम के चेहरों का मजाक उडाते हुए, उनको चिढ़ाने के खयाल से मुँह बनाते हुए से नजर आते।

जब सौरबौन का दरवाज़ा बन्द होने लगता तब मैं शुद्ध हवा की खोज मे नदी किनारे जा निकलता। वास्तविक पेरिस को स्वप्न की यथार्थता की तरह सुन्दर मैं वहीं से देख पाता था।

सन्ध्या के कोलाहल मे पेरिस के सगीत की स्वरलिपि दिखायी देती। मोटरो का जक् जक् और स्टीमरों का छिप् छिप् उसका एक अश मात्र होता। उसका मुख्य भाग तो मनुष्यों के भीतर का प्राणभरा सगीत होता। मेरे सामने चलने-फिरने वाले मनुष्य शरीरधारी नही, बल्कि स्वरलिपि के अक्षर दिखाई देते। उनका कोलाहल उन अक्षरो के ताल पर निकला हुआ ही जान पड़ता।

सन्ध्या की उस रोशनी के प्रकाश मे मैं उन सबका भीतरी चेहरा देखता। यह मुझे बड़ा नम्र और सहानुभूति से भरा जान पड़ता। मेरी इच्छा उनसे दोस्ती करने की होती। यह दोस्ती मेरे अनजान में ही गहरी हो जाती। वे कौन हैं और किस जगह के रहने वाले हैं, आदि बातो का अनुसन्धान करने की मुझे आवश्यकता नही पड़ती थी, बिना बातचीत किये ही मै उनके हृदय का संगीत अच्छी तरह समझ पाता था।

किसी-किसी का चेहरा थका-माँदा दिखाई देता। कारखाने में काम करने वाली कई लड़कियो को जम्हाई लेते देखता। उनके भीतर की ज्ञान की पिपासा मन्द हुई दिखाई देती। वही बाहर के चेहरे पर आकर उदासी का रूप धारण कर लेती। दूसरी ओर पेटभर खाने और कीमती कपड़े धारण करने वालों को भी आलसी के रूप में देखता। उनकी आँखे कठोर रहती। ज्ञानोपासना से वे और भी अधिक दूर दिखाई देते।

नदी-किनारे पैदल चलने वालो का रास्ता बहुत तङ्ग था। दैनिक जीवन के गहरे सग्राम में जुटे रहने वाले मजदूर स्त्री-पुरुषों की रफ्तार धीमी रहती। उनमें से जिनके चेहरों पर शिकन न होती वही मुझे विशेष प्रकार से आकर्षित करते थे। कभी कभी कारखानेदार या धनी दूकानदार जैसे दीखने वाले व्यक्ति अपनी लापरवाही दिखाते हुए

उन्हे धक्का देकर आगे निकल जाते। जो जरा सज्जन होते वे पीछे फिर कर 'पारदों' (क्षमा) कह दिया करते। मजदूर इसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ते। कोई कोई अपनी वास्तविक मुस्कान द्वारा धक्का देने वालों को क्षमा करते हुए आगे बढ जाते। इस प्रकार के उदार चेहरों मे मुझे एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य दिखाई देता।

पेरिस की उस सन्ध्या की रोशनी मे उन सबको देख कर मैं अपने आपको सम्बोधित कर कहने लगता—

'तुमने अभी कुछ भी नही देखा।'

पेरिस की उस रोशनी में मेरी दृष्टि सॉमिशेल के पुल पर एक किताब वाली कुमारी पर पड़े बिना किसी दिन भी न रहती। मैं उससे परिचित नही था पर चेहरे का काट देख कर मैंने उसका नाम जान-द-आर्क दे रखा था। इतिहास की कहानियों में ओर्लियेन्स की उस कुमारी की वीर-गाथा पढ़ चुका था और उसीके आधार पर अपनी कल्पना मे उसका जो चित्र बनाया था उसी की दो-एक रेखाएँ उस किताब वाली कुमारी मे दिखाई दीं।

उसका चेहरा मध्य-फ्रास की लड़कियों के काट का था। आँखों में कान्ति उतनी नही थी, जितनी आकार मे वे बड़ी थी। भौंहे बहुत लम्बी और आँखों के किनारे तक पहुँचने वाली थी। चेहरे के अनुपात में नाक छोटी थी। होंठ पतले और वेदना-द्योतक थे। गाल कुछ धँसे हुए होने पर भी सौन्दर्य को कम नही करते थे, यह एक अजीब बात थी। उसका चेहरा किसी अपरिचित के हृदय में भी उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने वाला था। अवस्था यद्यपि लगभग बीस साल की ही थी, पर चेहरे मे तारुण्य की अपेक्षा प्रौढ़ता अधिक थी— जिसके कारण वह गम्भीर मालूम होती थी। हृदय के भीतर यौवन-

सुलभ महत्वाकाक्षा के भाव अगर होंगे भी तो चेहरे की निराशा-द्योतक रेखाएँ उन्हे छिपाये हुए थी।

दूकान पर किसी ग्राहक के न रहने पर वह किताब पढती रहती, पर किसी के वहाँ पहुँचते ही अपनी छोटी कंघी का चिह्न लगा कर पुस्तक रख देती और उठ कर खड़ी हो जाती। उसे निकट से देख सकने के लिये एक दिन मैं भी उसकी दूकान पर जा खड़ा हुआ। पास से उसका चेहरा मोम की तरह फीके रंग का, पर बड़ा आकर्षक जँचा। आँखों में ऐसी उदासी भरी थी कि सान्त्वना देने के लिये सहसा उसे आलिंगन कर लेने को जी चाहा।

उसकी आँखें तो और कुछ पूछ रही थीं, पर मुँह से दूकानदारों जैसी नम्र भाषा में उसने पूछा कि मै कौन सी किताब चाहता हूँ।

'आप अभी कौन सी किताब पढ़ रही थी?' मेरे लिये कुछ कहना आवश्यक हो गया था, इसीलिये मैंने पूछा।

'यह तो सॉ सिमौन की याददाश्त है।' कहते हुए उसने मेरी ओर वह पुस्तक बढ़ाई।

'इसकी जबान तो मेरे लिये बहुत सख्त है।' मैंने उसे पुस्तक लौटाते हुए कहा।

'फिर आप खुद ही चुन ले।' कह कर वह फिर पुस्तक का चिह्न हटा कर आगे पढ़ने लगी।

मैं किताबें उलट-पलट कर देखने लगा। पर उनसे कहीं आकर्षक उस बेचने वाली का चेहरा था। मैं उसकी ओर बेशर्म हो एकटक देखने लगा। अपनी किताब के पन्ने उलटते समय जब वह अपनी आँखे ऊपर उठाने को होती उससे पहले ही मैं सामने पडी जिस-किसी किताब के पन्ने उलटने लगता।

दूकान बन्द करने का समय आने पर उसने पूछा—

उन्हें धक्का देकर आगे निकल जाते। जो जरा सज्जन होते वे पीछे फिर कर 'पारदों' (क्षमा) कह दिया करते। मजदूर इसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ते। कोई कोई अपनी वास्तविक मुस्कान द्वारा धक्का देने वालों को क्षमा करते हुए आगे बढ़ जाते। इस प्रकार के उदार चेहरों में मुझे एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य दिखाई देता।

पेरिस की उस सन्ध्या की रोशनी मे उन सबको देख कर मैं अपने आपको सम्बोधित कर कहने लगता—

'तुमने अभी कुछ भी नहीं देखा।'

पेरिस की उस रोशनी में मेरी दृष्टि सॉमिशेल के पुल पर एक किताब वाली कुमारी पर पड़े बिना किसी दिन भी न रहती। मैं उससे परिचित नहीं था पर चेहरे का काट देख कर मैंने उसका नाम जान-द-आर्क दे रखा था। इतिहास की कहानियो में ओर्लियेन्स की उस कुमारी की वीर-गाथा पढ़ चुका था और उसीके आधार पर अपनी कल्पना में उसका जो चित्र बनाया था उसी की दो-एक रेखाएँ उस किताब वाली कुमारी में दिखाई दीं।

उसका चेहरा मध्य-फ्रांस की लड़कियों के काट का था। आँखों में कान्ति उतनी नहीं थी, जितनी आकार में वे बड़ी थीं। भौंहें बहुत लम्बी और आँखों के किनारे तक पहुँचने वाली थीं। चेहरे के अनुपात मे नाक छोटी थी। होंठ पतले और वेदना-द्योतक थे। गाल कुछ धँसे हुए होने पर भी सौन्दर्य को कम नहीं करते थे, यह एक अजीब बात थी। उसका चेहरा किसी अपरिचित के हृदय में भी उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने वाला था। अवस्था यद्यपि लगभग बीस साल की ही थी, पर चेहरे में तारुण्य की अपेक्षा प्रौढ़ता अधिक थी—जिसके कारण वह गम्भीर मालूम होती थी। हृदय के भीतर यौवन-

सुलभ महत्वाकान्ता के भाव अगर होंगे भी तो चेहरे की निराशा-द्योतक रेखाएँ उन्हे छिपाये हुए थी।

दूकान पर किसी ग्राहक के न रहने पर वह किताब पढती रहती, पर किसी के वहाँ पहुँचते ही अपनी छोटी कंघी का चिह्न लगा कर पुस्तक रख देती और उठ कर खड़ी हो जाती। उसे निकट से देख सकने के लिये एक दिन मैं भी उसकी दूकान पर जा खड़ा हुआ। पास से उसका चेहरा मोम की तरह फीके रग का, पर बड़ा आकर्षक जॅचा। आँखों में ऐसी उदासी भरी थी कि सान्त्वना देने के लिये सहसा उसे आलिगन कर लेने को जी चाहा।

उसकी आँखें तो और कुछ पूछ रही थीं, पर मुँह से दूकानदारों जैसी नम्र भाषा में उसने पूछा कि मैं कौन सी किताब चाहता हूँ।

'आप अभी कौन सी किताब पढ़ रही थी?' मेरे लिये कुछ कहना आवश्यक हो गया था, इसीलिये मैंने पूछा।

'यह तो सॉ सिमौन की याददाश्त है।' कहते हुए उसने मेरी ओर वह पुस्तक बढाई।

'इसकी जबान तो मेरे लिये बहुत सख्त है।' मैंने उसे पुस्तक लौटाते हुए कहा।

'फिर आप खुद ही चुन ले।' कह कर वह फिर पुस्तक का चिह्न हटा कर आगे पढने लगी।

मैं किताबें उलट-पलट कर देखने लगा। पर उनसे कहीं आकर्षक उस बेचने वाली का चेहरा था। मै उसकी ओर बेशर्म हो एकटक देखने लगा। अपनी किताब के पन्ने उलटते समय जब वह अपनी आँखे ऊपर उठाने को होती उससे पहले ही मैं सामने पड़ी जिस-किसी किताब के पन्ने उलटने लगता।

दूकान बन्द करने का समय आने पर उसने पूछा—

'आपको कोई किताब पसन्द आयी ?'

'अभी मैं निश्चय नही कर पाया।' अपना पाकेट टटोलते हुए मैंने कहा।

'कोई हर्ज नहीं, अगले दिन आप और ढूँढ़ लीजियेगा।' उसने हँसते हुए कहा—'मैं रोज सन्ध्या समय ही दूकान खोला करती हूँ।'

उसके चेहरे पर हँसी देख कर मेरा साहस कुछ और बढा। मैंने पूछा—

'आप अब किधर जायँगी ?'

'मैं मोमात्र की तरफ जाऊँगी। वहीं मैं रहती हूँ।'

'मुझे भी उधर ही जाना है,' कह कर मैं भी उसके साथ हो लिया।

'आप बहुत दिनो से यह दूकान कर रही हैं ?' रास्ते मे मैंने पूछा।

'छः महीने से ! लेकिन अब मैं इसे छोड़ना चाहती हूँ।'

'क्यो ? इसमें कोई आमदनी नहीं ?'

'है क्यों नही, पर…फिर भी छोड़ दूँगी।'

मैंने उसे बाते करने के लिए प्रोत्साहित किया। वह अपने जीवन की नीरसता प्रकट करने लगी। अपने जीवन से वह असन्तुष्ट थी। पर उस असन्तोष का कारण बाह्य परिस्थिति नहीं, बल्कि उसका अपना मन ही था।

'यह दुनिया आदमियों के रहने योग्य नहीं। हम लोगों का ससार बड़ा ही मन उबाने वाला है।'

इसका कारण पूछने पर उसने सिर्फ इतना ही कहा—

'यहाँ के हर एक क्षेत्र की भूमि ऊसर दीखती है।'

'ऐसा क्यो ?'

'क्या आप फ्रेंच लोगों के बीच नही रहे ?'

'रहा क्यो नही हूॅ। लेकिन मैंने तो उन्हे मौज करते हुए ही देखा है !'

इसका उत्तर उसने रूसी हॅसी द्वारा दिया। मेरी आँखो के सामने से एक परदा सा उठता जान पड़ा। उससे और कुछ पूछने की हिम्मत नही हुई।

हम लोग बस खड़ी होने वाली जगह पहुॅच गये थे। अगले दिन मिलने का वादा कर मैं उससे अलग हुआ। बस छूटने के पहले परिचित की भाँति उसने हाथ मिलाया। उस समय उसके चेहरे पर की और भी कई खूबियाँ स्पष्ट होती दिखाई दीं।

जीविका-उपार्जन करने के संघर्ष मे वह अपने को अकेला पाती थी। शायद अपने भाग्य को भी वह कोसती रहती थी। दुनिया में अन्याय का ही साम्राज्य है, यह सिद्धान्त भी मन-ही-मन पक्का कर चुकी थी। पर इतना होने पर भी बाह्य आघात उसके हृदय की स्वाभाविक कोमलता पर अपना किसी भाँति का भी प्रभाव डाल पाने मे समर्थ नही हुए थे। वही कोमलता उसकी आँखों में छलछला उठती थी और उन्हे बहुत आकर्षक बना देती थी।

उसका चेहरा मुझे अपने आपको कोसने के लिये बाध्य करता—

'इसकी दृष्टि कितनी उदार है और मेरी कितनी नीच, कि मैं एक दो व्यक्तियों को नहीं, बल्कि सारे फ्रांस को ही वैसा नीच देख रहा था। मैंने उन्हें उस दृष्टि से देख कर अपने साथ, उनके साथ और साथ ही मनुष्यता के प्रति, कितना बड़ा अन्याय किया है ?'

उस अन्याय के लिये उस दिन शाम को मैं उनसे बहुत देर तक माफी माँगता रहा। उनके देश में यदि आवारो की तरह जीवन

व्यतीत करने के लिये मुझे बाध्य होना पड़ा था तो उसका भी अपराधी मैं अपने आपको ही मानने लगा था।

उसके चेहरे ने लोगों को देखने की अपनी दृष्टि ही बदल डालने के लिये मुझे बाध्य किया। उसमें मैं सारा फ्रांस केन्द्रीभूत हुआ देखने लगा। उसके प्रति मेरा आकर्षण मुझे फ्रांस के प्रति अपना आकर्षण दीखने लगा।

फ्रांस को प्यार करने के लिये मैं उसे प्यार करना चाहता था।

सौन्दर्य मुझे इतनी प्रचुर मात्रा मे बिखरा हुआ दिखाई दिया कि अकेले-अकेले उसका उपभोग कर पाना मेरे लिये सम्भव नही था। उसमे हिस्सा बँटाने के लिये मुझे एक सगी की आवश्यकता थी। इसीलिये ऑपेरा मे जाने के दिन जब टिकट खरीदने गया तो बिना अधिक सोचे-विचारे ही दो टिकट खरीद लाया। अपने सात दिन के भोजन के बदले में मैं ये दो टिकटे खरीद कर लाया हूँ—यह भी मैं अच्छी तरह से जानता था; पर उस समय मुझे इसकी परवाह न थी। वह दिन खास तौर से सुन्दर ढङ्ग से बिताने की योजना मैंने बनाई थी; आगे के खर्च की चिन्ता उस समय उठ ही नही सकती थी।

मैंने उसे साथ चलने के लिये कहा। टिकट देखते ही चटपट अपनी दूकान बन्द कर वह मेरे साथ ऑपेरा-गृह आयी। उस दिन प्रसिद्ध फ्रासीसी संगीतज्ञ बीजे का 'कारमेन' चल रहा था। उस समय तक न तो मेरा फ्रेंच सगीत से परिचय हुआ था और न कभी उसके द्वारा अपने को प्रभावित होते पाया था। अब तक अपने और अपने सामने से गुजरने वालों के भीतरी संगीत मे ही ऐसा रस लिया करता था कि तारों का सगीत सुनने की ओर ध्यान ही नही गया था।

टिकट सस्ते दाम के होने के कारण हम लोगों को तीन-तल्ले पर

स्थान मिला था। वहाँ से गान करने वालों का चेहरा खूब स्पष्ट न दिखायी देने के कारण अधिक सुन्दर मालूम पड़ता था, क्योंकि पास बैठने पर चेहरे का पाउडर साफ मालूम हो जाने से हमें अवश्य ही निराश होने और उनके सौन्दर्य पर अविश्वास करने का बहाना मिल जाता। और इतनी दूर रहने पर भी संगीत तो हम भली भाँति सुन ही पाते थे।

प्रथम अङ्क आरम्भ होते ही मेरी आलोचनात्मक दृष्टि लुप्त हो गयी। मेरी संगिनी स्वप्न देखती सी नजर आयी। मैं भी स्वप्न देखने लगा। हमारे सामने चपला जिप्सी-कुमारी 'कारमेन' भी अपनी आधी आँखे बन्द किये स्वप्न-लोक की ओर बहती जा रही थी।

'जिप्सियों के साथ रहते वक्त अगर मुझे भी ऐसी ही कुमारी कारमेन मिली होती!'—एक क्षण के लिये मेरे मन में आया। उन दिनों की संकटमय स्मृतियाँ उस सामने के सुर मे विलीन हो चुकी थी। जिप्सी युवक के बाजे मे जिस सौन्दर्य की कल्पना भरी थी, स्टेज पर कारमेन मानो उसी की मूर्त्ति बनी दिखाई दे रही थी।

बहुत देर तक हम लोग अपने आपको उसी तरह भूले रहे। जब उसे कोई सुर बहुत अधिक पसन्द आता तो वह अपने को रोक न पाती और मेरा हाथ दबा देती। बिना बोले ही हम एक-दूसरे की रुचि से परिचित होने लगे।

तीसरे अङ्क के बाद विराम हुआ। हम दोनो ऑपेरा के बराम्दे में सजी हुई पुतलियों सी पेरिस की अप्सराओ की चहल-पहल देखने निकले।

'इनसे वह जिप्सी कारमेन कही सुन्दर है!' उसने कहा—'शायद सब जिप्सी ही हमसे अधिक सुन्दर होते हैं।'

वह जिप्सियों के जीवन को बड़ा रोमाचक और सुन्दर साबित करने

लगी। मैं कहता कि उनका जीवन रोमांचक की अपेक्षा विषादपूर्ण कहीं अधिक है। वह मेरी दलील मानने के लिए तैयार नही थी। वह जिप्सी-कुमारियों को सुन्दर और अपने को बदसूरत करार देने लगी। मैंने इसका विरोध किया।

'तब तुम्हे सौन्दर्य का ज्ञान नही!' उसने कहा—'हमारे सौन्दर्य से तुम एक दिन में ऊब जाओगे, लेकिन जिप्सियों का जीवन सदा भटकते रहने के कारण नित्य नया बना रहता है और साथ ही उनके जीवन से, उनके सौन्दर्य से किसी की तबीयत ऊब नहीं सकती।'

'मेरा खयाल ठीक इससे उलटा है।' मैंने जोर देकर कहा।

जिप्सी ने कारमेन को मारने के लिए छुरा उठाया। मैं काँप सा गया। मैंने संगिनी की ओर चुपके से एक दृष्टि डाली। कारमेन मर रही थी। संगिनी मेरा हाथ कस कर दबाये रही। हम दोनो के हाथों से पसीना छूटने लगा। कारमेन के अन्तिम संगीत में हम लोगों ने देखा कि हम दोनों के भीतर एक ही सुर बज रहा था।

हम लोग एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले बाहर निकले। रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। पेरिस की सड़कों पर सन्नाटा छा गया था। वहाँ की रोशनी में इस समय शान्त संगीत का हिस्सा अधिक था। इस समय वह अधिक विशाल और असीम दीख रहा था। लोगों का शोर-गुल और मोटर-गाड़ियों का हर-हर, पट-पट बहुत दिन पहले बीती हुई घटना के समान याद आने लगा। उनकी जगह अब कुत्तों के भूँकने की आवाज ज़्यादा ध्यान खींचती थी।

इस समय सीन-किनारे मेढ़कों का भी अपना निजी 'कन्सर्ट' सुनाई पड़ता था। वे सब जाग्रत हो उठे थे। प्रकृति भी जाग्रत हो उठी थी। आदमियों के कोलाहल से ऊब कर पहले शायद वह और कहीं चली गई थी, पर अब अपना घर शान्त हुआ देख वापस लौट आई

थी। शहर की सारी गन्दगी पर चाँद भी ऊपर से ही झाड़ू लगाता जा रहा था।

एक स्थान पर चिड़ियों का भी स-र-ग-म सुनाई दिया। मेरी संगिनी ने सर ऊपर उठा कर देखा। उसे अपना बहुत दिनों का विस्मृत सगीत याद आया। वह गुनगुनाने लगी।

अपने दरवाजे पर पहुँच जाने पर उसने मेरे दोनों हाथ कस कर दबाये। मुसकराते हुए अपना सर भी ऊँचा किया। मैं बिना कुछ उत्तर दिये न जाने क्यों काँपता सा खड़ा रहा। उसे आश्चर्य हुआ। फिर उसे क्रोध आया। उसी नशे मे वह मेरा हाथ काटने लगी। फिर मेरी चुप्पी देख वह हँस पड़ी और बिना कुछ कहे घर के भीतर चली गई।

अगले दिन से वह मुझसे खुल कर बातें करने लगी। अपनी दूकानदारी में भी मदद करने के लिए उसने मुझसे कहा और इसके लिए मुझे पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन देना भी स्वीकार किया। उस दिन उसे घर पहुँचाते समय मैंने पूछा—

'तेरा नाम क्या है?'

'सेलीन।'

'तू रहने वाला कहाँ का है?' उसने पूछा।

'हिन्दुस्तान का!'

'सच? सच, हिन्दुस्तान का?' इतना कह वह जोरों से हँस पड़ी।

'तू हँसती क्यों है?'

'हिन्दुस्तान के कारण मुझे एक महाकाड में पड़ना पड़ा है।'

'हिन्दुस्तान के कारण? यह कैसे?'

'अब इसे खोल कर कहने में कोई हानि नहीं। इस मामले को अब सारी दुनिया जान गई है। मामला यों था—कुछ दिन पहले मैं अपनी सहेली के साथ यहाँ के एक पेन्सियोन (होटल) में काम करती

थीं। पेन्सियोन चलाने वाली बुढिया खूब पैसे खर्च कर सकने वाले लोगों से हम दोनों का परिचय कराया करती। एक बार उसने हमारा परिचय दो मोटे-ताजे, लगभग चार-चार मन वज़न वाले आदमियों से कराया। पेन्सियोन वाली की दृष्टि में ये दो आदमी 'प्रथम श्रेणी के सज्जन' थे।'

'इसका क्या मतलब ?'

'इसका मतलब यह कि उनके कपड़े बडे सुन्दर थे; सर में दस-दस ही बाल थे, पर उन्हे सॅवारते बड़ी शौकीनी से थे। उनकी बातचीत का ढङ्ग मीठा और सरस था। पेन्सियोन वाली को उन्होने शराब पीने और साथ नाचने के लिए निमन्त्रण दिया था, और सबसे बड़ी बात यह थी कि पेन्सियोन का सबसे मॅहगा कमरा भाड़े पर लिया था। इन सज्जनों के पास एक बड़ी ही सुन्दर नई मोटर-गाड़ी थी। लाल मुँह वाले सज्जन ने प्रथम दिन ही सन्ध्या समय हमसे कहा—

'हमारे साथ थोडा टहलने चलो ! देखो, हमारी मोटर कैसी अच्छी है !'

'हमें कहाँ ले जाइयेगा ?'

'आज तो आस-पास ही, पर कल हम लोग आगे जायेंगे। हमारा विचार हिन्दुस्तान तक जाने का है और अफ्रीका होते हुए लौट आना चाहते हैं।'

'यह तो बड़ी ही सुन्दर यात्रा होगी ?'

'इच्छा हो तो हमारे साथ चलो।'

दूसरे दिन वास्तव में ही हम दोनों उनके साथ चल पड़ीं।

तब क्या तुमने भारतवर्ष की यात्रा की है ?' मैंने पूछा।

'हाँ। तीसरे ही दिन वापस भी लौट आई।'—हँसते हुए उसने उत्तर दिया—'हम लोग कहीं-न-कहीं अवश्य ही ले जाई गई; पर उनके

बाद क्या हुआ, उसकी बड़ी ही धुँधली स्मृति शेष बची है। परिचित लोगों का कहना है कि जब पुलिस वाले हमें घर पहुँचाने के लिए ले आये तो हमने बहुत शोर गुल मचाया था।'

'और क्या इसी भाँति तुम्हारी यात्रा शेष हुई?'

'नही! हमारे घर लौटाये जाने पर पेन्सियोन वाली बुढ़िया ने कहा कि हम दोनो ही भ्रष्ट हो चुकी हैं, और इसीलिए हमे वहाँ से निकाल दिया।

'हमे यह ऐसा बुरा लगा कि पहले तो सिद्धान्त के ख़याल से हम लोगों ने वेश्या बन जाना ठान लिया, पर सौभाग्य से फिर सँभल गई।' इतना कह उसने लम्बी साँस ली। हम लोग बढते जा रहे थे! खयाल आने पर उसने कहा—

'मेरा घर तो आ गया। कल की रात बड़ी सुन्दर थी; इसकी मधुर स्मृति मैं कभी न भूलूँगी।'

'अब तो हमारी रोज ही मुलाकात होगी?' मैने पूछा।

उसने मेरा हाथ कस कर दबाते हुए कहा—

'जरूर होगी। अब हम दोनो मे दोस्ती हो गई है।'

पिछली रात के ही परिचय मे हम दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट आ गये थे; मालूम पड़ता था मानो बचपन से ही हमारी दोस्ती चली आ रही है।

बिदा होने के पहले हम दोनो ने एक-दूसरे का आलिङ्गन किया। उसने कस कर मुझे छाती से दबाया और बिना एक शब्द कहे ही गली मे आँखो से ओझल हो गई। जब तक वह मेरी आँखों की ओट न हो गई, मैं उसकी ओर टकटकी लगाये देखता ही रहा।

मेरे कानो मे उसके कल के गाने का स्वर गूँज रहा था।

थीं। पेन्सियोन चलाने वाली बुढ़िया खूब पैसे खर्च कर सकने वाले लोगों से हम दोनों का परिचय कराया करती। एक बार उसने हमारा परिचय दो मोटे-ताजे, लगभग चार-चार मन वज़न वाले आदमियों से कराया। पेन्सियोन वाली की दृष्टि में ये दो आदमी 'प्रथम श्रेणी के सज्जन' थे।'

'इसका क्या मतलब ?'

'इसका मतलब यह कि उनके कपड़े बड़े सुन्दर थे; सर मे दस-दस ही बाल थे, पर उन्हे सॅवारते बड़ी शौकीनी से थे। उनकी बातचीत का ढङ्ग मीठा और सरस था। पेन्सियोन वाली को उन्होंने शराब पीने और साथ नाचने के लिए निमन्त्रण दिया था, और सबसे बड़ी बात यह थी कि पेन्सियोन का सबसे महॅगा कमरा भाड़े पर लिया था। इन सज्जनों के पास एक बड़ी ही सुन्दर नई मोटर-गाड़ी थी। लाल मुॅह वाले सज्जन ने प्रथम दिन ही सन्ध्या समय हमसे कहा—

'हमारे साथ थोड़ा टहलने चलो ! देखो, हमारी मोटर कैसी अच्छी है !'

'हमे कहाँ ले जाइयेगा ?'

'आज तो आस-पास ही, पर कल हम लोग आगे जायंगे। हमारा विचार हिन्दुस्तान तक जाने का है और अफ्रीका होते हुए लौट आना चाहते हैं।'

'यह तो बड़ी ही सुन्दर यात्रा होगी ?'

'इच्छा हो तो हमारे साथ चलो।'

दूसरे दिन वास्तव मे ही हम दोनों उनके साथ चल पड़ी।

तब क्या तुमने भारतवर्ष की यात्रा की है ?' मैंने पूछा।

'हाँ ! तीसरे ही दिन वापस भी लौट आई।'—हॅसते हुए उसने उत्तर दिया—'हम लोग कहीं-न-कहीं अवश्य ही ले जाई गई; पर उसके

भी परे का सौन्दर्य कूची और रग द्वारा स्थूल आँखों के सामने रख देने की चेष्टा की गयी थी।

खिड़की से मैंने बाहर झाँक कर देखा। सीन के उस पार पेरिस का रंग फीका हो चला था। उसमे और जेनेट के रग मे अद्भुत समानता थी। मैं चौक पड़ा। अपने सामने के चित्र पर विश्वास करना मेरे लिये कठिन हो उठा। यह सौन्दर्य इसी पृथ्वी पर से पकड़ कर मेरे सामने के कैनवैस मे जकड़ कर बन्दी कर रखा गया है, इसे समझ सकना मेरे लिये मुश्किल हो रहा था। पर उसे अस्वीकार करने का भी चारा नही था।

आधुनिक फ्रेंच कलाकारो की कोई भी कृति मेरी समझ के बाहर की चीज थी। उनमे सौन्दर्य की हत्या के सिवा मुझे और कुछ नही दिखाई दिया। उन चित्रकारों को शायद भद्देपन के प्रदर्शन मे ही आनन्द आता था।

'पुराने फ्रास ने सौन्दर्य में जो प्राण भर दिया था उसे इन्होंने मार डाला है।' मैंने बार बार जोर देकर अपनी सगिनी से शिकायत की—'इन्होने सौन्दर्य का जीवन, फ्रास का जीवन नष्ट कर दिया है। आखिर ये जीवन से इतना डरते क्यों हैं? अरे, ये तो स्वय [मुर्दा बन चुके हैं और अब दूसरे को भी मुर्दा बनाने चले हैं। सारे ससार को ही मुर्दा बना डालने की इन्होंने कसम खा ली है! क्या ये भी इसी फ्रांस के कलाकार हैं?'

'हाँ, ये भी फ्रेंच हैं!' मेरी संगिनी ने उत्तर दिया। वह मेरे क्रोध का कारण नहीं समझ पा रही थी। मैं भी उसे यह भली भाँति समझ पाने में असमर्थ था।

'चलो, चलें!' कह उसका हाथ खींचता मैं लुव्र के बाहर निकल आया। किस फ्रास से मेरा परिचय हुआ था, किसे मैं प्यार करता

इस नई दोस्ती की खुशी में अगले दिन हम लोगों ने छुट्टी मनाना तय किया। वह मुझे लुव्र दिखाने ले गई। मेरी दृष्टि मीलो द्वारा गढ़ी गई वेनस की मूर्ति पर पड़ी। कला और सौन्दर्य दोनों से ही मैं बहुत हद तक अपरिचित रहता आया था, इसमें सन्देह नहीं। पर ये दोनों ज्ञान की अपेक्षा भाव के द्वारा अधिक अच्छी तरह समझे जाते हैं। सौन्दर्य का पैमाना हर देश का अलग-अलग जरूर हो सकता है, पर फिर भी जो सौन्दर्य किसी राष्ट्र की सुन्दरता का प्रतीक सरीखा बन जाता है, उससे किसी भी देश या जाति का आदमी अपने को प्रभावित होने से शायद ही रोक सकता है।

'यह क्या किसी फ्रेंच कलाकार का गढा हुआ है ?' मैंने उससे पूछा।

'इसमे तुम्हे सन्देह ही क्यों हो रहा है ?'

'कल्पना के सौन्दर्य को ऐसा साकार जीवित रूप दे दिया है कि इसे सामने देख कर भी इस पर हठात् विश्वास नहीं होता।'

'अभी फ्रेंच आँखो से देखे जाने वाले स्फटिक से निर्मल सौन्दर्य के साथ तुम्हारा परिचय ही कहाँ हुआ है ?'

हम आगे बढे। वह मुझे फ्रांस के प्रख्यात चित्रकारों के मशहूर चित्र दिखाने लगी। मैं उनमें से किसी से भी परिचित नहीं था। वे इतने क़िस्म के थे कि सब-के-सब एक ही जाति द्वारा तैयार किये गये हैं इस पर विश्वास करना कठिन हो रहा था। अगर किसी चित्र मे जीवन आनन्द से ओत-प्रोत दिखाया गया था तो किसी मे सारा भविष्य अन्धकारमय ! चौदहवे लूई के समय की चित्रकारी में नजाकत और शृङ्गार के साथ-साथ गहनों की प्रचुरता दिखाई गई थी।

गैलेरी के आखीर में नदी-किनारे की ओर जो तसवीरें लगी थीं वे अनजान में ही मुझमे परिवर्त्तन पैदा करने लगीं। उनमें कल्पना के

'अजी, तुमने अभी असली फ्रास देखा ही कहाँ है ? हमारा फ्रास ऐसा कच्चा नहीं कि ज़रा से धक्के मे वह चूर-चूर हो जाय। हजार साल से अधिक समय से हम कार्य-संलग्न रहते आये हैं, नयी सृष्टि करते रहे हैं। गौथिक ढग की कला में हम अपना स्वरूप आँकते रहे हैं और उसीके द्वारा ससार को अद्भुत सौन्दर्य से परिचय कराते रहे हैं। यह सौन्दर्य प्रेम हम लोगो की नस-नस में घुस गया है। दुनिया जब उसे भूलने लगती है तो हम क्राति मचाते हैं। तुम्हीं बताओ, हमारे यहाँ से बड़ी क्राति ससार ने और कही देखी है ?

'तुम आज हमारी तुलना में जरमनी की बड़ी फौजी तैयारी देख कर कहते हो कि हम पतन की ओर जा रहे हैं। बीसों बार हमारे राष्ट्र की अग्नि-परीक्षा होती रही है, पचासों बार हमे देख कर लोग सोचते रहे हैं, हम अब नष्ट हुए, अब नष्ट हुए—पर प्रत्येक बार ही तो हमारा राष्ट्र आग से बाहर निकलता रहा है; प्रत्येक बार ही तो हम फिर से जीवित होते रहे हैं, कभी भी तो हम नष्ट नही हुए !

'पर पतन किसे कहा जाता है इस पर तो एक बार विचार करो ! हम फ्रास मे बसते हैं इसीलिये इस भूमि को प्यार करते हैं, पर क्या इसीलिये हम अपनी अन्तरात्मा तक बेच डाले ? क्या उसे बेच डालना पतन नही है—शायद वह और भी बड़ा पतन है ! हम फ्रेच लोगों की प्रवृत्ति ही हो गयी है कि मिट्टी के बनिस्बत हम मनुष्य की अन्तरात्मा की आवाज का मूल्य अधिक समझते हैं। चाहने पर भी शायद हम उस आवाज का मूल्य कम नहीं आँक सकते। उसके मूल्य को आँकना ही हमारे लिये सभ्यता के माप का पैमाना है। उसीसे नापने पर हम अपने को इतना ऊँचा पाते हैं। इसीका गर्व कर हम सारे यूरोप में सर ऊँचा करके चलते हैं।'

अपने फ्रेच मित्र की बातों में मुझे फ्रासीसी विद्वत्ता का परिचय

था और किसे अब घृणा करने लगा था, आदि बातें बडे ही जटिल और उलझे हुए रूप मे मेरे दिमाग मे उठने लगी। मुझे झुँझलाया हुआ देख मेरी सगिनी ने मुझे सान्त्वना देने के लिये कहा—

'मैं भी चित्रकारी नही समझ पाती। अगली बार अपने एक जरमन दोस्त से तुम्हारा परिचय करा दूँगी, वह इन चित्रों से तुम्हारी पूरी वाकफियत करा देगा।'

'मुझे और किसी वाकफियत की जरूरत नही है,' मेरे मुँह से निकला—'अब मैं तुम फ्रासीसी लोगों का चरित्र ठीक ठीक समझने लगा हूँ। तुम सब-के-सब बडे धोखेबाज हो।'

'नही, नही, निराश मत होना—' वह मेरा हाथ पकड़ कर मुझे समझाने लगी। पर अब मुझे वही चित्र मालूम हो रही थी और लुव्र मे देखे हुए चित्र ही यथार्थ फ्रेंच नर-नारी!

सेलीन कभी कभी अपने यहाँ सगीत का आयोजन किया करती। इसके लिये वह सगीत विद्यालय में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को विशेप रूप से निमन्त्रित करती। साथ ही उसके कलाकार, लेखक और फौजी विभाग के दोस्त भी वहाँ जुटा करते।

मुझे भी उन मौकों पर उसने कई बार निमन्त्रित किया था। वहाँ के सगीत से अधिक दिलचस्प मुझे उस इकट्ठी हुई मंडली की बाते लगती। उनमे भी सबसे अधिक फौजी विभाग के लोग मेरा ध्यान आकर्षित किया करते। इनमें भी मैंने साधारण फ्रेच जनता के ही समान हार मान लेने, अन्यमनस्क रहने और अपने काम मे लापरवाह होने की प्रवृत्ति देखी।

जब मैं इसे फ्रास को पतन की ओर ले जाने वाला साबित करने लगता तो मेरे मित्र कहा करते—

फ्रांसीसी चरित्र की बहुत सी बातें समझ में आने लगीं। मैं अपने आप से कहने लगा—

'असल में फ्रेंच जाति कलाकारों की जाति है। इनसे अधिक कला को प्यार करना संसार की और किसी जाति ने शायद ही सीखा होगा। पर यह फ्रेंच प्यार अवश्य ही औरतों के ढङ्ग का प्यार है। कला को उसकी सीमा पर पहुँचा कर उसका पूरा रस इन्होंने चूस लिया है। तृप्त हो जाने पर भी इस जाति मे इतना जीवन बच रहा था कि नवीनता की चाह नही मिट सकी। जब पहले की भाँति इसे नवीनता नहीं दिखाई दी तो इसने संहारक रूप धारण किया। अपने आपको ये लोग निकम्मा समझने लगे। ये स्वयं निकम्मे बनने लगे और साथ ही दूसरों को भी इन्होंने निकम्मा बनाना शुरू किया। कला के जीवन को इन्होंने पहले इतना अधिक प्यार किया था कि अब उसे जहाँ कहीं भी देखते हैं, उसे नष्ट करने के लिए तुल जाते हैं। इन्होंने कला को भी भ्रष्ट करने की कोशिश की, लेकिन शायद उतनी ताक़त ही इनमें नहीं रह गई है। नतीजा यह हुआ है कि ये स्वयं अपने आपको ही मृत्यु-शय्या पर पड़ा देखने लगे हैं।'

हस-मृत्यु-नृत्य में मुझे फ्रेंच जाति का कला के प्रति इसी ढङ्ग का प्रेम दिखाई दिया। फ्रेंच जीवन इसी प्रेम का सफल, असफल और मिश्रित स्वरूप दीखने लगा।

नाच के बाद सेलीन ने मेरे पास आकर मुझसे पूछा—

'क्यों? तुम्हे यह नृत्य अच्छा नहीं लगा?'

'आत्महत्या मुझे बिलकुल ही पसन्द नहीं। ऐसे सुन्दर हस ने आत्महत्या की, इसके लिए मैं उसे कभी भी क्षमा नहीं कर सकता।'

'अहङ्कारी! तुम अहङ्कार से भरे हो! उसके आत्मत्याग में तुम्हे कोई आदर्श ही नजर नहीं आया?'

मिल रहा था; पर वही विद्वत्ता तो उन्हे दुर्बल बनाती भी नजर आई। मुझे अपने देश की याद आ गई। मैंने कहा—

'हमारा देश भी इसी मनुष्यता की आवाज का पाठ पढ़ता रहा है और शायद इसीलिए मृत्यु भी उसे चारों ओर से घेरती रही है।'

'हर एक राष्ट्र मरता है, पर उस आवाज़ को बुलन्द करता हुआ जो मरता है, वह फिर से जी उठता है। फ्रास जरमनों के पाँवों तले रौंदा जा सकता है पर जिस आवाज को वह बुलन्द करता हुआ रौंदा जायगा उसीके आधार पर वह फिर से जगेगा, फिर से ऊँचा होगा और सभ्य राष्ट्रों के बीच ऊँचा स्थान ग्रहण करेगा!'

मैं अपने मित्र की बातो से सहमत नही था। उनमें मुझे फ्रासीसी साम्राज्यवादियों की उपनिवेशों के लोगों के रक्त-शोषण को जायज़ करार देने वाली आवाज़ सुनाई दी। मैंने विरोध किया। मेरे संगीत-प्रेमी मित्र ने मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—

'इसीलिए तो कहा कि अभी असली फ्रास को तुमने समझा नहीं है। तुमने शायद अभी ऐसे फ्रेंच कम देखे हैं जो अपने आनन्द के लिए नहीं बल्कि अपने विश्वास को, मनुष्यता मे अपने विश्वास को, दृढ़ बनाये रखने के लिए जीवित रहते हैं। हमारे पेरिस मे जितना अन्धकार है उतना ही उजाला भी है।'

उस दिन शाम को सगीत के साथ साथ ठेठ पेरीसियन नृत्य दिखाने का भी आयोजन किया गया था। सेलीन स्वयं प्रख्यात नर्तकी आना पावलोवा के ढङ्ग पर 'हंस की आत्महत्या' नृत्य दिखाने लगी। में उसे ग़ौर से देखने लगा।

उसकी विशेष प्रकार की नृत्य-भगिमा देख कर एकाएक बहुत सी बातें स्पष्ट हो गयी। सिर्फ़ सेलीन के ही चरित्र की नही, बल्कि

'लेकिन तुमने इसका जिक्र तो कभी मुझसे किया नहीं था ?'

'मेरे इतने खरीददार हैं कि उन सबकी याद भी मुझे नहीं रहती।' मुसकराते हुए उसने कहा—'लेकिन तुम्हारे बुरा मानने का तो इसमें कोई कारण नहीं ?'

मन-ही-मन मैंने जवाब दिया—'तुझे पता नहीं, तूने मुझे कितना बड़ा आघात पहुँचाया है।'

मेरा सिर भारी हो आया। उसकी अस्थिरता और चञ्चलता ने मुझे चिन्तित बना दिया। उसके सम्बन्ध मे अपने आपको ठगते रहने में मुझे बहुत अधिक मानसिक परिश्रम करना पड़ता था। मैं उसमे पुराना-नया, सब मिला हुआ सारा फ्रास देखना चाहता था, उसमें सौन्दर्य पाने की आशा रखता था। वही सौन्दर्य फीका पड़ते देख मुझे बड़ी ही वेदना होती।

मुझे एकाएक इस प्रकार गम्भीर देख वह मेरे कन्धे पर हाथ रख मुझे समझाती। मुझे भी मालूम पड़ता जैसे मेरे जीवन मे पहले कभी भी ऐसा मौका नहीं आया था जब किसी ने मेरे लिए इतनी फिक्र और सहानुभूति दिखलाई हो।

पर साथ ही, मेरी कल्पना मे, वह मुझसे बहुत दूर चली गई थी। वह दूर, और भी दूर, दूसरी ही दुनिया की ओर जाती हुई दिखाई दे रही थी। थोड़ी देर में उसका चेहरा पेरिस के कुहासे में लुप्त हो गया। फिर उसकी कोई भी बात मुझे सुनाई नहीं दी।

उस दिन रात को उससे अलग होते समय मैंने और दिन की भाँति 'ओ रिवुआर' (पुनः मिलने तक) न कह कर 'आडियो' (विदा) कहा। उसे आश्चर्य नहीं हुआ। और दिन की ही भाँति उसने मेरे दोनों हाथ कस कर दबाये, उन्हे अपनी छाती से लगाया। सर ऊँचा कर थोड़ी देर चुपचाप खड़ी रही। नाराजगी दिखाई। मेरी बेवकूफी पर हँसी।

'मैं तो जीवित रहने के आदर्श को ही सबसे बड़ा मानता हूँ।'

'स्वार्थी कहीं के! तुमने प्यार करना सीखा ही नहीं।' कह कर अगले नृत्य के लिए वह अपने आपको प्रस्तुत करने लगी।

सेलीन से मेरी दोस्ती जितनी जल्दी घनी हो आई थी, लगभग उसी रफ्तार से वह ठण्ढी भी पड़ने लगी। यह भी हम लोगों के अनजान में ही घट रहा था। हम दोनों एक-दूसरे से बात-बात में चिढ़ते और ऊबते दिखाई देने लगे। शुरू-शुरू में हम इसे स्वीकार नहीं करना चाहते थे, इसलिए अक्सर झगड़ जाने के बाद समझौता कर लिया करते थे और फिर पहले का सा सम्बन्ध क़ायम रखने की चेष्टा करते थे। पर फिर भी सम्बन्ध धीरे-धीरे टूटता ही जा रहा था। मेरी अपनी कठिनाई यह थी कि मैंने अपनी कल्पना मे उसे जैसा देखा था, व्यवहार में वह वैसी नहीं उतरी; और उसकी शिकायत यह थी कि पहले की तरह अब मैं रोज नया नया दीखते रहने मे असमर्थ होता जा रहा हूँ।

सन्ध्या समय किताब की दूकान पर कई फौजी अफसर भी आया करते थे। उनमें से एक मोटे-ताजे लेफ़्टिनैंट के साथ सेलीन बड़ी देर तक बातें किया करती। पर अफ़सर के पीठ पीछे सेलीन उसे 'बुलडॉग' कह कर याद करती और उसके सम्बन्ध मे घृणास्पद शब्द व्यवहार करती। पर एक दिन उसी अफसर ने दूकान से जाते समय सेलीन को चूम कर बिदा ली। सेलीन मुसकराती रही मानो कोई ख़ास बात हुई ही नहीं।

'तुम्हारी उस बुलडॉग से इतनी घनिष्टता कब से हुई?' आश्चर्य में आकर मैंने बाद को पूछा।

'बहुत दिन से।'

'लेकिन तुमने इसका जिक्र तो कभी मुझसे किया नहीं था ?'

'मेरे इतने खरीददार हैं कि उन सबकी याद भी मुझे नहीं रहती।' मुसकराते हुए उसने कहा—'लेकिन तुम्हारे बुरा मानने का तो इसमें कोई कारण नहीं ?'

मन-ही-मन मैंने जवाब दिया—'तुझे पता नहीं, तूने मुझे कितना बड़ा आघात पहुँचाया है।'

मेरा सिर भारी हो आया। उसकी अस्थिरता और चञ्चलता ने मुझे चिन्तित बना दिया। उसके सम्बन्ध मे अपने आपको ठगते रहने में मुझे बहुत अधिक मानसिक परिश्रम करना पड़ता था। मैं उसमें पुराना-नया, सब मिला हुआ सारा फ्रांस देखना चाहता था, उसमें सौन्दर्य पाने की आशा रखता था। वही सौन्दर्य फीका पड़ते देख मुझे बड़ी ही वेदना होती।

मुझे एकाएक इस प्रकार गम्भीर देख वह मेरे कन्धे पर हाथ रख मुझे समझाती। मुझे भी मालूम पड़ता जैसे मेरे जीवन में पहले कभी भी ऐसा मौका नहीं आया था जब किसी ने मेरे लिए इतनी फिक्र और सहानुभूति दिखलाई हो।

पर साथ ही, मेरी कल्पना में, वह मुझसे बहुत दूर चली गई थी। वह दूर, और भी दूर, दूसरी ही दुनिया की ओर जाती हुई दिखाई दे रही थी। थोड़ी देर में उसका चेहरा पेरिस के कुहासे में लुप्त हो गया। फिर उसकी कोई भी बात मुझे सुनाई नहीं दी।

उस दिन रात को उससे अलग होते समय मैंने और दिन की भाँति 'ओ रिवुआर' (पुनः मिलने तक) न कह कर 'आडियो' (विदा) कहा। उसे आश्चर्य नहीं हुआ। और दिन की ही भाँति उसने मेरे दोनों हाथ कस कर दबाये, उन्हे अपनी छाती से लगाया। सर ऊँचा कर थोड़ी देर चुपचाप खड़ी रही। नाराजगी दिखाई। मेरी बेवकूफी पर हँसी।

फिर अभिमान भरे कदम रखती हुई बिना मेरे 'आडियो' का उत्तर दिये घर के भीतर चली गई।

मेरे सर का भार पॉवों तक व्याप गया था। वे बड़े ही भारी लग रहे थे। मैं उन्हे घसीटता किसी तरह खीच ले चला।

किधर और किस उद्देश्य से जाना है, यह बिना सोचे ही मैं आगे बढता जा रहा था। सेलीन से विदा लेना सारे पेरिस, सारे फ्रास से विदा लेने की तरह लग रहा था। सब कुछ सुनसान, वीरान पडा हुआ दिखाई देने लगा। पेरिस की रोशनी का सगीत नष्ट हो चुका था।

'ये फ्रेंच अपना चेहरा कीचड़ से ही सना क्यो देखना चाहते हैं ?' इसका उत्तर हजार ढूँढने पर भी मुझे नही मिलता था।

सबेरा होते होते मैंने अपने को फिर से सीन-किनारे पाया। बगल के एक मकान मे पिआनो बज रहा था। सामने के एक तख्ते पर बडे अक्षरो मे लिखा था—'वागनर फेराइन'। यह पेरिस मे रहने वाले जरमन सगीतज्ञों के इकट्ठे होने का स्थान था। उस मण्डली के कई सदस्यों से सेलीन के यहाँ मेरा परिचय हुआ था। मैं भीतर घुसा।

पिआनो बजाने वाले से मै परिचित था। वह जरमनी के राइन प्रदेश का रहने वाला था। मुझे दरवाजे पर खड़ा देख वह मेरे पास आया।

'खड़े क्यों हो ? आओ, प्रार्थना करो !' उसने कहा।

'किसकी प्रार्थना ?' मैंने पूछा।

'इस उगते हुए दिन की, और किसकी ?'

'मुझे इसमे कोई सौन्दर्य नहीं दिखाई देता।'

'काल्पनिक सौन्दर्य का सिद्धांत छोड़ो। जीवन के सौन्दर्य को देखो। उसे प्यार करो।'

वह अधूरा छोड़ा हुआ संगीत पिआनो पर जा पूरा करने लगा। शायद यह कोई जगाने वाला संगीत था। मैंने मन-ही-मन सोचा—

'अभी वे सो रहे हैं, पर जगेंगे। मैं भी जगूँगा।'

'यह हमारे राइन किनारे का संगीत है,' जरमन ने पिआनो का नोट उलटते हुए कहा—'अगर जीवन चाहते हो तो जाकर उसमे डुबकी लगाओ।'

'जाता हूँ।' मेरे मुँह से सहसा निकल पड़ा।

पाँव अब भी भारी मालूम हो रहे थे। पर धीमे, किन्तु बडे ही स्पष्ट स्वर में, दिल कह उठा—

'इस निराशा से ही जीवन का एक नया पृष्ठ आरम्भ होगा।'

तृतीय खण्ड

राइन

राइन। जरमनों के पिता राइन*। मालूम नही कितनी महान आत्माओं को अपना गाना सुना कर इन्होंने बड़ा किया, उन्हे शक्ति दी, खिलाया और अपनी गोद में ले-ले कर उछाला। इनका क्षितिज विस्तृत है। दृष्टि बहुत दूर जा पहुँची है। मन वहाँ की निलिमा में तैरने लगता है; जो सूत्र वह लेकर चला था वह रास्ते में ही छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह अपने आपको भूल जाता है।

मैं चीड़ के वन में अपना रास्ता भूल गया था। भटकता हुआ उस चोटी पर आ पहुँचा। नीचे का रास्ता ढलुआँ था, पर वह भी चीड के वन मे होकर जाता था। नीचे का सब कुछ हरियाली मे स्नान कर रहा था। पिता राइन का दक्षिण-पूर्व से आने और उत्तर-पश्चिम की ओर बहते जाने का प्रशस्त, विस्तृत, नीली धारियों वाला रास्ता दोनो दिशाओ मे बहुत दूर तक दिखाई देता था। दोनों ओर के पहाड़ पिता राइन के ऊपर छाता लगाये से किनारे पर खड़े थे।

मैं नीचे उतरा। नदी किनारे की एक चट्टान पर जाकर बैठ गया। मेरे पास एक अकेला ठूँठ ओक-वृक्ष प्रशियन फौज के सिपाही

---

* 'गङ्गा मैया' की तरह जरमनी में 'पिता राइन' हैं।

जैसा सीना तान कर खड़ा था। उसकी शाखाओं के फूटने के स्थान पर क्रॉस से विंधे क्राइस्ट की काठ की मूर्ति झूल रही थी। उनकी छाती से, कीलें घुसी रहने के कारण, रक्त निकल रहा था।

मेरी दृष्टि कभी नदी, कभी आकाश और कभी अंगूरों के बाग़ की ओर जाती। छप्-छप् कर प्रवाह मे बहता हुआ एक स्टीमर मेरी ही ओर आ रहा था। किनारा पास आ जाने पर पैतरा बदल वह 'जेटी' से लग गया। पानी के बुलबुलों की तरह मचलते हुए कुछ लोग उसमे से बाहर निकलने लगे। उनके पाँवों में ऊँचे-ऊँचे बूट जूते थे। ब्रीचिस के ढङ्ग के नीले पैंट और बिना टाई के शर्ट उन्होने पहन रखे थे। उनके सर पर छोटी, पर रंग-बिरंगी धारियों वाली टोपियाँ थीं। दूर से ही उन्हें पहचान लिया जा सकता था कि वे कालेजों मे पढ़ने वाले विद्यार्थी हैं। वे मोटे स्वर में गान करते हुए और उसी के ताल में पाँव पटकते हुए एक ओर चले गये।

सूर्यास्त हो जाने पर मैं अपने स्थान से उठा। नगर की ओर से 'वाल्त्व' (घूम घूम कर नाच करने के समय) के बाजे की आवाज आ रही थी। मैं उसी ओर चला। रास्ता नदी के किनारे किनारे होकर जाता था। मेरे बाईं ओर राइन नदी का विशाल पुल था।

आगे बढ़ने पर मुझे नदी किनारे कई सुनहले बालों वाली सुन्दर जरमन लड़कियाँ टहलती हुईं दिखाई दीं। राइन की लहरों में सुर मिला कर गुनगुनाते समय वे हाईने की 'लोरेलाई' जैसी दीखती थीं। उनके चुम्बक की ओर खिचने से शायद ही कोई माझी अपनी नौका को रोका पाता होगा। मेरे खिंचने से पहले ही शायद उन्होंने पहचान लिया कि मैं विदेशी हूँ। अपने मधुर स्वर में मेरी ओर देख बुदबुदाते हुए उन्होंने कहा—

'गुतेन आबेन्द !'

यह जरमन नमस्कार मेरे कानों से टकरा कर रह गया। उनका दरवाजा अब तक इस जबान के लिये बन्द था।

पहाड़ों की सीढी लगा कर चाँद ऊपर छत पर पहुँच गया था। अंगूर की लताएँ पत्थर की दीवारों को फाँदती हुई चोटी तक जा पहुँची थी। मैं बाज़ार लगने के तिकोने स्थान पर पहुँच गया था। मेरे सामने नगर का केन्द्र—'पुराना फव्वारा'—था। उसी के एक ओर बाग़ीचे में नाच का बाजा बज रहा था। उधर की स्निग्ध हवा आकर गाल और ठुड्डियो को चूम जाती। अंगूर के रस से भीगी सुगन्ध को हृदय तक पहुँचते देर न लगती; वह तुरत ही नस-नस को सींचना शुरू कर देती; बात-की-बात में सब कुछ लहराने लग जाता।

फव्वारे को एक आदमी बड़े ध्यान से देख रहा था। चेहरे के हाव-भाव और गति-विधि से वह बिलकुल नौजवान जान पडता था; पर उसकी उम्र बुढ़ापे के नजदीक पहुँची हुई मालूम हुई। उसका क़द ऊँचा था। डील-डौल भी लम्बा-चौड़ा था ; उम्र के खयाल से वह अधिक तन कर चलता दिखाई देता था। उसके पाँवों मे मोटे तले का बूट जूता था। हाथ का बुना नीले रग का मोटा मोजा घुटने तक पहुँच रहा था। उसके ऊपर 'क्लस-फोर' और पतले कालर वाला कोट था। सर के बाल आधे सफेद हो गये थे। दाढ़ी भी खिचड़ी, अग्रेजी अक्षर v के आकार की तरह, कतर कर नुकीली बनाई हुई थी। ललाट की रेखाएँ पिता राइन की ही तरह प्रशस्त और गम्भीर।

मैंने उन्हे फ्रेंच भाषा में नमस्कार किया। वे मेरी ओर गौर से देखने लगे। उनकी आँखें एक क्षण में ही चमड़े और मांस को भेद कर हाड-हाड़ और नस-नस तक को पहचान लेने की कला में अत्यन्त कुशल जान पड़ी।

'विदेशी ?' उन्होंने पूछा।

'हाँ।'

'विद्यार्थी ?'

'नही, अब तक तो नहीं।'

'पर अध्ययन के इरादे से ही जरमनी आये ?'

'जी हाँ।'

'बड़ी अच्छी बात है। तब आप मेरे विद्यार्थियों के इस जलसे में क्यों नहीं भाग लेते ?'

'मैं उनसे परिचित नहीं।'

'मैं आपका उनसे परिचय करा दूँगा।' मुसकराते हुए उन्होंने कहा और मेरा हाथ पकड़ कर खीच ले चलने के लिये आगे आये।

'लेकिन अभी आपसे भी तो मैं परिचित नहीं !'

'इस समस्या को हल करना तो कोई बड़ी बात नहीं—' कह कर उन्होंने हाथ मिलाते हुए कहा—'प्रोफेसर राइनहार्ट।'

वे मुझे विद्यार्थियों की मण्डली की ओर खीच ले चले। नाच उस समय तक खत्म नहीं हुआ था। हम लोग एक मेज़ के आमने-सामने की दो कुर्सियों पर जा बैठे।

'आप शायद हमारे जरमनी के विद्यार्थियों की इस प्रकार की उत्सव मनाने की प्रणाली से परिचित नहीं ? हम लोग हाइडिलबेर्ग से आ रहे हैं। वहाँ के विश्वविद्यालय का नाम आपने सुना होगा। हम लोग ज़्यादातर अपनी पुरानी जरमन सभ्यता ही अधिक पसन्द करते हैं, इसीलिये आप देख रहे हैं कि हम लोगों की पोशाक मध्यकालीन युग की सी है। दूसरी विशेषता हमारे इस खास दल की यह है कि हम इस बीसवीं शताब्दी में भी प्रकृति से अपना सम्बन्ध पहले की ही तरह बनाये रखना चाहते हैं, इसीलिये हम लोगों ने अपने

दल का नाम रखा है—'प्रकृति के दोस्त'। इस जमात मे मेरी ही उम्र सबसे अधिक है, इसलिये मैं ही सभापति चुना गया हूँ। यहाँ की और सब विशेषतायें, अब आप हमारे बीच रहेगे तो, आपको स्वयं ही मालूम हो जायेंगी।'

वह नाच खत्म हुआ। विद्यार्थी अपने अपने स्थानो पर आ बैठे। प्रोफ़ेसर ने उठ कर कहा—

'मुझे इस उत्सव के मौक़े पर आप लोगो का परिचय एक हिन्दुस्तानी से कराते हुए बड़ी खुशी हो रही है। हिन्दुस्तान के साथ हम जरमन लोगों का बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है। हम लोग एक ही जाति, हिन्दो-जरमन जाति के हैं। दूरी के कारण हम लोग एक-दूसरे से बहुत अपरिचित से बन गये हैं। अपने नये मित्र के हमारे बीच आ जाने पर मै आशा करता हूँ कि हम लोगो के हिन्दो-जरमन जाति के पुनः समीप आने मे सहायता मिलेगी।'

विद्यार्थियों ने तालियाँ पीटीं। पाँव पटक पटक कर उन्होंने अपना आनन्द प्रदर्शित किया। फिर मेरे हाथ मे भी जवानी की तरह उमड़ता हुआ बिअर का गिलास दे सब-के-सब अपना-अपना गिलास हाथ मे ले उठ खड़े हुए। प्रोफ़ेसर ने अपना गिलास ऊँचा कर कहा—

'प्रोस्ट—'

'प्रोस्ट,' सारी मण्डली ने उत्तर दिया।

मैं उनकी जमात मे शामिल कर लिया गया।

वह मण्डली कृत्रिमता से दूर रहने वाली थी। उसका सौन्दर्य पहाड़ और झरनों के समान स्वाभाविक था। उनकी बोली, उनकी गति, उनकी हँसी प्रकृति के ही समान सरल और किलकती हुई थी। मुझे उनके बीच रहने मे बड़ा आनन्द आ रहा था। उनकी तरह

मौज करने, हल्ला मचाने और नाचने में मुझे बडा मजा आने लगा। उनके हल्ला करने और गला फाड़ कर चिल्ला चिल्ला कर गाने का ढङ्ग मैं बड़े ध्यान से देखता और अपनाने की कोशिश करता।

उस मण्डली के नियमानुसार थकावट महसूस होने पर बिअर पीकर उसे दूर करने की कोशिश की जाती। बाजा बजाने वाले भी बिअर से ही अपने भीतर ताजगी लाते। पर इतना होने पर भी सब काम कायदे से चलता। सब लोग अपने आपको काबू मे रखे रहने मे अद्भुत ढङ्ग की क्षमता का परिचय देते। वहाँ न तो किसी के मुँह से कोई अश्लील शब्द या मजाक निकलता और न किसी तरह का हुड़दंग या तूफान उठता, आपस में झगड़ने और मार-पीट करने की बात तो बहुत दूर रही!

उस गाँव के रहने वाले भी आकर उस उत्सव में भाग लेने लगे थे। बागीचे के भर जाने पर वे रास्ते और बाजार लगने वाले तिकोने स्थान पर इकट्ठे होने लगे। विद्यार्थियों के उत्सव को उन्होंने अपने निजी गाँव का उत्सव बना लिया था। गाँव की लड़कियाँ बिना किसी हिचक के विद्यार्थियों के साथ हिलतीं-मिलतीं और नाचतीं! अपने-पराये, दर्शक, अतिथि—किसी क़िस्म का भी भेद नहीं रह गया था। युवा-युवतियों का एक-दूसरे को आलिङ्गन करना, प्रेम से मिलना और झगड़ा करना सब बड़े स्वाभाविक ढङ्ग से चल रहा था। सब कुछ उनकी बातों, दृष्टि और हँसी के समान ही निर्दोष था। इसी निर्दोष भाव के रहने के कारण उस मण्डली में हिचक या सामाजिक दृष्टि से किसी किस्म के अन्याय की गुञ्जायश नहीं रह गई थी।

प्रोफ़ेसर राइनहार्ट भी अपने विद्यार्थियों के समान ही उछलते-कूदते और नाचते-गाते। उनकी एक विशेषता यह थी कि जब किसी की

मेज पर का प्रयागी लोटे जितना बड़ा बिअर का गिलास खाली होने लगता तब वे तुरन्त ही पुकारते—'हाना ! अरी हेनखेन !'

एक सुन्दर जरमन कुमारी बिअर से भरा गिलास लेकर तुरन्त ही हाजिर होती। उसकी आँखे आनन्द से छल्-छल् करती होती। मालूम पड़ता, जैसे उसी ने वहाँ की सारी मण्डली को उत्सव मनाने के लिए अपने घर निमन्त्रण दिया है और इसीलिए इतने मनोयोग के साथ लोगों के पास विअर पहुँचा रही है।

जब उसकी देख-रेख वाली मेजों पर के गिलास बिअर से भरे रहते तब वह एक कोने मे जाकर खड़ी हो जाती। उसकी मुसकान बहुतो को अपनी ओर खींचती रहती थी। कभी-कभी कोई विद्यार्थी आकर उसे घूम-घूम कर नाचने वाले नृत्य के ताल मे दो-चार बार घुमा कर यथास्थान पहुँचा जाता।

यह पीना, गाना और नाचना सवेरा हो जाने तक चलता रहा। हाना की आँखे मुझे बराबर अपनी ओर खींचती रही थीं।

जहाँ से राइन का दृश्य खूब सुन्दर दिखाई देता था, वहीं हम लोगों ने भोजन किया। फिर पहाड़ी पर चढना शुरू किया। चीड़ के वन मे सन्नाटा छाया था। छोटे-छोटे कीडे-मकोड़ों के फुदकने और जी-जी-जी का लम्बा सुर अलापते रहने की आवाज सुनाई देती थी। उस वन के रखवाले का बड़ा ऐल्सेशियन कुत्ता हमारे आगे-आगे चुपचाप हमें रास्ता दिखाता चल रहा था। वह शायद यह समझे हुए था कि हम लोग शिकार के लिए निकले हैं। खरगोश की आहट पाते ही वह चौकन्ना हो अपने कान खडे कर लेता और उसकी दिशा का अन्दाज करने लगता। कभी-कभी पत्ते और झाडियों को सूँघता हुआ दूर तक जाता और फिर वापस लौट आता। एक बार पत्तों के बीच छाती

सटा कर वह दम साध कर लेट रहा। हम लोग भी जहाँ थे वहीं खड़े हो गये। थोड़ी देर प्रतीक्षा करते रहे। प्रोफ़ेसर राइनहार्ट ने धीमे स्वर मे कहा—'नही, कुछ भी नही है।' ठीक इसी समय मुश्किल से दस कदम की दूरी पर एक झाड़ी से सर-सर करता हुआ एक खरगोश निकला और दूसरी झाड़ी की ओर जाने लगा। लड़कों ने एक स्वर में कहा—'हो पला!' लड़कियाँ ताली पीटने लगी। चीड़ वन की रखवाली करने वाले कुत्ते को बड़ा गुस्सा आया। वह झाँऊ-झाँऊ करता हुआ भूकने लगा। उसका गुस्सा खरगोश की अपेक्षा उसे भगा देने वालों, हँसने और ताली पीटने वालों पर अधिक था।

प्रोफ़ेसर राइनहार्ट एक-ब-एक सबके आगे आ कुत्ते के भूँकने की नकल करने लगे। कुत्ता डर कर दुम हिलाता हुआ एक ओर चला गया। इस समय तक हम लोगों की मण्डली खरगोशों और कुत्तों के दो दलों मे बँट चुकी थी। अधिकाश सख्या मे लड़कियाँ ही खरगोश बनी थी, लड़के कुत्ते बन उनका पीछा करने लगे।

उस खेल में भाग लेने वाले सब-के-सब बच्चे सरीखे दीख रहे थे। ठीक जो वे भीतर थे उसी रूप मे प्रकट हो रहे थे। अपने को बड़ा अथवा और कुछ साबित करने की न तो किसी की प्रवृत्ति थी और न उसकी कोई आवश्यकता ही महसूस कर रहा था। प्रोफ़ेसर राइनहार्ट मे तो प्रोफ़ेसर की अपेक्षा गुरूजी की पाठशाला मे प्रथम-प्रथम भर्ती हुए शिशु के स्वभाव की अधिक झलक थी।

उस वन के कीड़े-मकोड़ो की आवाज की नक़ल करते-करते हम लोग फिर राइन किनारे आये। पूरे गाँव की परिक्रमा की गई। पिछली रात की परिचित सूरतें दिखाई देने पर उनकी ओर अभिनन्दन सूचक इशारा किया जाता।

रेलवे स्टेशन अब भी दूर था। किसी को थकावट नहीं आई थी। मै प्रोफेसर राइनहार्ट की बगल-बगल चल रहा था। मेरी ओर देख उन्होंने पूछा—'तो आप भी हमारे साथ हाईडिलबेर्ग चल रहे हैं?'

'यदि सम्भव हुआ!'

'सम्भव क्यों नही होगा? वहाॅ अपने हिन्दो-जरमन पुस्तकालय मे मैं आपको कुछ काम दे दूॅगा, आप साथ-साथ विश्वविद्यालय मे भी अध्ययन कर सकेंगे।'

कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मैंने अपना हाथ आगे बढाया। उन्होंने उसे कस कर दबाते हुए कहा—

'हमारी मित्रता तो कल शाम को ही स्थापित हो चुकी है।'

उनकी नीली आँखें पिता राइन की ही तरह साफ थीं।

हाइडिलबेर्ग

हाइडिलबेर्ग का विश्वविद्यालय न केवल जर्मनी में ही, बल्कि यूरोप के सब देशों में इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि वहाँ के विद्यार्थियों का जीवन बड़ा ही सरस होता है। जिन लोगों ने वहाँ पर कभी विद्यार्थी-जीवन बिताया है, उनके हृदय से इस शहर के दो स्थानों की याद कभी नहीं भूलती—नेकर नदी के तट पर पड़ी बेंचे; और महल-बाग !

प्रेम करना और प्रेम-पाश में बँध जाना हाइडिलबेर्ग में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी-विद्यार्थिनियों के लिए एक परम्परा सी हो गई है। नेकर नदी के तट की बेंचें प्रेमी जोड़ों से कभी ख़ाली नही रहतीं और इसी प्रकार महल-बाग़ की भी हरएक झाड़ी और रास्ता प्रेमी जोड़ों से भरा रहता है। वहाँ के जीवन में इतनी सरसता रहने के कारण ही विद्यार्थी उस जीवन को 'रोमांटिक लाइफ़' कहा करते हैं।

एक दिन सन्ध्या समय उस शहर में टहलने निकला। रास्ते बिजली के प्रकाश से जगमगा रहे थे। नेकर नदी के किनारे पहुँच कर एक बार सर उठाया तो देखा कि आकाश बिलकुल स्वच्छ था तथा चाँद ठीक मेरे सर पर खिलखिला कर हँस रहा था।

मेरे कुछ ही कदम आगे नेकर नदी का पुल था। सड़क के आगे किनारे के मकानों के साये के कारण वहाँ थोड़ा अँधेरा सा छाया था; पर मैं जहाँ खड़ा था वहाँ से इतना साफ दिखलाई दे रहा था कि पुल के किनारे लगे लोहे के रेलिंग पर हाथ टेके कोई स्त्री नीचे नदी की ओर देख रही है। स्त्री के कोट और सर की टोपी का जितना भाग मैं देख सका था, उससे अन्दाज यही लगा कि वह कोई युवती है। मैं उसके बिल्कुल पास तक पहुँच गया, पर मेरी ओर मुड़कर उसने देखा नहीं, शायद वह मेरे पाँवों की आहट नहीं सुन पाई थी। मैं ज्यों ज्यो उसके पास पहुँचता जा रहा था, मेरी छाती की धड़कन बढ़ती जा रही थी। पता नहीं, क्यों ? स्त्री किसी गहरे विचार में डूबी थी। मैं उससे जो सवाल करने वाला था, वह मेरे मन में ही दबा रह गया। मैं कुछ कदम आगे बढ गया और उसी की तरह नीचे पानी की ओर देखने लगा। अगर वह गहरी नींद में न सोती हो तो उसने इस बार अवश्य ही मेरे पाँवों की आहट सुनी होगी; पर इस बार भी उसने मेरी ओर नहीं देखा।

मुझे ऐसी भी आशका थी कि मेरे पाँवों की आहट पाकर अथवा पुल के रेलिंग के हिलने से कहीं वह मेरी ओर बिना देखे ही किसी दिशा में तेजी से कदम रखती हुई न चली जाय।

हम लोग उसी तरह थोड़ी देर तक नीचे नदी की ओर देखते रहे। फिर साहस कर और तन कर खड़े हो उसकी ओर देखते हुए मैंने पूछा—

'माफ करेंगी। फ्रिड—सड़क...' मैं इतना ही कह पाया था कि वह जोरो से हँस पड़ी।

'आप हँस क्यों रही हैं ?'—मैंने पूछा।

'आखिर इस तरह पैंतरे बदलते हुए पूछने की क्या जरूरत थी ? आप जैसे ही मेरे निकट आये, मुझसे यही सवाल क्यों नहीं किया ?'

'लेकिन मैं आपसे परिचित तो नही था ।'

'और अब क्या परिचित हैं ?'

'जी नही । परिचय से मेरा मतलब…'

'और फिर फ्रासीसी जवान में क्यों ?'

'मैं आपकी भाषा नही जानता ।'

'आप क्या विदेशी हैं ?'

'जी हाँ, अभी कल ही आपके शहर में आया हूँ ।'

'चलिये, मुझे भी आपकी सड़क की ही ओर जाना है ।'

लड़की के बोलने की भगी मुझे पसन्द आई । कुछ कदम आगे बढ़ने पर उसने पूछा—

'आपको यह शहर कैसा लगा ?…पर आप काँप क्यों रहे हैं ?'

मैं अब तक चकित होकर यही सोच रहा था कि यहाँ के लोग कैसे अच्छे हैं, इनमे कितनी सज्जनता है, एक अपरिचित से रास्ता पूछा और वह मुझे घर तक पहुँचाने चल रही है । इसकी बोली कितनी मीठी है !

हम लोग बातें करते-करते आगे बढ़ते जा रहे थे । कभी-कभी उसका बायाँ हाथ मेरे दाहिने हाथ से इस प्रकार छू-छू जाता था कि मुझे जान पड़ता मानो वह मेरे हाथ मे हाथ मिला कर चल रही है । कल्पना में ही एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी सी हो उठी, मेरे रोएँ खडे हो गये और मैं थोड़ा काँपता हुआ सा दिखाई देने लगा ।

'आप काँप रहे हैं ! शायद आपको सर्दी लग रही है । चलिये, जल्दी-जल्दी घर चलें ।' उसने कहा ।

मैं चुप रहा । जब वह मुझे उस सड़क पर ले आई जिस पर मेरा मकान था तो मैंने कहा—

'अब मैं पहले आपको आपके घर तक पहुँचा आऊँ, फिर अपने घर जाऊँगा ।'

वह हँसती हुई राजी हो गई और बोली—'मुझे आपसे कोई भय नही। आप मेरे घर तक मुझे पहुँचा सकते हैं। मैं यहाँ से दूर रहती भी नहीं हूँ, हम लोग पड़ोसी हैं।' थोड़ी देर में उसका घर आ गया।

'फिर कल,' इतना कह, कस कर हाथ दबा, उसने मुझसे विदा ली।

मैं सारी रात सड़क पर चक्कर लगाता रहा। घर लौटने की इच्छा नहीं हुई। मेरा हृदय उल्लास से भरा हुआ था और मेरे कानो में गूँज रहा था—

'फिर कल !'

उसके चेहरे पर ऐसी रौनक़ थी कि बहुत ही कम युवक उस पर आसक्त होने से अपने को रोक सकते थे।' वह भी स्पष्ट ही अपनी उस आकर्षण-शक्ति से परिचित थी, इसलिए उसका चेहरा सारे संसार के ही युवकों को ललकार कर कहता हुआ जान पड़ता—

'आजमा लो ! मेरे सामने टिक नहीं सकते।'

इधर हाल मे आकर मुझे उसका नाम भी मालूम हो गया था। उसका नाम था 'केटी', और जैसा कि प्रायः इस नाम की लड़कियाँ किया करती हैं, वह अपने बालो के बीच से माँग निकालती थी। जब वह हँसती थी तब उसके गालों के बीच छोटा हलका सा गढ़ा पड़ जाता था, जो एक प्रकार का केन्द्र सा बन जाता और उसके चारो ओर रेखाएं एक प्रकार के जाल का सा आकार बना लेतीं। सचमुच ही वे युवको के फँसाने में जाल का काम देती होंगी।

पिछले महीनों में मेरा उससे बहुत अच्छी तरह परिचय हो गया था, इसलिए वह मेरे नाम के बदले मुझे 'काले बाल वाले' और 'तू' कह कर पुकारा करती और मैं भी उसके वासन्ती रंग के ब्लाउज के कारण उसे 'वासन्ती' कहा करता था।

गरमी का मौसम आने पर हम लोग एक साथ ही नदी मे नहाने जाया करते। वहाँ युवा-युवती एक ही घाट पर केवल स्नान ही नही, बल्कि जी भर कर जल-क्रीड़ा भी कर सकते हैं। उस मौसम मे नदी-किनारों का दृश्य बिलकुल बैलेट-नृत्य के रूप में नाटक सा दीखता है, पर इसमे स्वाभाविकता रहने के कारण यह और भी अधिक मनोरम होता है। युवा-युवती एक साथ तैरते हुए नदी के दूसरी ओर जा पहुँचते हैं, कुछ लोग बीच में ही एक-दूसरे की ओर गेंद फेंकने लगते हैं, कई किनारे पर ही पानी मे शीर्षासन करने लगती हैं, कुछ लोग एक-दूसरे को डुबाने का प्रयत्न करते हैं। लड़कियाँ चिल्लाने लगती हैं—

'शरम नही आती! गोते खा गई—कई घूँट—कई घूँट।'

फिर वादा करती हैं—

'खाने के बाद फिर यहाँ आयेंगे।'

तीसरे पहर हम लोग नाव खेने निकलते। रास्ते मे ही मेरी संगिनी मुझे नाविक कौशल दिखलाया करती और हमारी नाव शराबी की तरह झूमती-झामती, दाएँ-बाएँ होती हुई, कभी-कभी पीछे भी लौट कर पैंतरा सी काटती हुई, आगे बढती। नाव के सामने ठीक नीचे देखने पर ऐसा मालूम पडता मानो पश्चिम की ओर का आकाश चुपके-चुपके वहाँ पर पानी मे गोते लगा रहा हो—वह भी अपने पूरे साज-बाज के साथ, सभी रंग के बादल तथा निर्मल आकाश भी उनके साथ रहते। उनके इस लुक-छिप कर स्नान करते रहने मे कोई उन्हे दुलखता नजर नही आता। हाँ, हमारे डाँड द्वारा पानी में छपछप करने की आवाज अवश्य ही सुनाई देती, जिससे थोडी देर के लिए वहाँ पर स्नान करता हुआ पश्चिम की ओर का आकाश भी चञ्चल सा हो उठता; पर हमारी नाव के वहाँ से निकल जाते ही फिर पहले की भाँति शान्ति मे मग्न हो स्नान करने लगता।

मेरी संगिनी धीरे-धीरे गुनगुनाती जाती। मैं बहुत देर तक उसे न छेड़ता ; पर कभी-कभी जान-बूझ कर डाँड़ इस प्रकार पानी पर पटकता कि उसके छींटे उसके बदन पर जा पड़ते। वह 'तू' कह कर हँसने लगती।

रास्तों पर रोशनी जल जाने पर हम शहर वापस लौटते, और बहुत रात बीते अपने घर।

हमें यही अचरज होता कि आखिर इतनी जल्दी सारा दिन कैसे बीत गया।

एक बार उसने अपनी वर्षगाँठ के उपलक्ष में मुझे अपने घर आने का न्योता दिया। खाने के कमरे मे पहुँच कर मैंने दायें-बायें, आगे-पीछे घूम कर देखा और जो कोई भी दिखलाई दिया उसे सर झुका कर नमस्कार किया। केटी ने बारी-बारी से एक-एक के साथ मेरा इस तरह परिचय कराया—

'हिमालय की तराई मे रहने वाले, फक़ीरों के देश के, बाघ-सिंहों से दोस्ती रखने वाले, वहाँ से यहाँ तक हाथी और ऊँट की सवारी पर यात्रा करने वाले, यहाँ के विश्वविद्यालय मे पढ़ने वाले विद्यार्थी महाशय……'

लोग मुझसे हाथ मिलाते और अपना नाम गुनगुनाते हुए कहते—

'बड़ी प्रसन्नता हुई!'

लोगो ने कुछ विस्मय के साथ मेरी ओर देखा। उनमें से कई ऐसे थे जिन्होंने अपने जीवन में पहले-पहल, मेरे ही रूप मे, एक भारतवासी देखा था। कुछ लोगों को थोड़ी निराशा भी हुई। केटी ने अपनी एक सहेली की पीठ थपथपाते हुए कहा—

'क्यों इंगे—तू समझ रही थी कि भारतवासियों के हाथियों-जैसे

बड़े-बड़े दाँत होते होंगे और बाघों के जैसे चमड़े ! इन्हे देख कर डर तो नहीं मालूम होता ?'

इंगे कुछ लज्जित सी हुई दीखने लगी। एक छोटी बच्ची बोल उठी—'ये तो हम लोगों-जैसे ही हैं !'

सब लोग हँस पड़े।

'लेकिन फकीरों की करामात तो ये अवश्य ही जानते होंगे।' एक बूढी ने कहा। उनके लिए भारतवासी होने का यही प्रमाण था।

'इनके सर पर हीरा लगी हुई पगड़ी तो है ही नही ! ये भारतवासी नही हो सकते।' स्कूल में पढ़ने वाली एक लड़की ने कहा। इस लड़की ने अपने जीवन में एक बार पहले एक भारतीय महाराजा को देखा था और उसीसे उसकी धारणा बँध गई थी कि प्रत्येक भारतवासी वैसा ही होता होगा। उस सन्ध्या को भी वह इसी आशा से वहाँ पहुँची थी कि यदि वास्तव मे आमन्त्रित आगन्तुक महाराजा हुआ तो वह अवश्य ही उसे भारत-भ्रमण के लिए साथ लेता जायगा !

जब मेरी ओर से कुतूहल शान्त हुआ तब गपशप शुरू हुई। इसके लिए लोग कई टुकड़ियों में बँट गये। कोई किसी प्रोफ़ेसर की, कोई शराब की और दूसरा कोई आज की मिठाई की ही तारीफ करने लगा। कुछ दूसरे 'बिअर' और 'शैम्पेन' का गुण-दोष बखान करने लगे, और कुछ इस विवेचना मे लग गये कि गाँव की औरतों के लिए बिना ऊँची एड़ी की जूतियाँ पहने किस प्रकार नाचना सम्भव हो पाता है।

भोजन समाप्त कर जिस समय हम लोग बैठक-घर मे पहुँचे, वहाँ ग्रामोफोन बजने लगा था। लोग बराबरी के जोड़ों में विभक्त हो चुके थे और नाचना शुरू कर दिया था। नाच बड़े ही विचित्र ढङ्ग का था। नाच के बदले यदि उसे मल्लयुद्ध, दौड़ा-दौड़ी अथवा 'मिलिटरी-मार्च'

नाम दिया जाय तो अधिक उपयुक्त होगा। मैं चुपचाप खड़ा देख रहा था। केटी ने मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा—

'आओ—'

'मुझे नाचना नहीं आता—'

उसने मेरे कन्धे पर अपना हाथ रख दिया था। अब और कोई चारा नहीं था। यह सोच कर कि दूसरे मेरा नाचना देख कर किस प्रकार हँसते होगे मुझे कुछ झेंप सी अवश्य लगी, पर वह अधिक देर तक नही रही। यूरोपीय लोगों के लिए उनके नाच का मतलब एक प्रकार के आमोद के सिवा और कुछ नही होता। यह एक सामाजिक आनन्द सा है, जिसमें मनुष्य अपना अकेलापन बिलकुल ही भूल जाता है। नाच के वक्त परिचित-अपरिचित का बिलकुल ही भेद नहीं रखा जाता।

उस दिन सूर्योदय हो जाने पर घर लौटा।

दो दिन तक लगातार बादल छाये रहने और पानी बरसते रहने के बाद आज फिर धूप निकली। बाहर खुली हवा में कहीं टहलने न जा सकने के कारण तबीयत थोड़ी ऊबी सी थी। आज दूर तक टहलने जाऊँगा, ऐसा सोच कर घर से निकला। कुछ क़दम आगे बढने पर ही दीखने लगा कि जितनी दूरी तक टहलने जाना चाहता हूँ, अकेला नहीं जा सकूँगा। इधर कई महीनो से मेरी आदत सी पड गई थी कि अकेला बहुत ही कम टहलने जाया करता था। प्राकृतिक दृश्यो का सुख लूटते समय उसका बँटवारा करने के लिए किसी का अपने साथ रहना जरूरी लगता था—नहीं तो उस चहल-कदमी मे कुछ मजा ही नहीं आता था।

उसने अपनी वर्षगाँठ के उपलक्ष मे जबसे मुझे न्योता देकर

बुलाया था, उस दिन से उसके पास पहुँचने पर न तो मेरे पॉव ही भारी हो आते थे और न हृदय मे ही किसी प्रकार की धड़कन सी शुरू होती थी। यदि वह अपने बाग़ मे बैठी हुई न मिलती तो उसके घर का दरवाजा तक खटखटा देता और यदि कोई विशेष वात न करनी रहती तो केवल सलामालेकुम करके ही चला आता।

साथ टहलने आने के लिए मुझे उससे दुबारा-तिबारा कहने की जरूरत नही पड़ी। मेरे पहली बार कहते ही उसने वासन्ती रग के ब्लाउज पर एक जाकेट पहना और मेरे साथ टहलने के लिए चलने को निकल आई। हम जब कभी इस प्रकार टहलने निकला करते थे, 'हम किस दिशा मे जायँ'—इस विषय मे वाद-विवाद करने के लिए दरवाजे, चौराहे अथवा किसी अन्य स्थान पर रुकने की आदत नही थी। जिधर पॉव बढ़ते जाते, हम उधर ही चलते चले जाते। हममे से एक को जो दिशा पसन्द आती उसमे दूसरा आपत्ति नही करता था।

महल बाग़ के पीछे छूट जाने पर हम लोगों ने सदर सड़क भी छोड दी और एक पगडण्डी पकड़ कर ऊपर पहाड़ी की ओर बढ़ने लगे। उस पहाड़ी पर अगूर की झाड़ें लगी थीं। उस पगडण्डी, पहाड़ी तथा उन झाड़ियों का मेरी स्मृति मे सदा के लिए स्थान बन गया है। उधर से होकर हम लोग कितनी ही बार निकल चुके थे और हर बार ही आनन्द में मग्न रहते। बातें करते-करते कभी थकते नहीं। उन बे-सिर-पैर की बातों मे भी सदा रस मिला करता और उनमे किसी-न-किसी प्रकार की नवीनता दीखती और हम खूब जी खोल कर हँसा करते। नीचे धूप रहने पर भी कभी-कभी ऐसा होता कि पहाडी के ऊपर पहुँचने पर वहाँ हलका-हलका कुहरा सा छाया होता। पर उस कुहरे मे भी कैसा अद्भुत सौन्दर्य छिपा हुआ दीखता, कहते नही बनता। उसी हलके कुहरे मे हमारा आनन्दमय जीवन, हमारा भाग्य ढका हुआ सा जान

पड़ता और सामने के रास्ते के संकीर्ण होते जाने पर भी उस पर चलते रहने से कभी जी नहीं ऊबता था।

आज हम अपने उसी पूर्व-परिचित रास्ते से होकर गुजर रहे थे; पर मेरी संगिनी का चेहरा पहले जैसा खिला हुआ नहीं था। आज ऊपर पहाड़ी पर भी धूप निकली हुई थी और चारों ओर बहुत दूर तक सब साफ दिखलाई देता था, फिर भी मेरी संगिनी के चेहरे पर उदासी सी छाई हुई थी।

उससे उदासी का कारण पूछना मैंने अच्छा नहीं समझा।

पर थोड़ी देर बाद केटी ही सहसा बोल उठी—

'एक बात कहूँ? बुरा तो नहीं मानोगे?'

'क्यों, बुरा क्यों मानूँगा? जरूर कहो।'

वह मेरा हाथ अपने हाथ में ले कहने लगी—

'मुझे केवल इसी बात पर आश्चर्य होता है कि लोग मेरा दुखी चेहरा ही क्यों देखना चाहते हैं? मैंने कभी उनका कुछ बिगाड़ा हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता; फिर भी मालूम नहीं क्यों उन्होंने मुझे दुखी बनाने का निश्चय सा कर लिया है।'

थोड़ी देर रुक कर वह फिर बोली—

'मेरे जन्म-दिन के दिन से कुछ लोग मुझसे बेतरह नाराज हो गये हैं। उन्होंने मेरा यहाँ पर रहना बिल्कुल असम्भव सा बना दिया है। उनके लिए तुम्हारा निमन्त्रण सुखकर नहीं, बल्कि अत्यन्त कष्टकारी सिद्ध हुआ है। वे मुझसे इसका बदला लेना चाहते हैं। मैं अपनी काकी के पास बर्लिन जा रही हूँ।'

उसने मुझे अपना पता दिया।

'आखिर इसका कारण क्या?' मैंने पूछा।

उसने मेरा हाथ कस कर दबाते हुए कहा—'मैंने जिस वर्ग में

किसी को नशा आ जा सकता था। उस कमरे की लगभग सभी कुर्सियाँ लोगो से भरी थी। बिना औरों की ओर देखे सीधे एक कोने में जा बैठा और बिअर लाने के लिये कहा।

एक तो स्वभाव-वश मेरी आदत ही ऐसी बन गई थी कि लोगों के जमघट मे बैठना अच्छा नही लगता था, दूसरे बिअर की ऐसी दूकान में लम्बी-लम्बी गप मारने वाले जैसे लोग इकट्ठा हुआ करते हैं उनकी सगति तो मुझे और भी पसन्द नही थी। लेकिन इस समय जब कि मै इतना अकेलापन अनुभव कर रहा था कि कभी कभी यह भी ख्याल होता था कि लोगों से बातचीत बिलकुल ही न करने के कारण मैं गूँगा सा होता जा रहा हूँ, बिअर की दूकान मे बैठे यही गप्पी मेरा ध्यान अपनी ओर खीचने लगे। लोगो के बीच रहने और अकेलापन भूल जाने की तीव्र इच्छा हो रही थी ; इसीलिये उस बिअर की दूकान मे धुएँ, ब्राडी की गध तथा गदगी का खयाल न कर चैन से उस कोने मे बैठा था !

खाली पेट मे बिअर के पहुँचते ही एक प्रकार की गुड़गुडी सी शुरू हो गई; पर विचारों मे पुख्तगी आने लगी और ऐसा दिखलाई दिया मानो मैं जिस उलझन को सुलझाने के लिये इतना चिन्तित था, उसका हल कर लेना कोई वैसा कठिन काम नही। अपनी उतनी अधिक चिन्ता पर हँसी भी आने लगी और मैंने अपने-आपसे खुले शब्दो मे कह भी डाला—

'जहन्नुम मे जायँ ये सारी चिन्ताएँ।'

मेरे पास ही एक विद्यार्थी बैठा था। एक-दूसरे के चेहरे से हम लोग पहले से ही परिचित थे। उसने मुझसे पूछा—

'यह तो बतलाइये, आपके चेहरे पर आज ऐसी उदासी क्यों ?'

आपको तो मैंने पहले हमेशा हँसते-खेलते ही देखा ; आखिर आज बात क्या है ?'

'यो ही, कोई खास बात नहीं।'

'आज आपने जैसे ही इस दूकान मे पैर रखा, मेरी निगाह आपके चेहरे पर गई। मुझे जान पड़ा मानो आपका मन उचट सा गया है ; उदासी ने आपके चेहरे को ही बदल डाला है।'

'उदासी के सिवा और जीवन मे रखा ही क्या है ?'

'ऐसा क्यों ? यदि आपकी इच्छा हो तो मेरे साथ साइकिल द्वारा उत्तरी देशों की यात्रा कीजिये, फिर वहाँ पर आप देखेंगे कि जीवन कैसा आनन्दमय है।'

'आपका कहाँ तक जाने का विचार है ?'

'मैंने अपना लक्ष्य सीधा उत्तर जाना बना रखा है, फिर जहाँ तक पहुँच जाऊँ ; यदि और आगे न जा सका तो कम-से-कम कोपेनहागेन तक तो अवश्य ही जाऊँगा। अगर कोई साथी मिल गया होता तो मैं कब का यहाँ से चल दिया होता! आखिर मन उच्चाट किये यहाँ बैठे रहने से क्या फायदा ? उत्तरी प्रदेशों के रहने वाले ऐसे भले होते हैं कि वहाँ की यात्रा करने पर किसी तरह की चिन्ता नहीं रह जाती और न किसी तरह की तकलीफ़ ही महसूस होती है।'

इन दिनों मेरी तबीयत जैसी उचट चली थी और हाइडिलबेर्ग जैसा वीरान सा दीखता था, उस विचार से ससार का कोई भी दूसरा शहर मुझे पसन्द आ सकता था।

हाइडिलबेर्ग से पीछा छुड़ाना मेरे लिए मुख्य बात थी। मैं अपनी उदासी और उत्साहहीनता के लिये इस शहर को ही पूरी तरह से जिम्मेदार मानने लगा था। इस शहर में मेरे दिल पर पिछले दिनों में जो कुछ बीता था उससे बुरे की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था।

मैं उस विद्यार्थी (हान्स) के साथ यात्रा करने के लिये तैयार हो गया।

जो लोग बाहरी टीमटाम और दिखावे पर अधिक ध्यान दिया करते हैं उनकी दृष्टि में हान्स अवश्य ही थोड़ा मनहूस अथवा बदशक्ल हो सकता था। इस प्रकार की बातों मे सबसे पहली बात यह थी कि वह अपनी दाढ़ी कभी खास मौकों पर ही मुड़ाया करता था। बाल काले रहने के कारण अधिक न बढ़ने पर भी गोरे चेहरे पर साफ़ दीखने लगते थे और एक सप्ताह तक न मुँड़ाने पर तो एक सिलसिले मे न उगे रहने के कारण खोंसे हुए से दीखते थे। इसके अलावा उसके कपड़े पहनने के ढग से लापरवाही टपकती थी। उसकी टाई बँधी होती, फिर भी गॉठ ऊपर के बटन से बहुत नीचे खिसकी हुई होती और ठीक ऐसी दीखती मानो किसी बच्चे की नाक चू रही हो। कालर भी सदा सिकुड़े हुए रहते, और कभी तो वे इतने तङ्ग रहते कि गरदन के चमड़े के दबने के कारण गाँठ सी बाहर निकली दिखलाई देती, और कभी ऐसे ढीले रहते कि कमीज का ऊपरी भाग उनके पीछे से दिखाई देता। इस समय यात्रा के लिए उसने जो टोप पहन रखा था वह ठीक तम्बू के आकार का था और उसकी पूरी पोशाक के साथ उसका ठीक-ठीक मेल बैठ जाता था।

बाहर की यह सब लापरवाही उसकी अपनी इच्छा के प्रतिकूल थी तथा उसे छिपाने की लाख चेष्टा करने पर भी वह स्पष्ट हो ही जाती थी। लापरवाही का खास कारण उसकी माली हालत है, यह बात भी वह छिपा नहीं पाता था; पर इन बातों के दबा रखने अथवा छिपाने की चेष्टा मे उसे बहुत-कुछ सहना भी पड़ता था। उसके चेहरे से ही दीख पड़ता था कि वह बहुतेरे कष्ट बिना आह-ऊह किये बर्दाश्त कर सकता है।

मुझे आगे चल कर पता चला—कितनी ही भयानक सर्दी होने पर भी कभी उसने अपना कमरा गरम नहीं करवाया। खाने के लिए भी विद्यार्थियों के भोजनालय में जो सस्ते-से-सस्ता खाना मिलता था वही वह खाता था। वह भी उसके लिए हमेशा ही कम पड़ जाता था और रोज ही तश्तरी लिये हुए वह दुबारा-तिबारा और माँगने जाता। विद्यार्थियों के भोजनालय में उबले हुए आलू कोई चाहे जितने खा सकता था और वे माँगने पर मिल सकते थे; हान्स उन्हीं आलुओं से अपना पेट भरा करता। मैंने स्वयं भोजनालय मे उसे अक्सर जूठी तश्तरी लिये आलू माँगने के लिये खड़ा देखा था। जिस दिन वह भोजनालय बन्द रहता वह घर पर ही सूखी रोटी खाया करता और पिपरमिंट की सस्ती चाय पीकर काम चलाता। यदि कभी किसी शाम को कही जाने की इच्छा होती तो छोटी-छोटी गलियों वाली बिअर की दूकान के सिवा और कहीं नहीं जाता।

यदि उसकी बिअर का दाम कोई दूसरा विद्यार्थी अथवा उसका कोई मित्र चुकाना मंजूर कर लेता तो वह बिअर के अनगिनित गिलास उड़ेल ले सकता था। देखने वाले को यह अचरज भी हो सकता था कि आखिर बिअर के लिए इतनी जगह उसके पेट मे कहाँ से निकल आती है। पर वह उसे अच्छी तरह झेल लेता था। उसे शराब के नशे मे लुढकता-पुढ़कता अथवा अट-संट बकते हुए कभी किसी ने नहीं पाया।

वास्तव में वह बर्लिन का रहने वाला था। उसके माता-पिता भी वहीं थे। पिता इधर कुछ दिनों से नौकरी छूट जाने के कारण बेकार हो गये थे, इसलिये हान्स के सामने भी बहुतेरी कठिनाइयाँ आ उपस्थित हुई थीं। साहस की कमी न रहने के कारण उतने पैसे का वह बन्दोबस्त कर लेता था जितने में किसी-न-किसी प्रकार जिन्दा रहा जा सके।

पहले थोड़ी-बहुत 'ट्यूशन' भी किया करता था; पर जब से कोट और पैंट मे छेद हो चले थे, वह काम आप-से-आप छूट गया था। दूसरे विद्यार्थियों के निबन्ध आदि टाइप करने का भी वह काम किया करता था; पर अपना टाइप-राइटर न रहने के कारण उसे न तो काफ़ी आमदनी हो पाती थी और न हमेशा कोई अच्छा सिलसिला ही जम पाता था।

फिर भी वह निराश होता कभी भी नही देखा गया। जहॉ से बिलकुल ही आशा नही की जा सकती थी, उन जरियो से भी वह पैसे कमा लिया करता। इधर सप्ताह में एक दिन थिएटर में काम करके भी लगभग एक अठन्नी कमा लिया करता था। असल मे वह अठन्नी मेहनताने में नही दी जाती थी, बल्कि थिएटर की ओर से इसलिये दी जाती थी कि वह स्नान कर सके अथवा अपना शरीर भली-भाँति साबुन से साफ़ कर सके; क्योंकि जिस प्रकार का वेश बना कर उसे रङ्गमञ्च पर जाना पड़ता था उसके बनाने मे ऐसे मसालो से काम लिया जाता था जो शीघ्र ही छूटने वाले नहीं होते थे। हान्स वह अठन्नी बचा लिया करता और अपना शरीर किसी-न-किसी तरह साफ कर लेता।

उसने बहुत से कारखाने भी छान डाले, यहॉ तक कि कोयले की खानों मे काम करने की इच्छा से दरखास्त भी दी; पर सब स्थानों से यही उत्तर मिला कि उन्हे मजदूरों की जरूरत नहीं, आर्थिक सङ्कट के कारण रोज ही मजदूर काम से हटाये जा रहे थे!

हान्स की और मेरी हालत मे बहुत कुछ समानता थी, इसलिए हम दोनों की पटरी और भी बैठ गई।

अगले दिन प्रातःकाल ही हम लोगों ने उत्तरी देशों की यात्रा के लिए हाइडिलबेर्ग से कूच कर दिया।

जरमन लोगों के लिए गरमी की ऋतु बडी ही बहार की होती है।

हमारे यहाँ गरमी की ऋतु अच्छी नहीं समझी जाती, क्योंकि बेतरह गरमी पड़ते रहने के कारण कोई काम करने की तबीयत नहीं होती ; मारे आलस के पड़े रहने की ही इच्छा होती है और धूप तो तनिक भी अच्छी नहीं लगती। पर जरमनी वालों के लिए यही ऋतु होती है जब वे पर्याप्त मात्रा मे सूरज की गरमी का आनन्द उठा पाते हैं, जब वे धूप मे बैठकर अपने चेहरे की सफेदी दूर कर उसके स्थान पर लाली लें आना चाहते हैं।

प्राकृतिक दृश्य भी गरमी के ही दिनों मे सुन्दर रहते हैं। हम लोगो की सड़क के दोनों ओर उपजाऊ खेत थे, जिनमें जौ के पौधे खड़े लहलहा रहे थे। उनका रंग हरियाली लिए हुए भूरा हो चला था। हवा चलने पर उन खेतों पर एक प्रकार की लहर सी चलती हुई दिखलाई दे रही थी। मैं इस प्रकार के दृश्य से जन्म से ही परिचित था, पर जब से विदेश आया था, यह दृश्य देखने का यह पहली ही बार मौका मिला था।

चारों तरफ का दृश्य हमारे देश के फाल्गुन-चैत्र के महीने-जैसा दीखता था। विदेश में अब तक जिस प्रकार के दृश्य से परिचित था उससे यह भिन्न प्रकार का मालूम पड़ता था, मानो थोडी देर के लिए अपने देश की ही भूमि पर चल रहा हूँ तथा वहाँ के ही दृश्य देख रहा हूँ। हान्स उन खेतों का दृश्य दिखला कर उनकी सुन्दरता के विषय में कुछ कहना चाहता था ; पर उस समय बातें करने की मेरी अनिच्छा देख कर चुप रहा।

आगे बढने पर हमारा रास्ता चीड़ के वन से होकर जाता था। हम पश्चिम और उत्तर के कोने की ओर बढ़ते जा रहे थे। सूरज ठीक हमारे पीछे था और धूप के कारण हमारी पीठ गरम होती जा रही थी। पर धूप की यह गरमी सुखद थी और अपने यहाँ के पौष महीने की धूप

सी सुहावनी लग रही थी। हरे-भरे अगल-बगल के जङ्गलो की ओर देख कर हमे प्रसन्नता हो रही थी, विशेष कर हान्स को, और वह बार-बार कह उठता—

'यह दृश्य कैसा सुन्दर है !'

मुझे वह दृश्य कम सुन्दर दीखता हो, यह बात नही थी, पर प्राकृतिक सुन्दरता के विषय मे कुछ कहने अथवा दूसरे के मुँह से सुनने की इच्छा नही हो रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि आँखों से देख कर हम जिस सुन्दरता का उपभोग कर रहे हैं, शब्दों मे उन्हे व्यक्त करने पर वह नष्ट हो जायगी, अथवा उसमे कमी आ जायगी। हान्स की उपर्युक्त बातें सुनकर मैं केवल सर हिला कर हुँकारी भर देता।

हमारे दाहिनी ओर हरे भरे वृक्षो से ढकी एक पहाड़ी दिखाई देने लगी। सूरज थोड़ी देर के लिए उजले बादलों मे छिप गया था इसलिए सामने की हरियाली और भी गहरी दीखती थी। उस ओर उँगली का सकेत करते हुए हान्स ने कहा—

'जिस समय जोरों की प्यास लगी हो उस समय यदि कोई इस हरियाली को देखे तो कुछ-न-कुछ अश में उसकी प्यास को यह अवश्य ही शान्त कर देगी।'

'मुझे सचमुच ही प्यास लग आई है।' मैंने पास के ही एक झरने की कल-कल सुन कर कहा और उस ओर बढने लगा। हान्स भी मेरे पीछे-पीछे आया। मैंने तो पानी पिया, पर वह उस झरने के विषय में अपनी कविता सुनाने लगा। पहाडी दृश्य की ओर संकेत करते हुए उसने कहा—

यह दृश्य मुझे ऐसा दिखलाई दे रहा है मानो इसके भीतर कुछ छिपा है। यह हरियाली सजीव तथा हमे कुछ कहती हुई दिखलाई देती है।'

'मुझे इसकी भाषा समझ मे नहीं आती।' मैंने बिना कुछ सोचे-विचारे कह डाला।

हम लोग जरमन 'वांडर फोगल' (भ्रमणशील पक्षी) नामक युवक-यात्री-सङ्घ के सदस्य हो गये थे इसलिए रात भी इस सङ्घ की ओर से बने मकानों में ही बिताया करते थे। इस प्रकार के मकान जरमनी के प्रायः प्रत्येक हिस्से मे, और विशेषकर जिन स्थानों का प्राकृतिक सौंदर्य बढ़ा-चढ़ा होता है वहाँ पर, बने होते हैं ; ये 'यूगेंड हेरबेरगर' के नाम से पुकारे जाते हैं।

फोगेल्सबर्ग भी जरमनी मे अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ एक पहाड़ी के ऊपर गाँव से सटा हुआ हम लोगों का हेरबेरगर (रात्रि-निवास-स्थान) था। पहले शायद वह कोई पुराना क़िला रहा होगा ; पर अब उसका अधिकांश वीरान हो गया था। इस समय लकड़ी का एक बहुत पुराना फाटक तथा उसके आसपास की मोटी, पर भग्न दीवारें स्मृति-स्वरूप शेष रह गई थीं, जो उस क़िले के शानदार इतिहास तथा उज्ज्वल अतीत की याद दिलाती थी। पुराने समय में शायद यह कोई ऐतिहासिक स्थान रहा होगा ; पर अब आसपास की प्राकृतिक सुन्दरता के सिवा उस स्थान का और कोई महत्त्व नही रह गया था।

इसी पुराने गढ़ के एक भाग मे यूगेंड हेरबेरगर (युवकों का रात्रि-विहार) था। इसका भीतरी भाग भी ठीक बाहर के ही समान था। एक बहुत बड़े लम्बे-चौड़े हॉल में युवकों के रात बिताने का स्थान था। पहले जब उस गढ़ के अच्छे दिन रहे होंगे, वह अवश्य ही कोई सजा-सजाया नाच-घर रहा होगा। अब उस पुरानी शान की याद दिलाने के लिए टूटे हुए छोटे जंगले तथा मोटी और बड़ी ऊँची

दीवारों के सिवा और कुछ शेष नही रह गया था। उस हॉल मे लोहे के पत्तरों से बने, दोमजिले जहाज की केबिनों के वर्थ से दीखने वाले, बिलकुल सटे-सटे लगभग चालीस-पचास मञ्च थे, जिन पर पुत्राल-भरी चट्टियाँ बिछी थीं। इस हॉल के बगल मे और एक छोटा सा कमरा था जिसमें उसी प्रकार के वर्थ बने थे और वह लडकियों के रात बिताने के लिए काम आता था।

हेरवेर्ग का रखवाला चौड़े कधों वाला तथा बडे लम्बे डीलडौल का आदमी था। अवस्था लगभग पचास वर्ष की रही होगी। मूछें बड़ी लम्बी तथा कानों तक पहुँचने वाली थीं। जिस समय हम लोग उसके पास पहुँचे वह युवकों के सोने वाले दालान से निकल कर बाहर आ रहा था। उसके मुँह में एक बड़ा लम्बा-चौड़ा पाइप लटक रहा था। हमें देखते ही उसने पूछा—

'तुम लोग यहाँ रात बिताना चाहते हो?'

हम लोगों ने हुँकारी भरी।

'पर कार्ड के बिना इजाजत नहीं!'

हम लोगों ने अपने कार्ड उसे दिये; बिना देखे ही उसने उन्हे अपने पाजामे के पाकेट में डाल लिया और कहा—

'किराया कल सबेरे पास वापस लेने के समय देना। अब इस हॉल में अपने लिए जगह खोज लो। हमारे यहाँ सिर्फ धुरंधर लोग ठहरते हैं, इस बात का खयाल रखना; दखल किया हुआ वर्थ न छेकना।'

हम लोगों ने अपना सामान जङ्गले के पास के मंच पर रख दिया और फिर बाहर चले आये। हान्स को मकरोनी (आटे की मोटी सेंवई) पसन्द आती थी; क्योंकि उसके लिए कुछ अधिक खर्च करने की आवश्यकता नही थी और मात्रा भी काफी हो जाती थी। हम लोगों ने वही उबाल कर खाया और फिर उस किले के एक गुम्बज पर चढ़

गये। वहाँ पर कुछ लड़के और कई लड़कियाँ पहले से ही बैठे थे। वे भी वहीं रात बिताने वाले थे। उनकी पोशाक हमारी जैसी ही थी और वे भी हमारी ही तरह के यात्री दिखाई देते थे।

जिस समय हम वहाँ पहुँचे बीच में एक युवक गितार (सितार सा ही एक वाद्य-यंत्र) लिये बैठा था, और उसके चारों ओर जरमनी तथा आस्ट्रिया के विभिन्न प्रान्तों के पच्चीस-तीस लडके-लडकियाँ बैठे हँसी-मजाक कर रहे थे। बीच में बैठा युवक कह रहा था—

'अब कुमारी लिजे की बारी है!'

चारों तरफ से लोगों ने 'हाँ' 'हाँ' कहना शुरू किया। उस नाम की लड़की का चेहरा बिलकुल लाल हो आया। गाने की तो बात ही दूर रही, उसके मुँह से कोई शब्द भी निकलना मुश्किल हो रहा था। बडे प्रयत्न के बाद वह केवल इतना कह पाई—'मुझे गाना नहीं आता।'

'तुम्हारी आवाज ही ऐसी मीठी है कि तुम्हारी बोली ही गाने के सुर सी दीखती है।'

'हाँ, रुको, अब वह शुरू करने ही वाली है।'

'नहीं, बिना बाजे के वह गाना नहीं चाहती।'

'गितार उसके हाथ में दे दो।' आदि आवाजें चारों ओर से आने लगीं। थोड़ी देर तक बिलकुल गोलमाल सा मचा रहा, फिर गितार बजाने वाला युवक जब अपने बाजे के तार दुरुस्त करने लगा तो शोर-गुल थोड़ा शात होता सा दिखलाई दिया। पहले वह कुछ देर गुनगुनाता रहा, फिर उसने गाना शुरू किया—

'एक समय मैं कितना भाग्यशाली था,
एक समय मैं कितना मस्त था।
उस समय मेरी प्रियतमा रहती थी,
एक पर्णकुटीर में—एक छोटी सी पर्णकुटी में;

उस समय मेरी प्रियतमा रहती थी,
एक छोटी सी पर्णकुटीर मे।'

वह अकेला ही गाता रहा। जब तक उसके मुंह से आवाज निकलती रही सन्नाटा छाया रहा; पर ज्यों ही वह चुप हुआ और गिटार के तारों की आवाज बन्द हुई, लोग उस पर टीका-टिप्पणी करने लगे—

'इसके भीतर प्यार की व्यथा भरी है।'

'मालूम नही, एकाएक कैसे इसके भीतर यह व्यथा घुस गई?'

'ससार में काफ़ी लड़कियाँ हैं।'

'कोई दूसरी क्यो नहीं ढूँढ लेते?'

'यही पर तो कितनी मिल जायँगी।'

'क्यो आन्ना?'

'आः तू!' कह वह लड़की, जिसका उसने नाम लिया था, उसका कन्धा झकझोरने लगी।

रात अँधेरी थी, पर तारों की जगमगाहट के कारण अन्धकार घना नहीं था। पहाड़ी के नीचे बहने वाला सोता तथा उसके चारों ओर का हरा मैदान धुँधला दिखलाई दे रहा था। यही इस समय अच्छा लग रहा था। यदि सामने की चीजें स्पष्ट दिखलाई देतीं तो आज दिन में जितना लम्बा सफ़र किया था उसकी याद आ जाने के कारण थकावट मालूम पड़ने लगती।

अपने चारों ओर ऐसे निश्छल युवा-युवतियो के रहने के कारण हम अपनी यात्रा के कष्ट भूल गये थे। ऐसी मडली मे किसी को किसी से परिचय करते देर नहीं लगती। हिलमिल जाने के लिये किसी की केवल युवावस्था रहना ही पर्याप्त होता है। चाहे वह किसी भी देश का, किसी भी रंग का क्यों न हो, इन युवा-युवतियो का वर्ताव उसके

प्रति एक सा ही होगा। विदेशी की बातों को शायद लोग थोड़ा अधिक ही महत्त्व देते।

मैं ऐसी मण्डली से परिचित नहीं था, इसीलिए बातें करते समय 'आप' कह कर सम्बोधन किया। तुरंत ही मेरे पास बैठी एक युवती ने कहा—'आप नहीं, तू।' थोड़ी देर में ही ऐसा लगने लगा मानो वे युवा-युवती आज से नहीं, बल्कि जन्म से ही परिचित रहते आए थे।

थोड़ी देर तक उपर्युक्त प्रकार का गोलमाल सा रहता, उसी समय कोई अकेले-दुकेले से बातें करते भी दिखलाई देते, पर ज्यो ही कोई गान आरम्भ होता, सब मिल कर गाने लगते।

इस बार एक दूसरे युवक ने गितार अपने हाथ में लिया और गाने लगा—

'सुन्दर है जवानी—मस्ती की घड़ियों मे,
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती,'
इसीसे मैं कहता हूँ एक बार और,
सुन्दर है जवानी—जवानी की घड़ियाँ !
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती,
वह फिर नहीं आती,
हाँ, सचमुच, वह फिर नहीं आती,
वह फिर नहीं आती,
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती।'

सचमुच ही यह गाना उनके हृदय से निकल रहा था। जिन्हें गाना नहीं आता था और जो गाने के लिए कहने पर भी बड़ी आनाकानी कर रहे थे, वे भी इस समय गाने लगे थे। हान्स तो बिलकुल पहचान में ही नहीं आ रहा था। अपने मोटे गर्दभ स्वर में वह भी जितना अधिक अपना मुँह फाड सकता था फाड़ कर गा रहा था।

हम लोग उस टूटी हुई दीवार पर बहुत देर तक अपनी दैनिक चिन्ताएँ भूल कर अपने भीतर जितना अधिक आनन्द भरा जा सकता था, भर लेने की चेष्टा कर रहे थे। धीरे-धीरे जब दूसरे सब लोग सोने चले गये तब भी मैं हान्स के साथ वहीं बैठा रहा। थोडी देर बाद उसने कहा—

'चलो, थोड़ा घूमने चलें, और कुछ नहीं तो इस पुराने गढ की परिक्रमा तो कर लें।'

हम लोग चुपचाप चलने लगे। उस समय बातें करने से अवश्य ही सारा मजा किरकिरा हो जाता। फिर भी एक-दूसरे के भीतर क्या लहरें उठ रही थी, हम दोनों भली भाँति समझ सकने में समर्थ हो रहे थे।

गढ़ की उस खिडकी के नीचे आ पहुँचने पर, जहाँ लड़कियों के सोने का कमरा था, हान्स अपने गर्दभ-स्वर में गाने लगा—

'मेरी सुन्दरी प्रियतमे, मेरी अमूल्य निधि !
मैं रुका हूँ तेरी छोटी सी खिडकी के सामने,
क्या तू सुनती नहीं है, चलती हुई हवा की आवाज,
झोंके से चलती हुई हवा की आवाज,
क्या तू सुनती नहीं है—
झोंके से चलती हुई हवा की आवाज !
उठ री, उठ, खोल दे किवाड—
और मुझे आने दे अन्दर,
मेरी सुन्दरी प्रियतमे—मेरी अमूल्य निधि !'

भीतर से खिलखिला कर हँसने की आवाज आई। एक लड़की खिड़की के सामने आ हम लोगों की ओर झाँकने भी लगी। इसी समय भीतर से किसी दूसरी लड़की ने उस कमरे में जलने वाली बत्ती

बुझा दी। खिड़की के सामने खड़ी लड़की 'गुड-नाइट' कह कर सोने चली गई। हान्स अपने उपर्युक्त गीत का अन्तिम पद फिर से गाने लगा। लड़कियाँ ठहाका दे हँसने लगीं और खिड़की के सामने आकर बोलीं—

'कल—कल आना।'

हम लोग भी अपने-अपने बिस्तरे पर जाकर लेट गये। दूसरे लड़के भी अपने कपड़े बदल रहे थे। केवल वह लड़का, जो बाहर गितार बजा रहा था, इस समय भी कमरे मे टहलता हुआ कुछ गुनगुना रहा था। उसके एक साथी ने उसे सो जाने के लिए कहा। इस पर उसने अपनी खाट पर रखी गितार फिर से उठा ली और खड़े-खड़े ही बजाता हुआ बहुत देर तक गाता रहा—

'आह, क्या मैं अभी मर जाऊँ ?
अरे, अभी तो मैं इतना छोटा हूँ !
अभी तो मेरी नसों मे जवानी का नया ताजा खून दौड़ रहा है !
अभी तो मेरी नसों में नया ताजा खून दौड़ रहा !
अभी तो मैं यह भी नहीं जानता कि प्यार किस तरह किया जाता है !
आह, क्या मैं अभी मर जाऊँ ?'

डेन्मार्क

दूसरे दिन सवेरे जिस समय हान्स ने मुझे जगाया, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कल की सभी घटनाएँ मैंने स्वप्न में देखी हो। उन घटनाओं को यथार्थ मानने के लिये एक-एक करके उनकी याद मन में लाने लगा। मैं अभी बिछौने पर उठ कर बैठा ही था कि हान्स हँसता हुआ सामने आ खड़ा और अपना हाथ मेरी ओर बढाया। उसकी हँसी से ही कल की यथार्थता पर पूरा विश्वास हो गया।

हम लोग 'लुबेक' नगर की ओर रवाना हुए। हेरबेर्ग छोडते समय बूँदा-बाँदी हो रही थी, पर उसकी परवा किये बिना हम लोग आगे बढते गये। रास्ते मे हान्स ने अपना तिकोना, तम्बू के आकार का, हरे रग का टोप भी मेरे सर पर रख दिया और स्वयं नंगे सर चलने लगा।

कई दिनों की यात्रा के बाद हम लोग बाल्टिक-सागर के किनारे जा निकले। यहाँ पर केवल बाहर का ही नहीं, अपने भीतर का भी हम लोगों ने सारा मैल धो डाला। कई दिनों तक सागर-तट पर विश्राम करते हुए हम लोगों ने आँखे खोले-खोले ही स्वप्न देखे। पहले के सारे कड़वे अनुभव भुला दिये।

डेन्मार्क की सीमा पर जा पहुँचने पर हमे पता चला कि जरमन

लोगों के लिए अपने देश से बाहर जाने में उन दिनों कई प्रकार की रुकावटें लगा दी गई थी। अतः हान्स ने वहाँ से अपने माता-पिता के पास बर्लिन लौट जाना तय किया और मैं अकेला डेन्मार्क की ओर बढ़ा।

•

डेन्मार्क-जैसे उत्तरी प्रदेश में पहले-पहल प्रवेश कर रहा हूँ, यह विचार मन में निरन्तर रहने के कारण जिस किसी भी शहर, गाँव, गिरजा-घर अथवा झोपड़ी तक पर नजर जाती, ऐसा लगता मानो उसमें कोई न कोई दिलचस्प बात छिपी है। सामने रास्ते के कङ्कड़ों से लेकर दूर पर दिखलाई देने वाले महल-जैसे मकान तक—सभी चीजें अपनी ओर मेरा मन आकर्षित कर रही थीं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर हवा से चलने वाली चक्कियाँ दिखलाई देतीं और उन्हे देख कर स्वभावतः उनका काल-निर्धारण करने लग जाता। यदि उन पर कुछ लिखा होता तो साइकिल से उतर पड़ता और उसे पढ़ने की चेष्टा करने लगता। भाषा डेनिश होने के कारण बहुतेरी बातें मेरी समझ में न आतीं; परन्तु फिर भी मुझे यह सन्तोष सा हो जाता कि उन पुरातन स्मारकों से मैंने गहरी दोस्ती कर ली है।

सामने से अगर कोई आदमी आता हुआ दिखाई देता तो उसे अब तक के देखे सभी आदमियों से भिन्न प्रकार का मानने लगता और उसमें जान-बूझ कर कोई-न-कोई नई बात ढूँढ़ निकालने की चेष्टा करता। यदि कोई युवती सामने से आती दिखलाई देती तो विचार करने लगता कि यह मेरे देश की युवतियों से अधिक सुन्दरी है या नहीं। इतना ही नहीं, उसके हर अङ्ग पर मन ही मन टीका-टिप्पणी करने लगता, और यदि किसी किसान की भोली भाली मोटी-ताजी लड़की सामने आ निकलती तो उसकी रोजमर्रा की खूराक की कल्पना करने

लगता। वह मेरी कल्पना में तुरन्त ही एक कठौती-भर दूध अथवा थाल भरे मलाई-मक्खन के सामने बैठी हुई और काठ का बड़ा सा चमचा हाथ में लिये दिखलाई देती। उनकी भाषा न जानने पर भी तुरन्त ही अपने को उनसे बातें करता हुआ पाता पर बातों से अधिक ओंठों पर हँसी रहा करती।

इन्हीं विचारो मे मग्न मैं उस स्थान तक पहुँच गया जहाँ पर सड़क खत्म होती थी। सामने समुद्र था; परन्तु दो तरफ़ थोड़े-थोड़े फासले पर दो टापू साफ दिखलाई दे रहे थे। डेन्मार्क मे ऐसे दृश्य पग-पग पर देखने को मिलते हैं। रेल की पटरियाँ भी ठीक जहाज लगने की जगह तक जाकर एक-ब-एक खत्म हो जाती हैं। जहाज पर भी वैसी ही पटरियाँ बिछी रहती हैं और रेल के डब्बे-के-डब्बे वहाँ जहाज पर लद जाते हैं और फिर दूसरे टापू मे जा पहुँचने पर वहाँ की पटरियों पर चलने लगते हैं। मुसाफिर अपने डब्बे में सोये-सोये ही, बिना किसी हिलाडुली के, अथवा डब्बे से जहाज पर पाँव रखे बिना ही एक टापू से दूसरे टापू पर पहुँच जाया करते हैं।

पर मैं था साइकिल पर सफर करने वाला मुसाफिर। पूछने पर मालूम हुआ कि उस दिन कोई जहाज दूसरे टापू की ओर जाने वाला नहीं था। अतः जहाँ था वही रात बितानी थी। फिर से गाँव मे लौट आया और सोने का स्थान ढूँढ़ने लगा।

मेरे लिए इस प्रकार सोने का स्थान ढूँढ़ना कोई नई बात नहीं थी। रात बिताने का स्थान ढूँढ़ लेने की कला मे मैं प्रवीण हो चुका था; किसी से पूछते समय पहले-जैसी धड़कन भी अब मेरे दिल में नहीं होती थी।

अभी उस गाँव की सड़क पर थोड़ी दूर ही आया हूँगा कि देखा, एक खिड़की से दो व्यक्ति सर निकाले बाहर झाँक रहे हैं। उनका

चेहरा देखते ही स्पष्ट हो गया कि रात बिताने का स्थान देने की बात उनके सामने रखने पर वे नाहीं नही करेंगे। उन व्यक्तियों मे एक स्त्री थी, जिसका चेहरा ठीक खरबूजे के समान गोल था। उसने अपने बालों को दो भागों में बाँट, उन्हें गूँथ कर, कन्धे के दोनो ओर लटका रखा था। दूसरा व्यक्ति पुरुष था जिसने अपने बाल पीछे की ओर काढ़ रखे थे और चश्मा लगा रखा था।

जैसी कि मुझे आशा थी, मेरे यह कहते ही कि 'मैं यात्री हूँ और कोपेनहेगेन तक जाना है, पर आज कोई जहाज नही जाता इसलिए इस गाँव में ही रहना चाहता हूँ,' वे लोग अपने घर में मुझे ठहर लेने के लिए तैयार हो गये। घर के उपरले भाग की एक कोठरी में अपना सामान रख, हाथ-मुँह धो, नीचे उतरा तो उन लोगों ने अपने साथ खाना खाने के लिए भी मुझे बुलाया। खिलाया भी उन्होंने बड़े सत्कार के साथ। वास्तव मे यह एक शिक्षक का परिवार था। शिक्षक महाशय थोड़ी-बहुत जरमन जानते थे, इस कारण उनसे बातचीत करते कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। उनकी स्त्री डेनिश के सिवा और कोई दूसरी जबान नहीं जानती थीं। इसलिए शिक्षक महाशय को समय-समय पर दुभाषिया का काम करना पड़ता अथवा, जैसा कि सभ्य समाज में स्त्रियाँ अक्सर किया करती हैं, हम लोगों की बातें न समझने पर भी उनकी स्त्री अपने चेहरे से ऐसा भाव प्रकट करती और समय-समय पर इस तरह हँसतीं मानो वे हमारी बाते खूब समझ रही हैं। शिक्षक महाशय हर बात में अपने देश की तुलना जरमनी से किया करते और हर बार इस परिणाम पर पहुँचते कि उनका अपना देश हर बात में जरमनी से बढ़ा-चढ़ा और अच्छा है। पर असल जरमनी की उन्होंने झलक भी आज तक नहीं देखी थी, फासला इतना कम होने पर भी वह उनके लिए विदेश था।

जिस समय उनकी स्त्री बगल के कमरे में खाने आदि की सामग्री

मेज पर सजा रही थीं, मैं शिक्षक महाशय के साथ उनके अतिथि-गृह में बैठा उनके साथ गप्पें लड़ा रहा था। बात करने को और कोई विषय न दिखाई देने पर यों ही मैंने शुरू किया—

'दो-तीन दिन पहले मैं हामबुर्ग में था। अफसोस, मुझे समय बहुत थोड़ा मिला और वहाँ जितनी चीजें देखने की हैं वह सब नहीं देख सका।'

'हाँ, हामबुर्ग के विषय में मैंने भी बहुत-कुछ सुन रखा है!'

'शहर बड़ा ही सुन्दर है।'

शिक्षक महाशय ने हँसते हुए उत्तर दिया—'आपने हमारे देश के शहर नही देखे, इसीलिए आपका ऐसा खयाल है। हामबुर्ग अवश्य ही बड़ा शहर है, लेकिन लुचे-लफंगों से भरा है। वह ऐसे लुचे-लफगों का अड्डा है जैसे कि संसार के और किसी कोने में ढूँढ़े नही मिलेंगे।'

उनकी इस कड़ी आलोचना से मैं थोड़ा सहम गया, पर तुरन्त ही जरमनी के दूसरे शहरों के विषय में चर्चा करने लगा—

'हाँ, बड़े-बड़े शहरों के विषय में लोगों के अपने-अपने अलग विचार हुआ करते हैं। पर हाइडिलबेर्ग का खयाल कीजिये। शहर कितना छोटा, पर कितना सुन्दर है!'

'हाइडिलबेर्ग! सुन्दर?'

'क्यों, आप ऐसा नहीं समझते?'

'लुटेरों का सबसे बड़ा अड्डा हाइडिलबेर्ग है।'

शिक्षक महाशय की यह बात भी मैं भली भाँति न समझ पाया, मान लेने की तो बात ही दूर रही। उन्होंने आगे कहना शुरू किया—

'अभी हाल में ही हमारे ओडेन्से (एक टापू) के एक शिक्षक वहाँ की यात्रा कर आये हैं। वे हाइडिलबेर्ग में केवल दो सप्ताह ही ठहरे थे, पर उतने ही समय में उनके गालों की हड्डियाँ निकल आई,

आँखें भीतर की ओर धँसने लगीं और शरीर ऐसा दुर्बल हो गया मानो छः महीने से उन्हे खाना न मिला हो। अच्छा हुआ कि वे शीघ्र लौट आये, नही तो शायद उनकी ठठरी ही शेष रह जाती।'

'ऐसा क्यों ?'

'ऐसा क्यों ? वहाँ के लोग ही ऐसे ठग हैं। जरा सा पहाड़ी, या नदी का घुमाव दिखलाने का बहाना कर सारा पैसा ठग लेते हैं। और जब पास मे पैसा नहीं रह जाता तो निकाल बाहर करते हैं। अतिथि-सत्कार का तो वहाॅ नाम-निशान नही है। प्राकृतिक दृश्यों का सौन्दर्य भी नही लूटने देते। हर समय वहाँ वालों की यही इच्छा रहती है कि किस प्रकार आपके पाकेट में उनका हाथ पहुँचे। नहीं, हाइडिलबेर्ग ? वह अवश्य ही लुटेरों का अड्डा है।'

मैंने समझा, शिक्षक महाशय को अवश्य ही इन शहरों का कटु अनुभव है। अतः मैंने चर्चा हानोवर के विषय में चलाई। यह शहर बहुत दिनों तक नामी राजा-महाराजाओं का अड्डा रह चुका है और वहाँ वाले यह अभिमान रखते हैं कि उस शहर के सिवा जरमनी के और किसी दूसरे भाग के लोगों को जरमन भाषा नहीं आती। शायद शिक्षक महाशय को वह शहर प्रिय हो। मैंने कहा—

'पर हानोवर के लोग अवश्य ही सीधे-सीदे और भलेमानस हैं और उनका शहर भी बड़ा सुन्दर है।'

'वह ढोंगियों का अड्डा है। वहाँ के लोग ऐसे बातूनी होते हैं कि यदि उनकी इच्छा आपके गले पर छुरी चलाने की होगी तो बाहर से ऐसी मीठी जबान मे बोलेंगे कि आप उन पर विश्वास कर उन्हे अपने घर भोजन करने का निमन्त्रण देने के लिए तैयार हो जायँगे। मैं वहाँ के लोगों को भी जानता हूँ। वहाँ एक-से-एक बढ़-चढ़ कर ढोंगी और पाखण्डी पड़े हुए हैं। हाँ, सारे जरमनी में अगर कोई सुन्दर शहर

है तो वह है लुबेक, और वहाँ के रहने वाले मछुए भलेमानस हैं, ऐसा सुनने में आया है। पर यदि मैं आपसे अपने दिल की बात बताऊँ तो उनमे से भी जितनों को मैंने स्वयं अब तक देखा है, सब-के-सब हरामी ही मिले हैं और शहर का जो पोस्टकार्ड देखा है, उससे मैंने अपनी रद्दी की टोकरी की ही शोभा बढ़ाई है।'

अब तक जितने शहरों की बात की थी और उन पर जैसी खरी-खोटी शिक्षक महाशय के मुँह से सुनी थी उससे पता लग गया कि उन्हें कोई भी जरमन शहर पसन्द नहीं है और उनके सामने वहाँ के किसी भी शहर की सुन्दरता की चर्चा करना व्यर्थ है। अभी हम दोनों कुछ ही क्षण के लिए चुप रहे होंगे कि शिक्षक महाशय की स्त्री कमरे मे आई और हम लोगों को हँसते हुए खाने के कमरे में चलने के लिए कहा।

जैसा डेनमार्क में अक्सर देखने में आता है, मेज पर खाने-पीने का सामान काफ़ी तादाद में तथा भली भाँति सजा कर रखा गया था। हम लोग अभी जिस बात की चर्चा कर रहे थे, उसे शिक्षक महाशय अभी नहीं भूले थे। खाना आरम्भ करते-करते कहने लगे—

'और हम लोग जरमन लोगों की तरह दस दिन की रोटी भी नहीं खाया करते। कुछ दिन पहले हम लोगों के घर में जरमनी के दो विद्यार्थी ठहरे हुए थे। उन्होंने भी स्वीकार किया कि जैसा भोजन उन्होंने यहाँ पर किया वैसा उन्हें जीवन में और कभी नसीब नहीं हुआ था।'

'लेकिन हामबुर्ग की फ्रिकाडेले और फ्राकफुर्त की वुर्स्ट तो मशहूर हैं।'

'वे चीजें जरमन लोग कैसे बनाते हैं, यदि आपको यह बात मालूम हो जाय तो आप उन चीजों को जबान पर रखें तक नहीं।'

'हाँ, दरअसल यह तो मुझे नहीं मालूम कि वे किस प्रकार और किस चीज से उन पदार्थों को तैयार करते हैं।'

'पर मुझे मालूम है। घोड़े का मांस तो उनके लिए आरामतलबी

की अवस्था में खाने की वस्तु है। मरे हुए कुत्ते की खाल खींच डालते हैं और फिर उसे सुअर के नाम से बाजार मे वेचते हैं। उन्ही चीजों से वे चीजे तैयार की जाती हैं जिनका आप अभी नाम ले रहे थे।'

शिक्षक महाशय आगे बतलाने लगे—

'पर हमारे डेन्मार्क की बात ही दूसरी है। हमारे यहाँ खाने-पीने की कमी नहीं और न हमारे यहाँ के लोग ही वैसे ठग अथवा ढोंगी हैं। हम लोग सीधे-सादे आदमी हैं और अपना जीवन सादगी तथा सफाई के साथ बिताते हैं। आप यहाॅ और सफर कीजियेगा तो स्वय ही यह बात देखने को मिलेगी।'

इसके बाद बहुत देर तक डेन्मार्क के विषय मे चर्चा होती रही। जिस रास्ते से होकर मुझे जाना था उस पर देखने लायक स्थान अथवा चीजों का नाम शिक्षक महाशय बतलाते रहे और भोजन समाप्त कर जब हम लोग फिर उनके अतिथि-गृह मे आये तो वहाँ पर एक बडे नक्शे मे मेरा आगे का रास्ता दिखलाते रहे। जिन टापुओं से होकर मेरा रास्ता जाता था उन सभी में शिक्षक महाशय के कोई-न-कोई सम्बन्धी रहते थे। उन्होंने मुझे उनके पते लिख कर दिये और कहा कि मैं उनके यहाँ, जितने दिन चाहूॅ, ठहरता हुआ आगे जा सकता हूॅ। वहाँ से कोपेनहागेन तक का जो रास्ता सिर्फ दो दिनों मे साइकिल द्वारा बडी ही आसानी से तय किया जा सकता था, उसके लिए शिक्षक महाशय ने दस दिन का कार्यक्रम निर्धारित किया था। बार-बार तो डेन्मार्क में आना नहीं होगा और फिर शायद वहाँ के रहने वालो के रहन-सहन आदि का अध्ययन करने का और दूसरा मौका न मिले, यह सोच कर मैंने शिक्षक महाशय के ही निर्धारित कार्यक्रम पर चलना स्वीकार कर लिया। शिक्षक महाशय अपने सामने बिछे नक्शे पर और भी थोड़ी देर गौर से देखते रहे और फिर कहा—

'ऐसा क्यों न किया जाय ? कुछ सुन्दर स्थान आपके ठीक रास्ते पर तो नहीं, पर वहाँ से अधिक दूर भी नही हैं। मैं आपको उन स्थानों पर ठहरने के भी पते लिख देता हूँ। यदि आपकी इच्छा हो तो उन स्थानों को भी देखते जाइयेगा।'

इतना कह कर फिर मेरी नोटबुक में अनेकों 'हानसेन', 'पिटरसेन' और 'ऐंडरसेन' का पता लिखने लगे। सोने जाते समय उन्होंने मुझे यह भी राय दी कि दूसरे दिन सवेरे का जहाज न पकड़ूँ, बल्कि दोपहर के जहाज से चलूँ। उसी जहाज से उनकी कोई भतीजी भी किसी दूसरे टापू में जाने वाली थीं। मैंने उनकी राय मान ली।

एक सप्ताह तक डेनिश किसानों का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करता हुआ तथा उस देश के अनेक टापू भ्रमण करता हुआ वहाँ की राजधानी कोपेनहागेन जा पहुँचा। सोने का स्थान यहाँ भी मुझे सस्ता ही ढूँढ़ निकालना था, क्योंकि पास में पैसे बहुत थोड़े ही बच रहे थे।

एक सडक के किनारे दो-तीन ऐसे व्यक्ति दिखलाई दिये जिनके चेहरों से परिचित न रहने पर भी उनकी वेश-भूषा से अच्छी तरह परिचित था। अवस्था बीस वर्ष से ऊपर की रहने पर भी वे घुटने तक पैंट पहने थे और उसमे बेल्ट न लगा कर कन्धे से ऊपर जाने वाली पट्टी लगा रखी थी। कमीज में सामने की ओर एक भी बटन नहीं था और कालर इस प्रकार उलट लिया गया था कि छाती का ऊपरी भाग साफ-साफ दिखलाई देता था। पाँवों में मोजों के बिना ही उन्होंने जूते पहन रखे थे और जूतों के फीतों के स्थान पर सुतली बाँध ली थी।

उन्हे देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने उनके पास जाकर पूछा—

'यहाँ पर हेरबेरगर कहाँ पर है ?'

'चलो, हम भी वही जा रहे हैं।'

उसी वक्त से मेरी उन लोगों से जान-पहचान हो गई और उनका साथ डेन्मार्क से बिदा लेने पर ही छूटा। शहर के केन्द्र से थोड़ी ही दूर पर जरमनी के यूगेंड हेरबेरगर के ढंग का एक मकान था; उसीमे जाकर मैंने भी अपना डेरा डाला। दूसरे डेरा डालने वालों मे अधिकाश लोग जरमनी अथवा आस्ट्रिया के थे। बातचीत करने से मालूम हुआ कि उनमें से अधिकाश अपनी उस देश की यात्रा पूरी कर चुके थे और अब घर लौटना चाहते थे। इन युवकों की यात्रा भी ठीक मौसमी चिड़ियों-जैसी हुआ करती है। गरमी के दिनो में उत्तर की ओर सैर करने निकल जाया करते हैं और ज्यों ही सर्दी शुरू होने लगती है, दक्षिण की ओर लौट जाते हैं। ये अपनी यात्रा को 'पैदल यात्रा' के नाम से पुकारते हैं, पर सदा ही मोटर वालों के साथ मुफ्त में चला करते हैं! किसानो के घर टिक कर, अथवा जिन्हे कोई बाजा बजाना आता है वे अपनी टोली बना कर, गा-बजा कर कुछ कमा लिया करते हैं।

उत्तरी देशो मे इस प्रकार सैर करने वाले अधिकतर विद्यार्थी हुआ करते हैं अथवा ऐसे मजदूर युवक जिन्हे अपने देश में काम नहीं मिल पाता। यूगेंड हेरबेरगर में इकट्ठा होने पर उनकी बातें भी अक्सर अपनी यात्रा के ही सम्बन्ध मे हुआ करती हैं। सब अपने विषय में यही सिद्ध कर दिखलाना चाहते हैं कि कम-से-कम खर्च में अधिक से अधिक दूर की यात्रा उन्होंने ही की है। इन युवकों में सबसे अधिक मेरा ध्यान वियेना के एक विद्यार्थी हेरबेर्ट की ओर खिंचा। उसके स्वभाव मे बहुत-कुछ उस एमिल से समानता थी जिससे पेरिस आते समय रास्ते में परिचय हुआ था। पर अन्तर यह था कि हेरबेर्ट न तो एमिल के समान वैसी बकबक किया करता था और न उसकी बातें ही सदा औरतों के सम्बन्ध मे होती थीं। पर इनकी जगह उसमें कुछ

दूसरी ही सिफत थी। वह खाने-पीने की चर्चा बहुत अधिक किया करता था।

जिस समय मैंने उस हेरबेरगर में पहले-पहल प्रवेश किया, वह अपने सामने के टेबिल पर तीन बड़ी-बड़ी और काफी वजन की रोटियाँ तथा एक-चौथाई पौंड वनस्पति-घी रखे बैठा खा रहा था। मेरा ध्यान उसकी ओर इसलिए खास तौर से आकर्षित हुआ कि छुरी से रोटी काटने की उसे आवश्यकता नहीं पड़ती थी। वह दोनों हाथों से पूरी रोटी पकड़ दाँत से ही काट-काट कर निगल रहा था। मेरे देखते ही देखते वह एक पूरी रोटी इसी तरह खा गया और फिर दूसरी में हाथ लगाया। मैं वहाँ से जाने लगा। उसने मुझे रोकते हुए कहा—

'तुम क्या ठौरसेलिउस के यहाँ जा रहे हो? उसकी दूकान बहुत पहले ही बन्द हो चुकी है। आज न जाने क्यों उस बेहूदे ने अपनी दूकान आधा घण्टा पहले ही बन्द कर दी। इसीलिए तो मुझ पर ऐसी आफत आई हुई है।'

'कौन सा ठौरसेलिउस?' मैंने अचरज में आकर पूछा।

'फिर तुम खाते कहाँ हो?'

'मैं अभी-अभी यहाँ आया हूँ, और मुझे अभी भूख नहीं।'

'बड़ी ही नजाकत से पाले गये हो क्या! बडे ऊँचे दर्जे के सभ्य आदमी दीखते हो?'

मैं हँसता हुआ आगे बढ़ने लगा। उसने फिर से टोका—

'थोड़ी देर रुको। टहलने जाते हो? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। बस, यही रोटी खत्म कर लूँ। अभी सिर्फ दो से काम चल जायगा। और कभी ठौरसेलिउस बन्द रहा तो तीसरी उस समय के लिए रख छोड़ता हूँ।'

हम लोग टहलने निकले। मैंने पूछा—'तुम्हे कुछ मालूम है, यहाँ देखने के खास-ख़ास स्थान कौन से हैं ?'

'मुझे शहर मे ठौरसेलिउस की दूकान के सिवा कुछ नही मालूम।'

'और यहाँ बन्दरगाह किधर है ?'

'मुझे तो जहाज से सफर करना रहता नही। मेरे लिए उनका रहना न रहना एक ही बात है।'

थोड़ी दूर आगे चल कर उसने कहा—'अगर मेरी चलती तो इस शहर मे जितने बड़े मकान हैं और जहाँ केवल दफ्तर-ही-दफ़्तर हैं उनके सब कागज-पत्र समुद्र में फेंक देता और ठौरसेलिउस की दूकान वहाँ पर कायम कर देता।'

'आखिर यह ठौरसेलिउस है क्या बला ?'

'यहाँ आने पर तुम्हे सबसे पहले उसी का पता पूछना चाहिये था! कल दिन मे मैं स्वयं तुमको उसके यहाँ ले चलूँगा। पर यह खयाल रखना कि सबेरे उठ कर घर पर ही जलपान कर लेने की भूल न करना।'

'ऐसा क्यों ?'

'जलपान कर लेने पर फिर उतना डट कर खाना नहीं खाया जा सकता। उसकी दूकान ठीक एक बज कर सात मिनट पर खुलती है। उस समय तक किसी प्रकार भूख सहना। फिर उसके यहाँ खा लेने पर वह भोजन तुम्हारे लिए दूसरे दिन दोपहर तक के लिए काफी होगा।'

'यह कैसे ?'

'खुद देखोगे। उसके यहाँ टेबिल पर खाने की सभी तरह की चीज़ें रखी रहती हैं। चाहे जितना भी खाओ, अस्सी ओर (आठ आना) से अधिक नहीं देना पड़ेगा। मैं तो वहाँ लगातार दो घंटे से कम कभी खाता ही नहीं।'

अब मेरी समझ में आ गया कि वह ठौरसेलिउस पर इस तरह

क्यों फ़िदा था। जितनी देर हम लोग टहलते रहे, अधिकाश समय वह खाने-पीने की ही चर्चा करता रहा। अगर किसी दूकान की शीशेदार अलमारियों मे केक सजे-सजाये देखता तो कहने लगता—

'व्यर्थ ही ये चीजे अलमारियों मे सुखाई जाती हैं। ये चीजे हैं शरीर को पनपाने के लिए; पर लोग ऐसे पागल हैं कि इन चीजों की कदर तक नहीं जानते। अगर कोई मुझे दे दे तो दो दिन क्या, एक ही दिन मे सारी-की-सारी दूकान साफ कर दूँ।'

फिर, डेन्मार्क के किस किसान को उसने कितना खिलाया, इसकी चर्चा करता रहा। सिर्फ खाने की चर्चा सुनते-सुनते मेरा जी ऊब गया था। जब कभी मैं बातचीत का सिलसिला पलट कर किसी दूसरे विषय की चर्चा छेडता तो घूम-फिर कर वह फिर वही खाने-पीने की ही चर्चा करने लगता!

हम लोग इतनी बातें करते-करते एक पहाड़ी की चोटी पर पहुँच गये थे जहाँ से हमारे नीचे का सारा शहर साफ दिखलाई दे रहा था। हमारे ठीक नीचे एक बड़ी झील सी थी जो असल में समुद्र का पानी था। उसके किनारों पर कई छोटे-मोटे जहाज भी खडे थे। कुछ दूर पर काफी रोशनी की जगमगाहट दिखलाई दे रही थी। हेरबेर्ट से पूछने पर मालूम हुआ कि उस स्थान को लोग टिवोली कहा करते हैं। गरमी के दिनों मे वहाँ मेला सा लगा रहता है; पर वह उसे अब तक देखने नहीं गया था। पहले वह मेरे साथ वहाँ तक जाने में हिचक रहा था। पर बाद को यह सोच कर साथ हो लिया कि शायद वहाँ चलने पर खाने का कोई सुतार जम जाय।

'टिवोली' वास्तव मे एक मेला सा था। वहाँ पर आमोद-प्रमोद और खेल-कूद की काफी गुञ्जाइश थी। कृत्रिम लकड़ी की बनी पहाड़ी तथा उस पर चलने वाली रेल, घूमने का चक्का, हिंडोला आदि बहुतेरी

चीजे थी। ठीक फाटक से सामने देखने पर एक चबूतरा सा भी दिखलाई दिया जिसके ऊपर टँगे चँदोवे में रंग-बिरंग की रोशनी लगी थी और उसके नीचे लोग नाच रहे थे। उन स्थानों पर जाने के लिए टिकट खरीदने की आवश्यकता पड़ती थी, पर दरवान हम लोगों की वेश-भूषा देख कर मुस्कराया और उसने पूछा—

'डौयटश्मन ? (जरमन हो ?)'

हेरबेर्ट ने तुरंत उत्तर दिया—

'हाँ, जरमन, लेकिन 'इंगे-पेंगे' (पैसे नहीं)।' दरवान ने हम लोगों को बिना टिकट के ही भीतर घुस जाने दिया। हेरबेर्ट से मैंने पूछा—

'तुमने डेनिश कहाँ सीखी ?'

'सिर्फ दो शब्द आते हैं और उन्ही का मैं अक्सर उपयोग किया करता हूँ और वे दो शब्द हैं इंगे पेंगे (पैसे नहीं हैं) !'

जिस समय हम लोग अपने हेरबर्ग के लिए लौटे, सवेरा सा हो चला था। हेरबेर्ट के कथानानुसार हेरबर्ग का दरवाजा दस बजे ही बन्द हो जाया करता था और उससे अधिक देर कर हेरबेरगर मे डेरा डालने वालों के लिए लौटने की मनाही थी। पर वास्तव मे दस बजे ही लोग वहाँ से टहलने के लिए निकला करते थे और घर लौटने के लिए अहाते की एक दीवार के नीचे से उन्होंने रास्ता बहुत पहले ही बना रखा था।

हमें भी उस रास्ते से बड़ा फायदा हुआ। दीवार की जिस दरार से हमे घुसना था उसका मुँह गाड़ी के एक टूटे हुए पहिये से ढका था ! उसे ही हटा कर हम लोग भीतर घुसे और पहिये को ठीक उसके पहले के ही स्थान पर लगा दिया।

घर लौटने पर हम दोनों को भूख लग आई थी। मैं तो केवल एक सन्तरा खाकर लेट गया; पर जब तक मुझे नींद न आई, मेरी बगल के बिस्तरे से हेरबेर्ट के रोटी चबाने की आवाज़ आती रही !

मध्यरात्रि का सूर्य

कोपेहागेन में एक दिन शाम को टहलता हुआ मैं बन्दरगाह की ओर जा निकला। नौरवे का एक जहाज़ वहाँ पर ठहरा हुआ दिखलाई दिया। उसकी एक केबिन के पास रेलिग पर कुहनी टेके, मुँह मे बडा सिगार लगाये, उसका कप्तान खड़ा था। मेरा 'पास' आदि जाँच लेने पर उसने मुझे जहाज में काम देना स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन तड़के ही हम लोगों का जहाज़ खुला। हम लोग सीधे उत्तर की ओर चले। मेरा काम समुद्र-यात्रा के समय केबिनों की सफ़ाई तथा उनकी देख-भाल करते रहना था। काम बहुत हलका था। जब किसी बन्दर में जहाज़ ठहरता तब दूसरे यात्रियों की तरह मै भी शहर देखने चला जाता। वे शहर यूरोप के और शहरों की ही भाँति थे। बेर्गेन, ट्रौंडहाइम आदि नौरवे के दो-तीन शहरों को छोड़ कर और किसी मे कोई विशेष सौन्दर्य भी नहीं दिखलाई दिया।

पर जिस रास्ते से होकर हमारा जहाज़ गुज़र रहा था वह अवश्य ही बड़े मार्के का तथा अत्यन्त रमणीक था। ऐटलांटिक सागर की ओर के नौरवे के तट पर लगभग डेढ लाख छोटे छोटे टापू हैं। इन टापुओं की आड़ रहने के कारण, जिस समुद्री रास्ते से हम जा रहे थे

वहाँ पर लहरे नही के ही बराबर थी। ऐसा मालूम पडता था जैसे हम किसी झील में ही सफर कर रहे हो।

पश्चिमी नौरवे-तट की दूसरी विशेषता वहाँ के 'फ्योर्ड' थे। समुद्र का पानी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों को चीर कर किसी-किसी स्थान पर तो साठ-साठ सत्तर-सत्तर मील दूर तक चला गया है। ऐसा प्राकृतिक सौन्दर्य ससार के और किसी भी दूसरे देश मे देखने को नहीं मिलता। कितने ही पहाडो की चोटियाँ बरफ से ढकी होती हैं और वहाँ से बड़े-बड़े झरने झरते हैं। पर उन्ही पहाड़ों की तराई मे फलो के वृक्ष, हरियाली, किसानों के घर आदि भी दिखलाई देते हैं। जहाँ तक दृष्टि जाती है ऊँचे-ऊँचे पहाड़ ही नजर आते हैं। सागर और पहाड़ों का इस तरह हृदय से हृदय मिलाना बड़ा ही मनोहर तथा आकर्षक है।

उत्तरी नौरवे का सौन्दर्य एक और दृष्टि से भी विशेष मार्के का था। वहाँ पर गरमी के दिनों मे कई महीने तक सूरज डूबता ही नहीं! सबसे उत्तरी छोर से अन्तरीप का सौन्दर्य, जहाँ के पत्थर सर ऊँचा किये हुए आधी रात को सुनहली धूप मे उत्तरी ध्रुव के समुद्र की विशालता की ओर झाँकते हैं, और भी अधिक मनोरम एव दर्शनीय होता है।

और भी उत्तर जाने पर हम लोगों का जहाज स्पित्‌चर्वेगेन नामक टापू में पहुँचा। लाखों वर्ष पूर्व इस स्थान पर भी वैसी ही हरियाली तथा वैसे ही वृक्ष होते थे जैसे भूमध्यरेखा के पास के देशो मे अभी पाये जाते हैं। पर आजकल इस टापू में ग्लेशियर ही ग्लेशियर हैं।

हम लोगों का जहाज उत्तरी ध्रुवरेखा (पोलर जोन) आरम्भ हो जाने पर भी आगे बढ़ता ही जा रहा था। पर हम बहुत अधिक उत्तर नही जा सकते थे। आगे समुद्र का पानी बरफ के रूप में जमा हुआ था और बरफ की तह भी काफ़ी मोटी थी। कुछ दूर तक तो हमारा

जहाज बरफ को तोड़ता हुआ आगे बढ़ा, पर बाद को अचानक अटक गया।

कई घण्टे तक हम लोग उसी तरह बरफ में अटके रहे। इसके बाद एक आइस-ब्रेकर (बरफ तोड़ने वाले जहाज) ने आकर वहाँ से हमें निकाला।

जहाज के निरापद स्थान पर लौट आने पर कुछ यात्री, जो कुछ घण्टे पहले बहुत डर गये थे, अब कहने लगे—

'अगर मेरी चलती, अगर जहाज मेरा होता, तो और कुछ दिन वहीं पर रुका रह जाता।'

जिस रास्ते से हम लोगों का जहाज गया था उसी रास्ते वह फिर लौटने वाला था। मुझे यह पसन्द नहीं था। किरकेनेस नामक नगर में जहाज के लगने पर मैं कुछ यात्रियो के साथ मोटर द्वारा फिनलैंड चला गया और वहाँ से स्वेडेन आया।

मैं आशा-भरे क़दम रखता हुआ आगे बढता जा रहा था। मालूम नहीं ऐसी स्फूर्ति और ऐसा आनन्द एक-ब-एक मेरे भीतर कहाँ से उमड़ा आ रहा था। उस समय मुझे अपने सामने कोई भी ऐसी विरोधी शक्ति नही दीखती थी जो मेरे भीतर के उस आनन्द-स्रोत को बाँध सकती थी।

कई स्थानो पर सोने के स्थान के सम्बन्ध में दरियाफ़्त करने के बाद लोगो के इनकार कर देने पर भी मेरे उत्साह में रत्ती-भर भी कमी नहीं हुई। रास्ता ढालुआँ होता जा रहा था। आगे क्या था, इसका मुझे पता नहीं था, पर मैं उस ओर आगे बढ़ता चला जा रहा था।

एक-ब-एक बडे जोरों की हवा चलने लगी। आकाश मे बूँदें भी

पड़ने लगी। रास्ता चलने वाले सर नीचा कर उस हवा का सामना करते हुए आगे बढ़ते जाते थे। उनके चेहरों से व्यक्त हो रहा था कि वे उस हवा से त्रस्त हैं।

इस प्रकार आगे बढ़ते-बढ़ते मैं एक झील के किनारे निकल आया। झील के जिस किनारे खड़ा था उसके सिवा दूसरा और कोई भी किनारा नहीं दीखता था। इसी किनारे पर कई पाल वाली नावें लगी थी। स्वेडिश भाषा न जानने पर भी उन नावों के कई माझियों से इशारे द्वारा बातें की और उनमें से एक ने अपनी नाव मे टिकने का स्थान भी दे दिया।

नाव की केबिन में प्रवेश किया। वहाँ पर ठीक मेरे सर के पास एक छोटी सी खिडकी थी। मैंने उसे खोल दिया। बाहर कुछ दिखलाई नहीं पड़ता था, पर पानी बरसने तथा झील मे बूँदे गिरने की आवाज आ रही थी।

थोड़ी देर में ही खिड़की से भीतर आने वाली छोटी-छोटी बूँदों से मेरा मुँह भीग गया। उस समय उस भीगने में भी एक विशेष प्रकार का आनन्द आ रहा था। मैंने मुँह पोंछने का प्रयत्न भी नहीं किया और वैसे ही लेटे-लेटे मुझे थोड़ी देर में ही नींद भी आ गई।

जिस समय मेरी नींद टूटी, नीचे के 'बर्थ' पर सोये दोनों माझी जोरों से खर्राटे ले रहे थे। बाहर अभी आधी रात का सूर्य दिखलाई दे रहा था। अपनी खिड़की से झाँक कर बाहर का दृश्य देखना उस सौंदर्य को सकीर्ण बनाना सा लगा।

मैं केबिन से बाहर निकल उस नाव की पतवार पर जा बैठा। आकाश स्वच्छ था तथा हवा भी मन्द-मन्द चल रही थी। मेरी आँखों

के सामने सुनहले कुहासे में तैरती हुई वह विशाल झील थी। मन में अनायास ही आने लगा—

'अब तक इस अगाध सागर में गोते न लगा कर केवल एक बूँद के लिए मैं क्यों लालायित था ? क्या उस बूँद से मेरी तृप्ति हो सकती थी ? मैं जिस सौन्दर्य के पीछे दौड़ता था उसकी अपेक्षा यह सुन्दरता क्या करोड़ गुनी अधिक सुन्दर नहीं है ?'

मैं हाथ फैला उठ खड़ा हुआ। दूसरे ही क्षण नाव से नीचे कूद झील के पानी मे तैरने लगा। किस ओर जा रहा हूँ, यह पता नहीं था। और, चाहे जिस ओर ही क्यों न जाता होऊँ, मेरे लिए सब बराबर था। मेरे आनन्द तथा उत्साह की कोई दिशा नहीं थी।

जिस समय पानी से निकल कर पुनः नाव पर आया, भीतरी तथा बाहरी सभी दृष्टियों से अपने को स्वतन्त्र पा रहा था। अपने-आपसे स्वतन्त्रता पा ली थी। स्वतन्त्र हवा में जी भर कर साँस लेने लगा था।

मेरा चेहरा आनन्द से परिपूर्ण हो खिल रहा था। बिना किसी कारण पर विचार किये, बिना किसी आधार के, हृदय बहुत ही प्रसन्न था। उसकी प्रसन्नता का कारण पूछना उस पर अन्याय करना होता। इस अकेलेपन में स्वतन्त्रता और आनन्द था। सब बन्धनों से मुक्त हो जाना, घृणा तथा प्यार के आवेग से भी अपने को दूर कर लेना—इससे सुन्दर दूसरा और कौन सा समय हो सकता है ? किसी का दास बन कर नहीं, बल्कि अपने-आपका स्वामी बन कर रहने में कितना आनन्द है ? उस समय मैं किसी गाड़ी के पीछे बँधा घसीटा नहीं जा रहा था, बल्कि उस गाड़ी के हाँकने वाले के स्थान पर बैठा अपनी इच्छा से उसकी दिशा निर्धारित करता जा रहा था।

माझियों के उठ जाने पर मैंने उनके साथ ही जलपान किया। उनकी नाव खुलने का समय आया तो मैंने उनके साथ चलने की इच्छा प्रकट की; इसे उन्होंने हँसते हुए स्वीकार कर लिया। हम पाल तान कर आगे बढ़े।

जिस झील में हमारी नाव चल रही थी उसका नाम था 'वेतर्नसे'। स्वेडेन के नक्शे पर दृष्टिपात करने पर यह झील ठीक उसके हृदयस्थल पर दिखलाई देगी। वास्तव मे यह उसका हृदय ही है। झील प्रायः दो सौ मील लम्बी है। उसके किनारे पर बसे कई बड़े ही सुन्दर नगर हैं। पाल वाली छोटी-छोटी नावें, जिनमे अक्सर एक छोटी मोटर भी लगी होती है, इन शहरों के बीच माल ले जाने, ले आने का काम किया करती है।

मैं उस नाव पर पाँच दिन रहा। मेरा काम माझियों को भोजन पकाने, पाल चढ़ाने-उतारने तथा माल लादने, खाली करने में मदद देना था। यह काम कुछ कठिन नहीं था।

नाव के सबसे अग्र-भाग पर, जहाँ रस्सा बाँधने के लिए एक लोहे का खूँटा सा गड़ा था, जा बैठने और सपने देखने के लिए काफी समय मिल जाया करता था। जिन शहरों में नाव लगती उन्हे देखने अवश्य ही जाता।

पर सदा इस प्रकार से आगे बढ़ते जाना भी असम्भव था। उस झील के सबसे दक्षिणी किनारे पर पहुँच जाने पर हमारी नाव फिर से उत्तर की ओर लौटने वाली थी। जिस रास्ते से आया था, फिर से उधर लौटने का जी नहीं चाहता था।

लिन्चोपिग नामक शहर में पहुँचते-पहुँचते अपने भीतर से पुराने संसार की, जिसे पिछले पाँच दिनों में बहुत-कुछ भुला सा दिया था, फिर से धीमी—पर स्पष्ट—सुनाई देने वाली आवाज आने लगी थी।

उस शहर मे नाव लगते-लगते भी यही खयाल था कि अभी उस नाव पर और कुछ दिन बिताना निश्चित है; इसीलिए अपना सामान वहाँ छोड़ कर ही शहर देखने गया था। शहर की चहल-पहल में भी कोई ऐसी विशेषता नहीं दिखलाई दी जिसके कारण वहाँ रुकने की इच्छा होती। पर उस शहर से नाव के खुलते ही, मालूम नहीं क्यों, वहाँ उतर पड़ने की इच्छा हृदय में जोर मारने लगी। शहर की जैसी चहल-पहल देखी थी उसे और एक बार देख लेने की सहसा तीव्र इच्छा हो उठी। मैं तुरन्त अपना सामान पीठ पर लटका नाव से उतरने के लिए तैयार हो गया। माझियो ने भी नाव किनारे लगा दी। वह पूरी तरह से रुक भी न पाई थी कि उस पर से किनारे जा कूदा और नाव तथा माझियों से हाथ हिला कर बिदा ले डाली।

वास्तव में यह बिदा केवल नाव तथा उसके माझियों से ही नहीं, बल्कि उस जीवन से ली थी जिसका पिछले कई सप्ताह में अभ्यस्त सा हो चुका था।

जमीन पर पाँव रखते ही फिर से उन्हीं प्रेम तथा घृणा के भावों में गोते लगाने लगा।

अब अपने-आपको केवल यह कह कर सन्तोष दे रहा था कि कम-से-कम कुछ समय के लिए, चाहे वह काल थोड़ा ही क्यों न हो, उनसे छुटकारा तो ले लिया था; यह अवश्य ही भविष्य के कुछ काल के लिए पर्याप्त होगा।

चतुर्थ खण्ड

माँ की याद

स्कैंडिनेविया में बिताये दिनों की बार-बार याद करता हुआ बर्लिन की भूमि पर पाँव रखा।

जिस समय स्टेशन से बाहर निकला, सड़क पर घना कुहासा छाया हुआ था। रास्तों पर जलने वाली बिजली की बत्तियाँ समुद्र-किनारे की बहुत दूर से दिखलाई देने वाली लाइट-हाउस की बत्तियों-जैसी धुँधली तथा कान्तिहीन दिखाई देती थी। उस समय खाली एक कमीज पहने रहने के कारण सर्दी भी लग रही थी। मैं फुटपाथ पर चलते-चलते ट्राम ठहरने के स्थान पर जा निकला। तुरन्त ही एक तरफ से सीटी देती हुई तथा अपनी दोनों आँखें बिलकुल बाहर निकाले, कुहासे के अन्धकार को चीरती तथा सड़क पार करने वालों को दोनों ओर हटाती हुई एक ट्राम ठीक मेरे सामने आ खड़ी हुई। ट्राम का पिछला डब्बा बिलकुल खाली था। मैं उसी में जा बैठा और ट्राम के चल देने पर कंडक्टर से उस सड़क का टिकट माँगा जहाँ कि मुझे जाना था।

कण्डक्टर अपना चेहरा गम्भीर बनाये थोड़ी देर विचार करता रहा और फिर मेरी ओर देख मुसकराता हुआ, पर जरूरत से ज्यादा जोर

से बोलता हुआ तथा मुझे समझाने की चेष्टा में भाषा की जान-बूझ कर टाँग तोड़ता हुआ, बोला—

'यदि आप जमीन के नीचे चलने वाली रेल से जाते तो आपके लिये सुभीता होता। खैर, जहाँ पर इस ट्राम से उतर कर उस रेल में जाने का रास्ता नजदीक आयगा, मैं आपसे कहूँगा।'

उस कण्डक्टर का मन भी मुसाफिरों के न चढते-उतरते रहने के कारण उचाट सा हो रहा था, और इसीलिये मुझसे बड़ी दिलचस्पी से भारत के सम्बन्ध मे बातें करता रहा। वह अब तक यही समझे बैठा था कि भारतवर्ष मे केवल बाघ तथा हाथी ही रहा करते हैं। वहाँ के बाशिन्दे भी वहशियों की तरह के ही होते होंगे—ऐसा उसका अनुमान था।

जमीन के नीचे चलने वाली रेल का स्टेशन नजदीक आने पर उसने रास्ता बतलाया। मैंने केवल सर हिला दिया था, इससे उसने समझा कि शायद मैं उसकी बात नही समझ रहा हूँ; इसलिये वही बात और भी तीन-चार बार दुहराई और जब तक कि मैं जमीन के नीचे जाने वाली सीढ़ियो के पास, जो वहाँ से कुछ ही क़दम के फासले पर थी, न पहुँच गया, वह बार-बार उधर इशारा करता तथा चिल्ला-चिल्ला कर 'दायें, और भी दायें' कहता रहा।

'अंडरग्राउंड' स्टेशन में ऊपर की अपेक्षा अधिक उजाला था। वहाँ भी गाड़ी की झंडी दिखलाने वाले ने जिधर मेरी गाड़ी लगने वाली थी वह दिशा दिखलाई तथा 'तीसरी' कहा। तीसरी गाडी मे सवार होकर मैं अपने निश्चित स्थान पर पहुँच गया। हान्स का घर ढूँढ लेने में मुझे अधिक समय न लगा।

उस मकान के चौमंज़िले पर जाने वाली सीढ़ियों पर चढ़ते समय मेरे दिल मे धड़कन सी होने लगी थी। हान्स के साथ जिस प्रकार

यात्रा की थी, जो-जो घटनाएँ घटी थी, वे सभी एक बार ही आँखों के सामने नाच गई।

जिस समय मैंने उसके घर के दरवाजे की घंटी बजाई, रात के ग्यारह बजे होंगे। भीतर कोई रोशनी नही थी, सिर्फ़ सीढ़ी पर की रोशनी जल रही थी। जब थोड़ी देर तक भीतर से कोई दरवाजा खोलता हुआ दिखलाई नहीं दिया तो घंटी और भी एक बार बजाई, पर फिर भी सन्नाटा ही छाया रहा। नीचे की ओर जाने के लिये सीढ़ी पर पाँव रखना ही चाहता था कि भीतर एक रोशनी हुई और एक महिला ने आकर दरवाजा खोला। मुझे देखते ही उन्होंने दरवाजा और भी अधिक खोल दिया और खुद एक ओर हटती हुई बोली—

'आइये।'

उनके मुँह से ये शब्द इस प्रकार निकले मानो हम दोनों बहुत दिनों से परिचित हों। दूसरे ही क्षण मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब उन्होंने कहा—

'हृदय से स्वागत !'

मुझे आश्चर्य-चकित देख कर उन्होंने अपना हाथ आगे बढाते हुए कहा—

'मैं हान्स की माँ हूँ। तुम भी मेरे पुत्र ही हो।'

बैठक वाले कमरे मे पहुँचने पर उन्होंने मुझे एक सोफे पर बैठ जाने के लिये कहा और स्वयं मेरे लिये खाना लाने के लिये चलीं। मैंने उन्हे टोकते हुए पूछा—

'लेकिन हान्स कहाँ है ?'

'हान्स परसों तक तुम्हारा इन्तजार करता रहा ; जब कोई समाचार नही मिला तो अकेले हाइडिलबेर्ग लौट गया।'

यह समाचार सुन कर मैं थोड़ा निराश अवश्य हुआ और उस

निराशा की झलक अपने चेहरे पर आने देने से भी अपने को नहीं रोक सका। उन्होंने यह परख लिया और कहने लगीं—

'घबराओ नहीं, यहाँ हान्स के न रहने पर भी तुम्हे कोई तकलीफ नहीं होगी। यहाॅ आने के पहले भी वह अपने पत्र मे तुम्हारा जिक्र कर चुका था और जब यहाॅ था तब तो प्रायः ही तुम्हारी चर्चा किया करता था।'

इतना कह कर वे रसोई-घर मे चली गई। थोड़ी देर में ही घी में कुछ तले जाने की छुनमुन और चम्मच की खटपट सुनाई पडने लगी और सोंधी-सोंधी सुगन्ध भी आने लगी। मैं उस बैठक की सजावट देखने लगा। कमरा छोटा था, पर चारों ओर की दीवारों पर बड़े-बडे तथा बहुत से चित्र टॅगे थे। उन चित्रों में कई ऐसे थे जिन पर चित्रकार की अन्तिम कूॅची नही फिर पाई थी। बालकोन की खिड़की के पास एक तीन टाँग वाले फ्रेम पर भी एक चित्र टॅगा था और उसके पास ही रंग तथा कूॅची रखी थी। वह चित्र अभी आरम्भ ही किया गया था, पर उसकी रेखाओं से मेरे लिए यह पहचानना कठिन नहीं था कि वह हान्स की पोर्ट्रेट खींची जा रही थी। अभी जिस रूप में लकीरें थी वे असली चीज से बहुत कम मिलती-जुलती थी। स्पष्ट दीखता था कि हान्स जैसा-कुछ है वैसा ही उसे चित्रकार नहीं रहने देना चाहता, बल्कि स्वयं उसमें जो भाव देखा करता है उन्हे व्यक्त करना चाहता है। दीवार पर टॅगे दूसरे चित्रों के लिये भी यही बात लागू होती थी।

थोड़ी देर में जब हान्स की माँ कुछ खाने की चीजें लिये फिर उस कमरे में आई तो मुझे उन चित्रों की ओर ताकते हुए देख बोलीं—

'हान्स के पिता चित्रकार हैं। बहुत दिनो से बेकार थे, पर इधर दो सप्ताह से एक दूकान सजाने का काम मिल गया है।'

मैं खाने बैठा तब भी वे मेरे सामने की कुर्सी पर आ बैठीं और हान्स तथा उसके पिता के विषय मे चर्चा करती रही। मैं बीच-बीच में सिर्फ 'हूँ, हूँ' करता जाता था। मुझे ऐसी भूख लगी थी कि उस परिवार से परिचित-अपरिचित होने का ख्याल बिलकुल भूल कर सामने की चीजें निधड़क और निःसकोच बिना चबाये पेट में डालता जाता था। जब सर उठा कर देखा तो समझ पड़ा कि हान्स की माँ के चेहरे पर भी प्रसन्नता झलक रही थी। भोजन जल्दी मे तैयार किया गया था, फिर भी खाना जायकेदार और काफी था। अपने पुत्र को खिलाते समय माँ के चेहरे पर सन्तोष का सा भाव आने लगता है। हान्स की माँ के चेहरे पर भी वैसा ही भाव छाता जा रहा था। उन्होंने कहा भी—

'मेरे पास रहोगे तो फिर तुम्हें ऐसा दुबला नहीं रहने दूँगी।'

जिस सोफे पर मैं बैठा था उसी पर मेरा बिछौना रख दिया गया। सोने जाने के पहले हान्स की माँ ने मेरे दोनों हाथ अपने हाथ मे ले 'गुडनाइट! भली भाँति सोओ' कहा और वहाँ से चली गईं। जाने के पहले उन्होंने दो-तीन बार यह जाँच कर देख लिया कि मेरा बिस्तर नरम तथा गरम है अथवा नहीं; तकिये पर भी दृष्टि डाल कर देखा कि वह कहीं बिलकुल नीचा अथवा अधिक ऊँचा तो नहीं है।

कमरे में जब काफी धूप आने लगी थी उस समय मेरी नींद टूटी। बगल के बरामदे से किसी के चलने-फिरने की आवाज आ रही थी। झटपट कपडे पहन कर मैंने दरवाजा खोला। हान्स की माँ अपने हाथ में दो-तीन जाली वाले तथा एक चमडे का झोला लिये अभी-अभी बाजार जाने वाली थी। मुझे कमरे से निकलता हुआ देख कर रुक गईं और बोलीं—

'गुडमौर्निङ्ग ! अच्छी नीद तो आई न ? हान्स के पिता तडके उठ कर काम पर चले जाया करते हैं, पर उन्होने कहा है कि वे खुद तुम्हे बर्लिन दिखलायेंगे। मुझे भी सवेरे उठ जाने की आदत है। आशा है, तुम्हारी नीद में कोई वाधा न पड़ी होगी।'

'नही, नही, मुझे काफ़ी अच्छी नीद आई।' मैंने अँगड़ाई लेते हुए कहा।

'तुम्हारा जलपान तैयार है, अभी दूँ ?'

हाथ-मुँह धो कर जलपान करने बैठा। उस समय भी वे कल की तरह ही मेरे सामने की कुर्सी पर बैठी रही और मेरे माता-पिता हैं अथवा नही, कितने दिनों से उन्हे नहीं देखा, विदेश आये कितने दिन हुए, हान्स से कैसे परिचय हुआ, हान्स कैसा लडका है—आदि चर्चा करती रहीं।

जलपान कर चुकने पर बाजार से साग-भाजी खरीदने मैं भी उनके साथ चला। उनके हाथ के झोले अपने हाथों में ले लेने पर काशी के दशाश्वमेध-घाट की मुझे बार-बार याद आने लगी, जहाँ अक्सर वैसे ही झोले ले जाकर साग-भाजी खरीद लाया करता था।

बाजार भी वास्तव में दशाश्वमेध-घाट के बाजार से बिलकुल मिलता-जुलता था। यहाँ भी वैसा ही शोर-गुल मचा हुआ था। हाँ, यहाँ कुछ ऐसी चीजें जरूर बिक रही थी जो बनारस में नही बिका करतीं।

जहाँ बाजार लगा था वहाँ एक तङ्ग रास्ते से पहुँचने पर चारों ओर से कानों मे आवाजे आने लगीं।

'सेब, खाने के सेब, पकाने के सेब, पीले कुम्हडे, लाल मूली, सुन्दर गाजर, फूल-गोभी, बँधी-गोभी, सतालू, सस्ते आलू, सालात—पचीस फेनिग मे आधा सेर ! पचीस फेनिग ! इससे सस्ता और कभी नहीं

मिलने का। सब चीजें चुनी हुई। दुनिया-भर मे सबसे सुन्दर और सस्ती। सिर्फ पचीस फेनिग।'

दूकानों मे बैठे हुए दूकानदार भी अपने सामने रखी चीजो के ढेर मे भली भॉति फबते थे। एक जगह गोभियों का ढेर लगा था, जिसके ऊपर सबसे बड़ी गोभी रखी थी। उसके सामने ही उस बड़ी गोभी-जैसे बड़े सर वाला दूकानदार बैठा था। जिस समय गोभियों को उलट-पुलट कर वह अपने ग्राहकों को दिखलाने लगता, उस समय जब उस गोभी के बिखरे हुए पत्ते ऊपर हो जाते तो उसका आकार ठीक बेचने वाले के सर और उसके बालों-जैसा दीखने लगता था।

प्याज, टमाटर तथा गहरे लाल रग के सेबों के बीच भरे हुए गालों वाली एक लड़की बैठी हुई थी जिसके गाल उसके सामने रखी चीजों से कम लाल नही थे। उसे दूसरों के समान चिल्लाने की बहुत कम ही फुर्सत मिल पाती थी। वह हाथ मे सेब लेती और अपने कन्धे पर के कपडे से पोंछ कर खाने लगती। उसे अपनी चीजों के बेचने की इतनी फिक्र नही थी, जितनी इस बात के देखने की कि आखिर उसकी ओर कितने लोगों का ध्यान आकर्षित हो रहा है और उन लोगों मे उसके जाल में फॅस जाने वाले कितने हैं। यदि उसकी दूकान के सामने कोई जा खड़ा होता तो उस समय मुँह भरा रहने के कारण उसके मुँह से स्पष्ट बोली नही निकल पाती और ऐसा लगता मानो वह कह रही हो—

'लाल शेर की कीमत पचास फेनिंग।'

सचमुच ही यदि उसे अपने आसपास कोई ऐसा युवक दिखलाई देता जो उसकी ओर एकटक देखता होता तो उसके चेहरे की लाली और भी गहरी हो जाती, पर ऐसा हाव-भाव दिखलाती मानो उसका उस ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं है। पर असल में उस आदमी की

एक भी हरकत उसकी आँखों से नही बच पाती थी। ऐसे मौक़े पर यदि सयोग से उस आदमी से चार आँखें हो जाती तो चिल्ला-चिल्ला कर दूसरे दूकानदारों की लय में लय मिला कर कहने लगती—

'टमाटर चालिस फ़ेनिग, सुन्दर सेब पचास फेनिग, सस्ते प्याज पन्द्रह फेनिंग।'

हान्स की माँ एक दूकान पर कुछ ख़रीदने के लिए रुक गई थीं। मैं वहाँ से ही उस सेब वेचने वाली की सभी हरकतें देख रहा था। मुझे उधर एकटक ताकते देख हान्स की माँ ने कहा—

'चलो, उस दूकान से थोड़े फल खरीद लें।'

इस प्रकार सौदा ख़रीद कर हम लोग घर लौटे। बाजार जाते समय ही रास्ते में उन्होंने मुझसे पूछा था कि सबसे अधिक मैं कौन सी चीज खाना पसन्द करता हूँ और निश्चय किया था कि चावल-भरे टमाटर बनायेंगी। घर लौट आने पर उन्हे याद आई कि हम लोग टमाटर खरीदना बिलकुल ही भूल गये। वे तुरन्त खुद बाजार जाना चाहती थीं, पर मैंने कहा, मैं भी ख़रीद ला सकता हूँ। उन्हे पूरा-पूरा विश्वास नहीं हुआ, इसलिए दुहरा-तिहरा कर कहने लगीं—

'मैं टमाटर हमेशा एक किसान की लड़की की दूकान से ख़रीदा करती हूँ। वह तुम्हे मिलेगी?'

'क्यों नहीं? ढूँढ लूँगा। वही न जिसके यहाँ सेब खरीदा था?'

'हाँ! पर उतने बड़े बाजार में उसकी दूकान तुम ढूँढ पाओगे! वह मिठाई वेचने वाले की बगल में है और उसके आगे की ओर की दूकान सूखे फल, मक्खन तथा अण्डे वेचने वाली की है।'

'मुझे मालूम है, मालूम है।' कहता हुआ मैं सीढ़ियों के नीचे उतरता हुआ चला गया।

इसी प्रकार कई दिन बीत गये। हान्स के पिता के साथ बर्लिन देखा, वहाँ के चिड़ियाखाने तथा कई बड़े-बड़े काफे-घर देखे। दो-तीन बार सिनेमा भी देखने गया। मैं उस परिवार के स्नेह-भार से दबा जाने लगा। मेरी खातिरदारी मे उन्होने कोई बात उठा नही रखी।

एक दिन सबेरे नित्य की भाँति हाथ-मुँह धोकर अपने कमरे में लौटा तो देखा कि मेज पर एक बहुत बड़ा केक रखा है और उसके चारों ओर चौबीस मोमबत्तियाँ जल रही हैं। केक के बीच मे चीनी की बनी एक छोटी सी मूर्ति रखी गई थी जिसके हाथ मे एक धनुष सा था और जो ग्रीस की किवदन्ती के आमूर की सी शक्ल का था। अभी मैं उसका कुछ मतलब नही समझ पाया था कि इसी समय उस परिवार के माता-पिता आये और मेरा हाथ कस कर दबाते हुए उन्होने मेरी वर्षगाँठ के उपलक्ष में मुझे बधाई दी।

जीवन मे यह सबसे पहला अवसर था जब मेरी वर्षगाँठ मनाई गई थी। मेरे पास जो पासपोर्ट था उसके अनुसार सचमुच ही उस दिन मेरी वर्षगाँठ पड़ती थी, पर यह बात मुझे खुद ही याद नही थी। हान्स से मैने बातचीत के सिलसिले मे ही कभी यह कह डाला था और उसी के द्वारा उन लोगों को भी मेरे जन्मदिन का पता लग गया था। यों ही उनकी खातिरदारी तथा स्नेह-भार से मैं दबा जा रहा था ; उस वर्षगाँठ मनाये जाने के बाद से तो मुझे यह सूझ ही नहीं पड रहा था कि आखिर मैं अपनी कृतज्ञता उनके सामने किस प्रकार प्रकट करूँ। मैं अपने-आपको उनके उतने अधिक स्नेह का पात्र नहीं समझता था। विदेश मे हूँ, यह बात उन दिनों बिलकुल ही भूल चुका था। अपने भीतर किसी प्रकार का भी अभाव नहीं पाता था।

मेरी हाइडिलबेर्ग की परिचित केटी भी उन दिनों बर्लिन में ही थी।

रोज याद करने पर भी अब तक उसे टेलीफोन नहीं कर पाया था। हान्स के पिता से पूछने पर मालूम हुआ था कि वह स्थान जिसका मैंने नाम लिया था वहाँ से दूर था और कई बार गाड़ी बदलनी पड़ती थी। मेरे जन्मदिन की बात उसे भी मालूम थी। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि वह अवश्य ही मुझे बधाई देने के लिये उत्सुक होगी, यह मेरी ही भूल है कि अब तक उसे अपना पता नहीं बतलाया।

उसी दिन दोपहर के बाद अकेला शहर देखने चला। एक पोस्ट-आफिस में जाकर केटी के दिये नम्बर पर टेलीफोन किया। उधर से एक स्त्री की आवाज आई—

'आप किसे चाहते हैं?'

'केटी, केटी··· शुल्च, फ्राडलाइन केटी शुल्च को।'

'आप हैं कौन?'

'हम दोनों पुराने परिचित हैं।'

'धन्यवाद! आप उसको कोई सन्देशा देना चाहते हैं?'

'नहीं! मैं एक घण्टे के भीतर स्वय वहाँ आता हूँ।'

जिस घर में मैंने प्रवेश किया वह एक पेन्सियोन था। पेन्सियोन की मालकिन ने मुझे एक सजे-सजाये कमरे में बैठने के लिए कहा। उस कमरे में एक प्रौढा स्त्री पहले से ही बैठी थी। उसने स्वयं बातें करना आरम्भ किया—

'आप कुमारी शुल्च के दोस्त हैं?'

'जी हाँ! हम लोगों का परिचय हाइडिलबेर्ग में हुआ था।'

'क्या आप यह आशा रखते हैं कि आगे चल कर उससे आप शादी करेंगे?'

उस औरत के शब्दों में रुखाई भरी थी; पर उसका खयाल न करते हुए मैंने कहा—

'परिचय का मतलब शादी करना थोड़े ही हुआ करता है ?'

'तो आप उसके साथ धोखेबाजी करेंगे ?'

'धोखेबाजी ! यह बात तो कभी सपने में भी मेरे मन में नही आई।'

'यह मन में नहीं आई, फिर भी आपने उस लड़की का जीवन बिगाड़ दिया है।'

'मैंने ?'

'अब मैं आपको एक बार देख लेने पर पूरे विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि आपने ही, और किसी दूसरे ने नहीं, केवल आपने ही अकेले उस लड़की का सारा जीवन खराब कर दिया है।'

मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो मेरे पाँव के नीचे की धरती खिसकती जा रही है। मैंने पूछा—

'यह कैसे ?'

'आप यहाँ विदेशी हैं, आपको अपनी ज़िम्मेदारी समझनी चाहिये थी; पर उसके बदले आप······'

मैं समझ गया था कि इस बार यह पहले से कहीं ज़्यादा अपने मुँह से ज़हर उगलने जा रही है, इसलिए बीच में ही बात काटते हुए मैंने कहा—

'लेकिन एक बार आप केटी, केटी फ्राडलाइन शुल्च से ही क्यों नही पूछ देखती ? मैं सदा उन्हें आदर की दृष्टि से देखता आया हूँ, और अब भी देखता हूँ। कभी कल्पना में भी मेरे मन में उनके विषय में कोई बुरे विचार नहीं आये। मैं ऐसा नीच आदमी नहीं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उनके साथ मेरा सम्बन्ध सदा पवित्र तथा मैत्री का ही रहा है।'

मेरी घबड़ाहट जितनी ही बढ़ती जाती थी, वह औरत अपना चेहरा उतना ही अधिक शांत बनाये रखने की चेष्टा कर रही थी। मैं उनके

आक्षेपों के कारण जितना ही अधिक व्यग्र होता जा रहा था वह मुझे अपनी कटाक्षपूर्ण तिरस्कृत हँसी द्वारा उतनी ही अधिक मार्मिक पीड़ा पहुँचाने का यत्न कर रही थी। एक क्षण के लिए मन-ही-मन ऐसा भी लगा कि केवल मेरे सामने बैठी यह औरत ही नही, बल्कि सारा ससार ही मेरे ऊपर वैसा आक्षेप कर रहा है। फिर, वैसी हालत मे, उस औरत से यह पूछना भी व्यर्थ था कि आखिर वह कौन है और मेरे ऊपर आक्षेप करने का भी उसे किसने अधिकार दिया।

मैं यह विचार कर ही रहा था और कुछ कहने ही जा रहा था कि सहसा केटी ने उस कमरे मे प्रवेश किया। मैं अपने भीतर का आवेग निकालने ही जा रहा था कि केटी के आ जाने से उसके निकलने का दरवाज़ा एक-ब-एक बन्द हो जाने के कारण मेरी चञ्चलता और भी बढ़ने लगी।

मैं वहाँ दो-तीन मिनट और भी बैठा रहा। मेरा सारा शरीर जलने लगा। आवेश को रोक रखने पर चेहरा फीका पड गया था, यह मैंने अपने सामने के आईने मे देखा और तुरन्त उठ खडा हुआ। उस स्त्री ने इस बार भी कटाक्षपूर्ण तिरस्कृत मुसकराहट से 'आपका भला हो' कहते हुए विदा ली।

सड़क पर आने पर अपने आत्माभिमान को चूर-चूर हुआ तथा मिट्टी मे मिलता हुआ महसूस करने लगा। आँखों के आगे की सारी चीजें घूमती-नाचती जान पड़ने लगीं। उस स्त्री तथा केटी दोनों के ही प्रति तीव्र घृणा हो गई। क्रोध के मारे मैं काँपने लगा और कई बार अपने को स्थिर रखने के लिए अपने सूखे हुए होंठ चबाने लगा। जिस रास्ते से होकर आया था, विना सोचे-विचारे उधर ही मेरे पाँव पडने लगे। इस समय मेरे भीतर की विचार-शक्ति जल भुन कर बिलकुल खाक हो चुकी

थी। आगे और कुछ सोचने की न तो शक्ति ही रह गई थी और न इच्छा ही हो रही थी।

जब रेल से उतर कर पैदल घर की ओर चला उस समय धीरे-धीरे चेतना आने लगी। सामने आईने के न रहने पर भी अपना चेहरा आँखो के सामने दिखलाई देने लगा और वैसी शक्ल बनाए घर लौटने में हिचक होने लगी। कई बार, रूमाल से अपना चेहरा साफ किया मानो उस पर बहुत गर्द छा गई हो। जब उससे भी सन्तोष नही हुआ तो पानी के एक नल के नीचे जाकर खूब अच्छी तरह सर धो लिया। कई मिनट तक ठण्डे पानी के नीचे सर किये रहा, जिसके छींटो से कालर आदि बिलकुल भीग गये।

घर की सीढ़ियों पर चढ़ते-चढते एक-ब-एक यह भी निश्चय कर लिया कि अब और यहाँ नहीं रहूँगा। मेरी आहट सुन कर माँ जी (हान्स की माँ को माँ जी कहा करता था और तू कह कर पुकारता था) भी वहाँ आ गईं। उनकी ओर बिना देखे ही मैंने कहा—

'आज पहली ट्रेन से ही हाइडिलबेर्ग जाऊँगा, एक जरूरी काम आ पडा है।'

मेरी बात सुन कर वे अवाक् रह गईं। मुझे रोक रखने की उन्होंने बहुत चेष्टा की, पर जब मुझे अपने हठ पर बिलकुल अड़ा हुआ देखा तो मेरे लिए कुछ खाने का सामान साथ दे देने के निमित्त चौके में चली गईं। वे मुझे स्टेशन तक पहुँचाने साथ चलना चाहती थीं; पर इस बार भी हठ कर मैंने उन्हें रोक दिया। अब तक मुझे अपने चेहरे में जलन सी मालूम पड़ रही थी।

विदा लेने के स[illegible] ओर देखा। जब मैं बिलकुल छोटा था उस समय की एक घटना आँखों के सामने नाच गई। उस

समय भी मैं अपनी माँ का आँचल कपड़े हुए खड़ा था और संसार ने मुझे जीवन में पहले-पहल जिस अन्याय से परिचित कराया था उससे पीड़ित हो रोने लगा था और उसके आँचल में अपना मुँह छिपा लिया था। माँ ने उस समय मुझे अपनी गोद में ले लिया था और उसी समय मैंने यह सत्य पहचाना था कि संसार के सभी लोग अन्यायी नहीं होते, यहाँ भी कुछ ऐसे प्राणी वास करते हैं जिन्हे मनुष्य अपना कह सकता है। और यदि सारा संसार ही ठुकराता-दुत्कारता रहे तो उस समय भी कम-से-कम उस एक स्थान पर शरण मिलना बिलकुल निश्चित है। उस समय मेरे बचपन का वह सबसे बड़ा सङ्कट था; और आज अपनी युवावस्था का एक बड़ा सङ्कट सामने था। आज अन्यायी संसार ने मुझे एक ठोकर लगाई थी, मैं अपने को पूर्णतया निर्दोष पाता था और मेरी सुनने वाला—मुझे सच्चा कहने वाला—कोई भी नहीं दीखता था; इसीलिए अपने पूर्व-परिचित स्थान पर शरण लेने की इच्छा हो रही थी।

शायद माँ जी मेरी अवस्था का ठीक-ठीक अन्दाजा लगा रही थीं, इसीलिए बिदाई के समय उन्होंने मेरा आलिंगन किया पर कुछ बोलीं नहीं; किन्तु उनका यह न बोलना ही मुझे भली भाँति समझा-समझा कर कह रहा था—

'मैं समझती हूँ, मै तुझे पूरी तरह समझती हूँ, तू बिलकुल निर्दोष है। संसार बड़ा ही क्रूर है। विश्वास रख, मेरी गोद में तेरा सदा ही स्थान बना रहेगा।'

स्टेशन पर पता चला कि ट्रेन के जाने में तीन घण्टे की देर है। वे तीन घण्टे मुझे तीस वर्ष जैसे मालूम हुए। बर्लिन के मकान ऐसे दीखते मानो वे मुझे काट खाने के लिए मुँह बाये खड़े हैं। मेरे लिए वहाँ साँस लेने को हवा नहीं थी। तीन घण्टे क्या, तीन मिनट भी मैं

वहाँ नहीं बिता सकता था। स्टेशन के जिस हाल मे खड़ा था वहाँ लोगों का बराबर ही आना-जाना लगा था, सबको जल्दी पड़ी थी, किसी को किसी दूसरे की ओर निहारने का भी अवकाश नहीं था; पर मुझे मालूम पड़ रहा था कि वे सभी मुझे घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं।

छटपटाता हुआ फिर बाहर सड़क पर निकल आया। आज भी कुहासा छाया हुआ था। रास्तों पर जलने वाली बत्तियाँ ऐसी दीखती थी मानों वे शहर के अन्धकार को और भी अधिक बढाती जा रही हैं। मुझे केवल एक ही चिन्ता लगी थी—जितनी जल्दी हो सके, इस शहर से अपना पीछा छुड़ाऊँ। ससार के किसी भी कोने मे, वीरान-से-वीरान मरुभूमि मे भी, मुझे रहना पसन्द था; पर बर्लिन में नहीं! हान्स के पिता ने आज सवेरे ही मुझसे कहा था कि कल बर्लिन के चारों ओर की झीलें देखने चलेंगे; मैंने भी खुशी खुशी हाँ कह दिया था; पर इस समय वह घटना वर्षों पहले बीती हुई सी दीख रही थी।

अपना देश

सर्दी का मौसम शुरू हो गया था जब मैं हाइडिलबेर्ग लौटा। इस बीच प्रोफेसर राइनहार्ट को अमेरिका के एक विश्वविद्यालय से व्याख्यान देने का निमन्त्रण आया था। उसे स्वीकार कर वे अमेरिका चले गये थे। उनके लौटने में अब कुछ सप्ताहों की देर थी।

मैं हान्स से मिलने गया। वह भी कही बाहर गया हुआ था। मेरे पास जितने पैसे बच रहे थे उनसे मैं विद्यार्थियों के उपयुक्त औसत दर्जे की कोठरी का पहले महीने का किराया मुश्किल से चुका सकता था। इसलिए मै सस्ती कोठरी की तलाश मे निकला। बीच शहर से दूर, जहाँ कारखानो में काम करने वाले मजदूर ही अधिक सख्या में रहा करते थे, मैं एक गरीबों के मुहल्ले की ओर बढा।

रास्ते मे मेरा ध्यान मकानों के सामने अथवा खिड़की से लटकाये गये, किराये पर उठने वाली कोठरियों के बोर्डों पर था; उसमे भी विशेषकर मकानों की सबसे ऊपर वाली मजिल पर। जिन मकानों की दीवारें फटी रहतीं, दरवाजे टूटे रहते अथवा जो सब दृष्टियों से बिलकुल बेढंगे से दीखते, उनकी ओर ही मेरा ध्यान खास तौर से जाता क्योंकि मुझे आशा थी कि उन मकानों में रहने वाले गरीब सस्ते में मुझे अपने घर का एक कोना किराये पर दे देंगे।

दो-तीन घण्टे तक घूमते रहने के बाद एक ऐसी छत पर की कोठरी मिली जिसका किराया सप्ताह में दो मार्क (दो रुपया) था। जिस मकान में वह कठोरी थी वह एक बड़े क़ब्रगाह के ठीक बगल में था। इसकी मालकिन का व्यवसाय कफ़न बेचना था और वह स्वय उस मकान के दोमज़िले पर रहती थी। वह जिस मंजिल पर रहतो थी वहाँ भी एक कठोरी ख़ाली थी; पर उसका किराया अधिक था। अपना 'मज्ञार्दे' (छत पर की कठरी) दिखलाने में पहले तो घर वाली को सकोच हुआ, पर जब उसने देखा कि मैं उस 'मज्ञार्दे' मे ही रहना पसन्द करता हूँ तो वह उसकी बड़ी तारीफ करने लगी।

वह 'मज्ञार्दे' बिलकुल छोटा और ठीक कछुए के पेट के आकार का था। जिस स्थान से कछुए अपना गला बाहर निकालते हैं वैसा दीखने वाला स्थान बिलकुल ख़ाली सा था और केवल वहाँ से उस 'मज्ञार्दे' में रोशनी आ रही थी। बैठे रहने पर, उस छेद से छोटे चौकोर आकाश के सिवा और कुछ दिखलाई नही पडता था; पर खडे होने पर, नीचे दाहिनी ओर छोटे-छोटे पेड़-पौधो से ढके एक मैदान का थोडा सा भाग दीखता था जो असल मे क़ब्रगाह था। बाईं ओर जरा दूर पर (क्योंकि उस 'मज्ञार्दे' से ठीक नीचे की चीजे नहीं देखी जा सकती थीं) एक लाल रग का कारख़ाना था जहाँ पर तीन लम्बी-लम्बी, धूएँ से काली हुई चिमनियाँ दिखलाई देती थी। उधर का दृश्य भी दाहिनी ओर के ही समान सुनसान, वीरान तथा निर्जन सा दीखता था। यह दृश्य बड़ा ही उदास तथा अप्रिय था और बाहर उजाला रहने पर भी ऐसा लगता मानो वह सारा दृश्य ही किसी घने अन्धकार में छिपा है। उस ओर मुझे दिखलाते हुए घर वाली कहने लगी—

इस 'मज्ञार्दे' से आप बाहर का बड़ा ही सुन्दर दृश्य देख सकते हैं। ऊपर देखिये तो स्वच्छ आकाश दिखलाई देता है, बाईं ओर शहर का

दृश्य और दाहिनी ओर थोड़ी सी हरियाली। इससे बढ़ कर और क्या चाहिये ? यहाँ रहने पर आप अनायास ही कवि बन जायँगे।'

इस 'मञ्जार्दें' के एक भाग मे डेढ़ टाँग पर टिका हुआ बाबाआदम के जमाने का एक सोफा रखा था। गद्दे के स्थान पर गहरी धूल के कारण वह नरम और चिकना दिखलाई देता था; और तीन स्थानों पर उसके भीतर के पुराने लोहे के जंग लगे हुए स्प्रिङ्ग बाहर झाँक रहे थे। उस सोफे के सिरहाने की ओर काठ की एक तिकोनी तिपाई भी रखी थी। मालकिन ने उस सोफ़े की ओर दिखलाते हुए कहा—

'और आपके सोने के लिए यह नरम सोफा है। देखिये जरा दबा कर, कैसा नरम है! इस पर कभी बड़े बड़े लखपती व्यवसायी बैठा करते थे। अभी भी यह 'मञ्जार्दें' मैं किसी को किराये पर नही देना चाहती थी; पर आप ठहरे विद्यार्थी, विद्यार्थियों की सहायता करना मेरा धर्म है। आप खुशी से यहाँ रहिये, आपका मन यहाँ ऐसा लग जायगा कि आप फिर और कभी कोई दूसरी कोठरी देखना न चाहेंगे। अभी पिछले ही महीने में सत्ताइस आदमी इस 'मञ्जार्दें' को किराये पर माँग चुके हैं; पर मैंने किसी को भी नही दिया, क्योंकि बाहर से अच्छे कपड़े रहने पर भी वे मुझे खानदानी नहीं दीखते थे। आप ठहरे विद्यार्थी, आप अवश्य ही अच्छे खानदान के होंगे, आपसे मुझे कोई भय नहीं।'

जितनी देर मैं वहाँ खड़ा था उतनी देर मे ही मेरा दम घुटने सा लगा था, चारों तरफ़ अन्धकार सा दीखता था, अपने भीतर-बाहर कहीं भी अन्धकार के सिवा और कुछ नही देख रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था मानों बुखार आ गया हो। मैंने पूछा—

'लेकिन यहाँ रोशनी तो बिलकुल ही नहीं है।'

'ओह! रोशनी ? रोशनी की आप बिलकुल ही चिन्ता न करें। मेरे पास नीचे किरासन तेल से जलने वाला एक लैंप है, वह मैं आपको दे

दूँगी। हाँ, उसका शीशा टूटा हुआ है; पर उससे कोई हानि नहीं। इस हालत में भी वह इलेक्ट्रिक लाइट से कहीं अच्छा है। किरासन तेल की लैंप से आँखों के खराब होने का डर नही रहता; और आप युवक ठहरे, अपनी आँखों की फ़िक्र सबसे अधिक करनी चाहिये। आँखों में ही सारी दुनिया है।

'यहाँ आपके कमरे मे कभी-कभी सुन्दर फूल भी लाकर रख दिया करूँगी। क़ब्रगाह का माली मुझे बड़ा ही सस्ता दे जाया करता है। बड़े सुन्दर फूल हैं; अगर ये कब्रों पर सजाये जायँ तो भला उनकी बहार ही लूटने वाला कौन है ? जिन्दा लोग ही उनकी बहार लूट सकते हैं और उनमे भी आपके समान युवक ! आपके कमरे की रौनक़ ही फिर कुछ दूसरी हो जायगी।'

उस 'मज्ञादे' का रङ्ग-रूप देखने पर मुझे पता लग गया था कि वह मनुष्यों के रहने योग्य नही था। हाँ, किसी को यदि क़ब्र में ही रहना पसन्द आये तब बात ही दूसरी है। फिर भी उस घर वाली की वाक्पटुता से प्रभावित हुए बग़ैर रहना भी नामुमकिन सी बात थी। दूसरा खयाल सस्तेपन का था; उससे सस्ता किसी छप्पर के नीचे भी स्थान मिलना नामुमकिन था। मैंने फिलहाल वहीं अपना डेरा डालने का निश्चय किया।

मकान-मालकिन के नीचे चले जाने पर अपने भीतर, बाहर, चारों ओर सन्नाटा-ही-सन्नाटा दिखलाई देने लगा। मैं उस तिकोनी तिपाई पर बैठने लगा। मैंने अभी उस पर अपना आधा ही भार रखा होगा कि वह चर-चर कर कहने लगी—

'नये अतिथि ! आप मुझे मुक्ति देने जा रहे हैं ? आपका हृदय से स्वागत !'

दूसरे क्षण ही मैंने अपने को अनायास ही डगमगाते हुए पाया

और अभी सँभल भी नहीं पाया था कि मेरा स्टूल मुझे डगमगाते देख खिलखिला कर हँस पड़ा। फर्श से उठ कर देखा तो मेरा स्टूल दाँत निपोरे करवट बदलने की चेष्टा कर रहा था।

सोफे की ओर दृष्टि गई तो वह भी मुझे ऐसा ही कहता हुआ दिखलाई दिया—

'मैं भी अपने सगे भाई स्टूल की तरह मुक्ति के मार्ग पर हूँ।'

उस पर न बैठ मैंने खड़े रहना ही अधिक अच्छा समझा। अपने मन-ही-मन यह सोच कर हँसा भी कि उस 'मञ्जादें' की सभी चीजें मेरी ही अवस्था के उपयुक्त तथा मुझसे सहानुभूति दिखलाने वाली मिलीं।

इन्हीं दिनों विश्वविद्यालय भी नये सत्र के लिए खुल गया। अब तक जरमन-भाषा में इतनी योग्यता हो गई थी कि प्रोफेसरो के व्याख्यान अनायास ही समझ लेता था, इसीलिए 'पढ़ा-लिखा आदमी' बनने की जो बहुत दिनों से इच्छा प्रबल होती चली आ रही थी, उसे पूरा कर लेने का निश्चय किया।

विश्वविद्यालय में जिन प्रोफेसरों का अधिक नाम था, विशेषकर उनके ही व्याख्यान सुना करता। ऐसे ही प्रोफेसरों में एक प्रोफेसर कुंच थे। इनके प्रति मेरा ध्यान विशेषकर इसलिए आकर्षित हुआ कि ये भारत की संस्कृति, इतिहास, कला-कौशल, सामाजिक जीवन आदि के धुरन्धर विद्वान् समझे जाते थे।

भारतवर्ष के सम्बन्ध में वे कई ऐसी मोटी-मोटी पुस्तकें भी लिख चुके थे जो केवल बड़े-बड़े पुस्तकालयों की आलमारियों की ही शोभा बढ़ाया करती थीं। उन दीर्घकाय ग्रन्थों को देख कर ही उन्हें उलटने की बहुत कम लोगों की हिम्मत हो सकती थी। फिर भी ये पुस्तकें

प्रोफेसर कुंच की ख्याति के लिए कम उपयोगी सिद्ध नहीं हुई थीं। लगभग चालीस-पचास वर्ष पहले जब प्रोफेसर महाशय जवान थे तो एक बार अंग्रेजी-सरकार द्वारा तीन महीने के लिए भारत घूमने का एक प्रकार का पारितोषिक भी पा चुके थे। संयोग से वे तीन महीने गरमी की ऋतु में पड़े थे; इसीलिए कुंच महाशय ने अपना पूरा-का-पूरा समय शिमले के एक होटल मे बिताया था और वहाँ से ही सारे भारत की सभी प्रकार की परिस्थितियों का 'वास्तविक' अध्ययन किया था! उसके बाद से उन्होंने न तो फिर से भारत जाने या कोई और स्थान देखने का ही कष्ट उठाया और न किसी भारतवासी की लिखी पुस्तक को ही अपनी दृष्टि से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त होने दिया। पर ये बाते किसी भी रूप मे प्रोफेसर साहब के भारत-सम्बन्धी 'वास्तविक ज्ञान' के दावे मे किसी प्रकार की कमी लाती हुई नहीं समझी जाती थीं।

एक दिन सचमुच ही मैं उनका व्याख्यान सुनने जा पहुँचा। उनका व्याख्यान एक बड़े से हॉल मे हुआ करता था, जहाँ पर लगभग दो सौ विद्यार्थियों के बैठने का स्थान था। सबसे पिछली कतार में जो लोग बैठे थे वे किसी विशेष जरमन विद्यार्थी-सङ्घ के सदस्य थे। उनके सर के बाल खूब चिकने-चुपड़े थे। माँग के पास दो बहुत ही पतली धारियाँ रख छोड़ी गई थीं जिनका प्रत्येक बाल बड़ी सावधानी से काटा हुआ था। चेहरे पर अनेक जगह तलवार के कटे रहने के निशान थे। बातें करते समय वे विद्यार्थी बड़े अभिमान के साथ उन निशानों की ओर सकेत करते हुए बाते करते थे। सर के आकार के मुक़ाबले में बहुत ही छोटी चार अंगुल लम्बी-चौड़ी टोपी दाहिनी कनपट्टी से चिपकी थी। उन टोपियों को देख कर पहले-पहल उन्हें देखने वाले ने शायद ही समझा होता कि वे टोपियाँ हैं; उसके बदले शायद वह

यही समझता कि उस जगह कोई फोड़ा हो गया है और उसी को ढकने के लिए वह चिट लगा रखी गई है !

उस हॉल में स्थान-स्थान पर विद्यार्थिनी लड़कियाँ बेंचो के सहारे खड़ी जोरो से बातें कर रही थीं। जिन लड़कियों की प्रकृति थोड़ी शरमीली थी और जोरों से बातें करना पसन्द नहीं करती थी, वे इस बात का काफी खयाल रखती थी कि हँसते समय उनकी पूरी बतीसी दिखलाई दे। विद्यार्थियो के आते-जाते तथा उठते-बैठते समय बेंचों की फटाफट की आवाज आ रही थी, पर सभी यही चेष्टा करते दिखाई देते थे कि उनका आना अथवा बैठना इस प्रकार हो कि दूसरे उसे देख या सुन न पाये।

थोड़ी देर में प्रोफेसर साहब भी वहाँ आ पहुँचे और लोगों को शान्ति से बैठने का इशारा करते हुए अपने बोलने के मञ्च पर जा चढे। उनकी लम्बी दाढ़ी तथा काले रंग का लम्बा कोट देख कर एक क्षण के लिए प्रोफेसर के बदले उन्हे पादरी समझ लेना ही अधिक स्वाभाविक था।

अभी मैं पूरी तरह यह निश्चय भी नही कर पाया था कि प्रोफेसर महाशय का सर कुम्हड़े के आकार का है अथवा हँडी-जैसा, कि उनका व्याख्यान शुरू हो गया। पहले कुछ मिनटों तक तो मुझे ऐसा दीखा मानो किसी ग्रामोफोन के रेकर्ड पर सुई लगा दी गई है और आप-से-आप उससे शब्द निकलने लगे हैं। पर भारतवर्ष का नाम बार-बार आते रहने के कारण मैं अपना ध्यान अधिकाधिक उनके व्याख्यान की ओर केन्द्रीभूत करने लगा। मेरा ध्यान उस ओर जितना ही अधिक केन्द्रीभूत होता जाता, मेरे हृदय मे एक प्रकार का सन्नाटा छाता जाता, आवेश तथा क्रोध के मारे मेरा चेहरा थोड़ी ही देर में तमतमा उठा। प्रोफेसर महाशय कह रहे थे—

'भारत मे अंग्रेजों के जाने के पहले, वहाँ एकता, शान्ति, न्याय, सफाई का खयाल आदि 'बातों—एक शब्द मे ऐसा कहा जाय कि सभ्यता—का नाम-निशान तक न था। वहाँ के बाशिन्दे अभी तो अधिकाश सख्या मे हिन्दू, धर्म के मानने वाले हिन्दू हैं। इस धर्म का भवन क्रूरता की नीव पर बनाया गया है!

'यूरोपियन लोग ठगबाजी की प्रथा से, जो हिन्दू-धर्म का मूल स्तम्भ है, अपरिचित हैं। इसलिए इस विषय पर मैं विशेष रूप से अगले व्याख्यान मे प्रकाश डालूँगा। सक्षेप मे ठगबाजी का मतलब है धर्म के नाम पर यात्रियों की बलि चढ़ा देना। मनुष्यों की बलि चढ़ाना हिन्दुओं के लिए सबसे बड़े पुण्य का कार्य है। फिर इसके बाद हिन्दू धर्म मे सती-दाह का नम्बर आता है। हिन्दू स्त्रियाँ विधवा होते ही जिन्दा जला दी जाती हैं। धर्म का सम्बन्ध मन्दिरो से भी है, पर हिन्दू धर्म के मन्दिर वास्तव में वेश्यावृत्ति के लिए खोले जाते हैं!

'हिन्दुओं के बाद मुसलमानो का नम्बर आता है। क्रूरता तथा चरित्रहीनता में ये भी हिन्दुओ से पीछे नहीं रहते हैं; पर इनके धर्म मे एक विशेष बात यह है कि औरत को चुरा कर अथवा जबर्दस्ती किसी से की गई शादी ही जायज करार दी जाती है; साधारण प्रकार से शादी करने की प्रथा को ये कायरता के नाम से पुकारते हैं।

'फिर इन हिन्दू, मुसलमान तथा भारत के सभी बाशिन्दों में जो बाते समान हैं उन्हे सुन कर आप एकदम दङ्ग रह जायँगे। उनके यहाँ पिता का पुत्री के साथ, भाई का बहन के साथ, पिता-पुत्र दोनों का एक ही स्त्री से सम्बन्ध रखना आम बात है तथा बुरा नहीं समझा जाता! वहाँ जैसे ही लडकियाँ पैदा होती हैं वैसे ही उनका विवाह हो जाता है

और सात-सात वर्ष की अवस्था मे वे स्वय बच्चे पैदा करने लगती हैं। इसके सिवा……'

प्रोफेसर साहब के इतना कहते-कहते मेरे दिमाग का पारा उस हद तक चढ़ चुका था जिसके आगे बर्दाश्त की शक्ति नहीं रह जाती। क्रोध इतना चढ आया था कि अपने जूते के फ़ीते तक खोलने लगा था ; पर उसे निकालने में जब देर होने लगी तब मैं चिल्ला उठा—

'सरासर झूठ !'

प्रोफेसर एक क्षण के लिए रुक गये ; पर मेरी ओर दृष्टि पड़ते ही हँसने लगे। मैंने उनका व्याख्यान सुनने वालों की ओर दृष्टि दौड़ाई। किसी के भी चेहरे पर आश्चर्य की रेखा नहीं थी। प्रोफेसर ने जो भी कुछ कहा था उसे वे केवल स्वाभाविक ही नही, बल्कि एकमात्र सत्य समझ रहे थे। प्रोफेसर के हँसने लगने पर मेरी ओर देख कर कई विद्यार्थी भी मुसकराने लगे। प्रोफेसर ने फिर कहना शुरू किया—

'आप इसे सहन नहीं कर पाते, पर मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ वह सत्य है तथा समाज-शास्त्र के वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए उसका जानना नितान्त आवश्यक है।'

अब तक 'समाज-शास्त्र' के 'जानकारों' के प्रति जो श्रद्धा थी वह एक-ब-एक लुप्त हो गई। उनका वास्तविक पैशाचिक रूप मैं अपनी आँखों के सामने देखने लगा। कस कर दाँतो से होंठ दबा रखा था, फिर भी मुँह से निकल ही पड़ा—

'पिशाच ! तेरा दिमाग़ खराब हो गया है।'

चारों ओर से 'श्…श्… श्…' की आवाज़ आने लगी। मैं यह भी बरदाश्त नहीं कर पाया और अपने चारो ओर सर घुमा कर मैंने देखा और बोल उठा—

'गधे !'

मेरी समझ में मेरी यह आवाज दबी जबान से निकली थी; फिर भी इसमे सन्देह नहीं कि उस हॉल में ऐसा कोई भी व्यक्ति नही था जिसके कानों मे मेरी वह आवाज न पहुँच पाई हो। प्रोफेसर साहब ने अपने स्थान से ही चिल्ला कर कहा—

'बाहर जाओ।'

और भी एक-दो तरफ से यह आवाज आई। मैं उठ कर बाहर चला आया। पर तुरन्त—मालूम नही, क्या मन मे आया—जिस दरवाजे से प्रोफेसर ने उस कमरे में प्रवेश किया था, उधर जाकर उसे खोलने की चेष्टा करने लगा। वह बन्द था। मैं उस पर घूँसे से खट-खटाने लगा। इतने में देखा कि दूसरे दरवाजे से निकल कर विद्यार्थी बाहर जा रहे हैं। वे हँस रहे थे।

मेरी हालत अजीब तरह की हो रही थी। आप-ही-आप जोरों से बड़बडाता तथा दौडता हुआ सड़क पर निकल आया; क्रोध के कारण जो खून सर में चक्कर लगाने लगा था उसे घूँट कर फिर से गले के नीचे उतारने की चेष्टा करने लगा। मन में रह-रह कर आ रहा था कि कुल्हाड़ी लेकर जाऊँ और जिसने मुझे अपमानित किया है उसकी माँग पर जहाँ बाल नही, ठीक उसी जगह तोल कर और कस कर एक हाथ मारूँ। उसके हँसने की आवाज अभी भी मेरे हृदय को छेद रही थी। पर फिर मन में आता—उस एक के मारने से आखिर क्या होगा? उसके समान ही विचार रखने वाले यहाँ बहुत हैं, उन सबसे अकेले इस प्रकार बदला नहीं लिया जा सकता। उन सबके प्रति मेरे भीतर ऐसी घृणा भर आई कि उसकी गन्ध से मेरा अपना दम घुटने सा लगा।

सत्य तथा वैज्ञानिक अन्वेषण के नाम पर वे ऐसा अन्याय क्यों करते हैं, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी। मैंने अथवा मेरे

देश ने उनका क्या बिगाड़ा है कि वे उसे इतनी घृणा की दृष्टि से देखते हैं ? यदि वे वहाँ के विषय मे नही जानते तो चुप रहे; पर इस प्रकार प्रचार करने से आखिर उन्हे क्या मिलता है ? उनके पक्ष की पुष्टि करने वाली कोई भी दलील मेरी समझ के बाहर थी और उनके कार्यों में सरासर अन्याय के सिवा और कुछ भी नहीं देख पाता था। मनुष्यों के अन्याय, उनके घृणित-से-घृणित, भद्दे-से-भद्दे, वीभत्स-से-वीभत्स स्वरूप को, जान पड़ता था, मानो अभी जीवन में पहले-पहल ही देखने का मौका मिला है। 'सत्य' तथा समाज-विज्ञान के वैज्ञानिक अन्वेषण का स्वरूप भयङ्करता के साथ-ही-साथ ऐसा वीभत्स दीख रहा था कि उस ओर दृष्टि डालने में भी इस समय घृणा हो रही थी।

अपने 'मझादें' मे पहुँच कर मैंने दरवाजा बन्द कर लिया और सोफे पर पड़ रहा। अपना चेहरा भी कपडे से इस प्रकार ढक लिया कि साँस लेना मुश्किल हो गया।

उन दिनों जरमनी के नात्सी-दल के हाथ में वहाँ की राज्य-शक्ति आ गई थी। उस दल के नेता हिटलर ने भी बहुत पहले से ही अपनी वैदेशिक नीति में यह घोषित कर रखा था कि भारत-जैसे उपनिवेशों के लोग नीच हुआ करते हैं और गोरी जातियों को उन्हे घृणा करने तथा उन पर शासन करने का पूर्ण अधिकार है ! कालेजों के प्रोफेसर नात्सी-दल की इसी नीति का अपने व्याख्यानों में समर्थन किया करते थे और ऐसा करने के लिए वे बाध्य भी किये जाते थे।

मुझसे प्रोफेसर तथा विद्यार्थियो की कटाक्ष पूर्ण हँसी भुलाई नही जा रही थी। यह बात मुझे बहुत खटक रही थी कि प्रोफेसर के कथन में कोई बात भी सच्ची नही थी, पर लोग उनका ही विश्वास करते और यदि उनके खिलाफ चिल्ला-चिल्ला कर मैं लोगों को अपने देश के विषय में,

जैसा कि मैंने उसे देखा है और जिससे परिचित होने का मैं दावा रख सकता हूँ, बतलाता तो लोग मुझे पागल के सिवा और कुछ नही कहते।

अन्याय—यह सरासर अन्याय है।

मैं इस तरह सोचता-विचारता और करवटें बदलता सो गया। दूसरे दिन सवेरे विश्वविद्यालय मे व्याख्यान सुनने जानने की इच्छा नहीं हुई। वे व्याख्यान असत्य, घृणा तथा अन्धकार की ओर ले जाने वाले थे, उनका उद्देश्य मेरे देश तथा वहाँ के बाशिन्दों में अपने आपके प्रति नीचता का भाव लाना था।

मुँह धोते समय चीनी-मिट्टी के बर्त्तन में, जिसमे पानी भरा था, नाक डुबाये बड़ी देर तक दम साधे रहा और अपने-आपसे कहता रहा—

'हाँ, वास्तव में ही तुम्हे चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिये।'

तौलिये से मुँह पोछते समय प्रोफेसर के मुँह से निकली बहुत सी बातें फिर याद आने लगी। मैं अपने-आपसे कहने लगा—

'हाँ, हमारा देश धन-धान्य पूर्ण होने पर भी ससार के सारे देशो में सबसे अधिक निर्धन है। गरीब लोगों को देख कर लोग उनका मजाक उड़ाया ही करते हैं, यह स्वाभाविक ही है। पर यह भी तो एक बार सोचना चाहिये कि आखिर इतनी दरिद्रता हमारे देश में आई ही कैसे? इसका कारण अवश्य ही हमारी गुलामी है। हमारी गाढ़ी मेहनत की कमाई पर दूसरे देश धनाढ्य हो गये हैं और आज भी धनाढ्य बने हैं, गुलछर्रें उड़ा रहे हैं। वे हमें लूटने वाले हैं; पर उनकी ओर कोई उँगली तक नहीं उठाता, क्योंकि वे स्वतन्त्र हैं, शक्तिशाली हैं। हमें सभी दुत्कारते हैं, धिक्कारते हैं, क्योंकि हम गुलाम तथा शक्तिहीन हैं।'

बाहर सड़क पर आने पर सबसे पहले प्रोफेसर कुंच के ऐसिस्टेंट लोकनर महाशय मिले। वे स्वय ही हँसते हुए सामने आये और हाथ मिलाते हुए बोले—

'आपकी विजय के लिए बधाई!'

'मेरी विजय? कैसी विजय?'

'किसी प्रोफ़ेसर को ऐसी खरी-खोटी आज तक किसी ने भी नहीं सुनाई होगी।'

इतना कह कर वे फिर हँसने लगे। मुझे उनकी हँसी मे व्यग के सिवा और कुछ नही दिखलाई दिया। उनसे शीघ्र ही विदा ले मैं आगे बढ़ता चला गया। अपने को गुलाम, शक्तिहीन तथा पराजित एवं दलित के रूप में देख रहा था और इसे बर्दाश्त करना असम्भव हो रहा था। फिर अपना चेहरा ढक लेने की इच्छा हो रही थी। और आगे न बढ़ बगल के विश्व-विद्यालय वाले पुस्तकालय मे जा घुसा। वहाँ पर भारतवर्ष के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें थी उनकी सूची देख गया और फिर उनके पन्ने उलटने लगा। अधिकाश पुस्तकें अग्रेजों की लिखी थीं अथवा उन्हें ही आधार मान कर किसी दूसरे ने लिखी थीं। प्रायः उन सभी पुस्तकों से केवल एक ही प्रकार की बू आती थी। सभी अपने-आपको भारत का सबसे बड़ा जानकार सिद्ध करने की चेष्टा करते थे। अपनी इसी चेष्टा की पूर्ति में वे अपनी कल्पना-शक्ति की बागडोर पूरी तरह से छोड़ देते थे और भारत के नाम पर किसी ऐसे देश का कल्पना-पूर्ण चित्र चित्रित करने लगते थे जिसका पृथ्वी पर होना अवश्य ही विचारशीलों के लिए असम्भव सी बात हो जाती। उन पुस्तकों के लेखकों ने शुरू से अन्त तक केवल एक ही बात सिद्ध करने का अपना उद्देश्य बना रखा था और वह यह कि भारतवासी नीच और अंग्रेज उच्च हैं, इसीलिए अग्रेजों को भारत पर अधिकार जमाये

रखने का अधिकार है। अंग्रेज़ों का यह अधिकार जमाये रखना भारत-वासियों के ही फायदे का है, क्योंकि जिस क्षण भारत मे अंग्रेजी सल्तनत नहीं रह जायगी उसी क्षण वहाँ उत्पात, खून-खराबी मच जायगी तथा घरेलू लड़ाइयो में खून की नदियाँ बहने लगेगी। सच बात यह है कि इन्हीं खून की नदियों का अतिरजित वर्णन वे उन पुस्तकों में किया करते और बच्चो को जिस प्रकार भूत-प्रेत से डराया जाता है उसी प्रकार अपने पाठकों के भीतर डर जमाने की चेष्टा किया करते।

जो लेखक निष्पक्ष रहने का दावा करते थे उन्होंने अपना एकमात्र उद्देश्य बना रखा था विजेताओं को उत्साहित करना, उनकी प्रशंसा करना तथा विजित लोगों को और भी अधिक नीचा दिखलाना, उन्हे धिक्कारना। जिन्होंने भारतवर्ष मे सयोग से कुछ घण्टों के लिए भी पाँव रखा था, वैसे लेखक तो उपर्युक्त बातों को दोहराना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानने लगे थे। कुछ लेखक तो ठीक ऐसे लालची कुत्तो की तरह थे जो किसी भोज मे दुम हिलाते हुए केवल जूठन चाटा करते हैं। जिन लोगों का भारतवर्ष की समस्या तथा वहाँ की बातों से जितना ही कम परिचय था उन्होने अपना अज्ञान छिपा रखने के लिए उतनी ही मोटी पुस्तकें लिख रखी थीं तथा अपने को भारतवर्ष की जानकारी पर सबसे बड़ा प्रामाणिक व्यक्ति सिद्ध करने की चेष्टा की थी।

अपने देश की समस्या को इस पहलू से देखने वालों के अध्ययन ने मुझे एक सप्ताह तक और किसी भी काम अथवा विचार के लिए निकम्मा बनाये रखा। अखबारों के पढ़ने की मुझे बहुत कम ही आदत थी; पर इन दिनो भारतवर्ष के सम्बन्ध में जिन-जिन अखबारों में समाचार छपा करते उन्हे पढ़ने लगा। उनका भी आशय उपर्युक्त पुस्तकों से कुछ भिन्न नहीं था!

मैं अपने देश की किसी प्रकार की भी बुराई को अस्वीकार करने की चेष्टा करता था, यह बात नहीं थी। उन लेखकों का उद्देश्य हमारी बुराई दिखला कर हमें कुछ अच्छे रास्ते पर लाना नहीं था, बल्कि वे जो कुछ भी दिखलाते थे, एक शत्रु की हैसियत से; और उनका उद्देश्य हमें सदा नीचे दबाये रखना तथा नीचा बतलाते रहना था। मुझे ठीक ऐसा लगता था जैसे हमारा देश किसी समुद्र मे डुबाया जा रहा हो और चारों तरफ़ के लोग उसके साँस लेने के लिए सर उठाने का प्रयत्न करते ही गिद्ध की तरह उसका मांस नोच खाने के लिए टूट पड़ते हो।

प्रोफ़ेसरों का व्याख्यान सुनना, समाज-विज्ञान का अध्ययन करना, आदि बातें—जिनमें अपना समय बिताना सत्र के आरम्भिक दिनों में निश्चय किया था—इस समय मुझे जहर की घुट्टी की तरह दिखलाई देने लगी थीं।

इन दिनों एक क्षण के लिए भी यह चेतना मेरे भीतर से दूर नहीं होती थी कि मैं भारतवासी हूँ और उस देश के अपमान में मेरा अपना अपमान है तथा उसके प्रति किया गया अन्याय मेरे निज के प्रति किया गया अन्याय है।

मुझे इस समय अपने यूरोप के जीवन पर एक बार शुरू से आखीर तक दृष्टि डाल जाने पर यही आश्चर्य हो रहा था कि आखिर वह चेतना इतने दिनों से क्योंकर दबी पड़ी थी और मैंने अपना ध्यान 'रोमैंस' आदि की ओर क्योंकर इतनी देर तक खिंचे रहने दिया। इस दोष के लिए अब अपने को क्षमा करने के लिए राजी नहीं था।

एक दिन अपने घर से निकल कर ज्यों ही सड़क पर आया, आस-पास के लड़के मुझे घेर कर खड़े हो गये और कहने लगे—

'मुझे भी एक सेव दीजिये।'

'तुम लोगों को कैसे मालूम कि मेरे पास सेब हैं ?'

'हमारी माँ ने कहा है कि आप अक्सर चुरा लाया करते हैं।'

चुराने का नाम सुन कर उन बच्चों के साथ-ही-साथ मैं भी हँस पड़ा। कई बार उन बच्चों के साथ खेल चुका था, इसलिए उनसे सेब के विषय मे सच्ची बात जान लेने में भी अधिक समय नही लगा। वास्तव मे बात ऐसी हुई थी कि उस दिन घर से मेरे चले जाने पर घर मालकिन 'मञ्जार्दे' मे उसे साफ करने गई। (पहले वह सप्ताह में दो बार साफ किया करती थी, पर जब से उसे किराया नहीं मिला था, यह पहला ही मौक़ा था जब वह ऊपर गई थी।) वहाँ सेब तथा कुछ केक देख कर उसने आस-पास की स्त्रियों से चर्चा की थी कि किराया देने के लिए मेरे पास पैसे नही, फिर मैं इतने आराम से रहता ही कैसे हूँ ? इसका उत्तर भी उसने स्वय ही देते हुए कहा था कि मैं चोरी-चाटी करके खाया करता हूँ। उसके कथनानुसार तो मैं उस घर-मालकिन की भी एक बार रोटी तथा पनीर चुरा कर खा गया था ! सेब देख कर तो उसे विश्वास ही हो गया कि मैंने उसी के सेब चुराये थे ; क्योंकि अपने पास रखे सेबों को वह भली भाँति पहचानती थी ! पड़ोस की स्त्रियों के सामने मेरे विषय के इस व्याख्यान में उसने यह भी सिद्ध कर दिया था कि मेरे पास एक ऐसी चाबी है जिससे सभी प्रकार के ताले खुल जाया करते हैं, और दूसरी औरतों को सचेत कर दिया कि वे यदि मुझसे अपनी चीजों की रक्षा करना चाहती हैं तो उन्हें ताले के साथ ही साथ अपने दरवाज़ों की ऊपर और नीचे की सिटकनियाँ भी बन्द रखनी चाहियें। उस सभा में सर्वसम्मति से पास हो गया था कि मैं चोर हूँ, और वह भी अकेला ही नहीं बल्कि भारतवासी मात्र ही चोर हुआ करते हैं ! उन्हीं चन्द घण्टों में उस बात का इतना प्रचार हुआ था कि मुहल्ले-भर का बच्चा-बच्चा तक यह बात जान गया था।

मैं घर-मालकिन के स्वभाव से भली भाँति परिचित हो चुका था और इसीलिए समझता था कि उससे झगड़ने का बुरा छोड़ कर कोई भला परिणाम नही निकलने का। पर क्रोध के कारण पाँव ऐसे काँपने लगे थे मानों मैं बहुत पुराना शराबी ही होऊँ। आगे पाँव रखते समय मुझे सबसे बड़ा खटका यह हो रहा था कि कही दूसरी ओर से कोई परिचित आता हुआ न मिल जाय।

अभी कुछ ही दूर गया हूँगा कि सचमुच ही पीछे से मुझे किसी ने पुकारा। घूम कर देखा तो लोकनर महाशय थे और उनके पास ही केटी खड़ी थी! मुझे चुप देख कर केटी ने पूछा—

'इस सत्र मे भी आप यहीं अध्ययन कर रहे हैं?'

उत्तर में मैंने थोड़ा मुसकराने का प्रयत्न किया; पर वह मुसकराहट ऐसी बेढगी निकली कि दूसरे ही क्षण अपना चेहरा अपनी आँखों के सामने व्यङ्ग-चित्र के रूप में दीखने लगा।

हम लोग शहर के मुख्य रास्ते पर खड़े थे। हमारे बाईं ओर एक बड़ा सा सिनेमा-घर था जिसके मुख्य दरवाजे पर बड़ी रौनक़ थी तथा लाल, हरे, नीले रङ्ग की रोशनी चमक रही थी। मुझे उधर गौर से निहारते देख केटी ने कहा—

'बङ्गाल के जङ्गलों में?' यह तो भारत-सम्बन्धी फ़िल्म है! बाहर जो चित्र लगे हैं उनसे तो मालूम पड़ता है कि फ़िल्म बड़ा ही अच्छा होगा।'

हम लोग साथ ही वह फिल्म देखने गये। उस फिल्म में भारतवासियों के ऐसे भद्दे चित्र दिखलाये गये थे और उनका चरित्र ऐसा हीन दिखलाया गया था कि उसे देख कर किसी भी भारतवासी का सर नीचा हुए बिना न रहता। खासकर हमारे देश की स्त्रियों का चरित्र बड़ा ही पतित दिखलाया गया था; वेश्याओं का नाच ऐसी

कमीनी हरकतों के साथ दिखलाया गया कि दर्शकों के मन में घोर से घोर घृणा के भाव भर रहे थे। पूरा फिल्म ही इस प्रकार का था कि भारतवासियों के चरित्र, उनके नैतिक जीवन, बाहरी रहन-सहन आदि में कोई भी अच्छी बात नहीं दिखलाई गई थी—उन सबका स्वरूप जितना अधिक दूषित दिखलाया जा सकता था, दिखलाया गया था।

विदेश में भारत-सम्बन्धी फिल्म देखने का यह मेरा पहला ही अवसर था। यदि उस फिल्म की सभी बाते विदेशी लोग सची माने तो भारत तथा यहाँ के लोगों को घृणा की दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकते, इसमे कोई सन्देह नहीं। अपने देश के इस हद तक हीन दिखलाये जाने की बात देख मेरा सारा शरीर क्रोध से जलने लगा। फिल्म की वीभत्स बातें देख कुछ लोग अपनी हँसी नहीं रोक पा रहे थे। उन्हे हँसता देख मैं जमीन में गड़ता जा रहा था।

उस फिल्म के तैयार करने वालों ने यूरोप का सुन्दर-से-सुन्दर चित्र दिखलाने का प्रयत्न किया था, पर युरोप से भी मैं इतने काल में भली भाँति परिचित हो चुका था और यह जानता था कि यदि वहाँ का भी कुत्सित चित्र लिया जाय तो वह भी अवश्य ही कम-से-कम भारत के बराबर ही रसातल को पहुँचा हुआ दीखेगा। यदि सभी बातो पर शुद्ध भावना से विचार किया जाता तो अवश्य ही मेरा सर नीचा होने का कोई कारण नहीं था; पर उस मण्डली में, सच्चे कहे जाने वाले वैसे चित्रो को देख कर, मेरी सुन ही कौन सकता था!

केटी मेरे चेहरे का वह परिवर्त्तन देख रही थी, पर उसने मुझे छेटा नही। जिस समय हम फिर बाहर सड़क पर आये, मैं लहू के घूंट पी रहा था। फिल्म देख कर अपनी धारणा बना लेने वाले लोगों के

वास्तव मे निर्दोष रहने पर भी उन पर अत्यन्त क्रोध आ रहा था और उनका बुरे-से-बुरा कुछ कर डालने की प्रवृत्ति हो रही थी।

अपने मन को बहुतेरा समझाने भी पर भीतर-ही-भीतर यह अस्वीकार नहीं कर सकता था कि जबसे उस 'मञ्जार्दे' में रहने लगा था, मेरा जीवन अधिकाधिक नीरस बनता जा रहा था। यदि कभी नीचे की सड़क से कोई बड़ी लारी निकल जाती तो वह अवश्य ही मेरे 'मञ्जार्दे' तक को थोड़ा हिला देती, नही तो सदा एक प्रकार की शाति सी वहाँ पर छाई रहती जिसे अस्वीकार करते रहने पर भी दिल से घृणा करने लगा था। वह शाति कब्र की शांति सी दीखती थी और मालूम पड़ता था कि मैं जिन्दा ही उस कब्र मे डाल दिया गया हूँ। यदि कब्रगाह से उस मौके पर करुणाजनक बाजे की आवाज आती तो मेरा वह विचार और भी पक्का हो जाया करता। फिर मुझे इस बात में कोई सन्देह न रह जाता कि वह बाजा मुझे अपनी 'मञ्जार्दे' वाली क़ब्र में ही जिन्दा गाड़ देने के लिए बजाया जा रहा है। एक सप्ताह में ही मैं अपने-आपसे अपरिचित बन गया। चहल-पहल वाला, सदा परिवर्तित होने वाला, सदा हँसता हुआ भी कोई जीवन हो सकता है, इस बात पर से धीरे-धीरे विश्वास उठता जाता था।

इन्हीं दिनों मुझसे मिलने के लिए एक दिन हान्स मेरे 'मञ्जार्दे' में आया। मेरी सारी परिस्थिति समझ लेने पर उसने कहा—

'लोगों की बातों को तुम अधिक महत्त्व दिया करते हो; यदि इस बात का खयाल छोड़ दो तो फिर तुम्हारी परिस्थिति में ऐसी कोई बात नहीं जिसके लिए इतनी अधिक चिन्ता की जाय।'

हान्स अपनी बातों से मेरे घाव पर मलहम सा लगा रहा था। ऐसा लगता था मानो ये बातें मेरे किसी सगे भाई के मुँह से निकल रही हों।

उसने समय-समय पर अपना निज का उदाहरण देते हुए कहा कि लोगों को पहले स्वय अपना निज का स्वरूप देखना चाहिये और फिर उसके बाद ही किसी दूसरे के विषय में कुछ कहने का अधिकार रखने का दावा करना चाहिये। लोग ऐसा नही किया करते; इसीलिए दूसरे के विषय में वे जो कुछ भी कहते हैं उसका कुत्तों के भूँकने से कुछ अधिक महत्व नहीं। मेरे विषय मे उसने कहा कि मेरे इस प्रकार दबने अथवा चुप्पी साध लेने से लोग और भी अधिक शोख बन जायँगे तथा और भी अधिक चिढ़ाया करेंगे। मुझे उसने लोगो को उपयुक्त उत्तर देने की सलाह दी और कहा कि मैं स्वयं अपने देश के विषय में कुछ लिखूँ और वह अखबारों में छपवाया जाय। अपनी उस प्रकार की पूरी तैयारी कर लेने पर प्रोफेसर से भी टक्कर ली जा सकती है और दूसरे अखबारो के लिए लिखने पर उससे थोड़ी-बहुत 'आर्थिक सहायता भी मिल सकती है। भाषा सुधारने तथा टाइप करने का काम उसने अपने ऊपर ले लिया।

हम दोनो हँसते हुए उस 'मक्षार्दे' से बाहर निकले और दोनों को ही विश्वास हो गया कि उसी क्षण से हमारे आनन्द का समय आरम्भ हो गया है। उसके बाद जो कई घण्टे सड़क पर मैंने बिताये, उस समय भी मेरे भीतर उदासी अथवा उत्साहहीनता का कोई भाव नहीं था।

जिस समय घर लौटा मेरे पाँव आनन्द के मारे बड़ी जल्दी-जल्दी पड़ रहे थे। मुझे ऐसा दीखता था मानो नदी, पहाड़ी, आकाश, सभी मुझसे कह रहे हैं—

'तुम नीच नहीं, इसीलिए नष्ट भी नहीं हो सकते। तुम्हें नष्ट होने की बात सोचने का अधिकार ही नहीं है। हताशा, निराशा आदि को

ठोकर मार उठ खड़े हो और लड़ाई मे अपनी सारी शक्ति लगा दो। तुम्हारी विजय अनिवार्य है।'

मेरे भीतर से भी उसके उत्तर में निकल था रहा—

'नही, मैं पददलित या नष्ट नही होने का! मेरी जय अनिवार्य है।'

वे मेरे अथवा मेरे देश के विषय मे चाहे जो कह या लिख सकते हैं, मैं उसकी परवा नही करता। जो सत्य है उसे वे पलट नही सकते। उनका कथन सरासर झूठ है, इसलिए मैं उसे किसी भी हालत में स्वीकार नहीं कर सकता। मैं उसे अस्वीकार करता हूँ; इसीलिए वह मेरी बेचैनी का कारण नहीं बन सकता।

इन बातों के अपने भीतर जम जाने तथा आत्मविश्वास के भाव के जाग्रत हो जाने पर दूसरे दिन से ही पूरे उत्साह तथा साहस के साथ काम पर जुट गया। सबसे पहले अपने देश की आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थिति पर छोटे-छोटे लेख लिखना आरभ किया। मुझे लिखने की आदत नहीं थी; पर बिना लिखे उन दिनों रह भी नहीं सकता था।

एक सप्ताह के भीतर ही दो-तीन लेख तैयार हो गए और हान्स ने भी उनकी भाषा दुरुस्त कर दी। अब प्रश्न उनके छपवाने का था। मैं पहले से ही यह समझ बैठा था कि चूँकि मेरे लेख सत्य के अधिक निकट हैं, इसलिये समाचारपत्र वाले उन्हे अवश्य ही ले लेंगे। मैंने तीन लेख तीन समाचारपत्र वालो के पास भेजे। एक लेख तीसरे ही दिन की डाक से 'धन्यवाद-सहित वापस' मिला। उसके वापस करने का उसमें कोई कारण भी नहीं दिया गया था। दूसरा लेख कई सप्ताह तक प्रतीक्षा तथा काफी लिखा-पढ़ी करने के बाद इस कारण लौटा दिया गया कि उसके लिये उस समाचारपत्र में स्थान नहीं था। तीसरा लेख एक समाचारपत्र के सम्पादक ने बिना पढ़े ही रद्दी की टोकरी मे

डाल दिया था; इसलिए उसके विषय मे और कुछ पूछ-ताछ करना ही व्यर्थ था।

अपने मित्रों की सलाह से शहर के एक ऐसे समाचारपत्र के पास, जिसमे भारतवर्ष के समाचार प्रायः छपा करते थे, तथा जो पत्र भारत से सहानुभूति दिखलाता हुआ सा समझा जाता था अपना लेख पोस्ट द्वारा न भेज स्वय लेकर गया। उसके एक सम्पादक ने बाते तो मेरे साथ बड़ा ही सौजन्य दिखलाते हुए कीं पर अन्त में सलाह यह दी कि यदि प्रोफ़ेसर कुंच उस लेख को ग्राह्य मान लें तो फिर उस पत्र को उसे छापने में कोई एतराज न होगा। उसके उत्तर से अधिक कड़वा मेरे लिए शायद ही कोई उत्तर हो सकता था। प्रोफेसर कुंच की मेरे लेखों से सहमत होने की बात तो दूर रही, उनके विचारों को जानते हुए अपना लेख उनके पास ले जाना तक मैं अपने लिए बहुत बड़ा अपमान समझता था।

पर मेरे भीतर उन दिनों आशा की जैसी तरंगे उठ रही थीं, वे सम्पादकों के मेरे लेखों को अस्वीकृत कर देने से दब जाने वाली नहीं थीं। सम्पादकों के उत्तरों की मैं बिलकुल ही परवा न करता। मैं अपने को न केवल उनकी बराबरी का बल्कि उनसे श्रेष्ठ समझने लगा था। वे यदि केवल झूठी बातें ही छापना पसन्द किया करते हैं तो करते रहें! मैं उनकी परवा नहीं करता।

मैं सडक छोड कर नदी के किनारे-किनारे चलने लगा। वहाँ कोई रास्ता नहीं था। छोटी-छोटी झाडियों को लाँघता हुआ आगे बढ़ता गया।

कुछ दूर आगे जाकर खड़ा हो गया। पीछे फिर कर देखा। शहर

आँखों से ओझल हो गया था। उस ओर से नदी के पानी की कल-कल सुनाई पड़ रही थी।

आज भी वहाँ पर पश्चिमाकाश को अपने सब रंग के बादलों के साथ नदी में स्नान करते हुए पाया। सामने नदी के दोनों ओर पहाड़ियाँ दूर तक दिखलाई देती थीं और जहाँ पर वे क्षितिज में मिल जाना चाहती थीं उधर ही उनके थोड़े ऊपर चाँद अपने को उज्ले बादलों से ढक लेने की चेष्टा कर रहा था। उसकी यह चेष्टा नीचे पानी मे भी दिखलाई देती थी। एक क्षण बाद ही उजले बादलों को उसने दूर फेंक दिया और खिलखिला कर हँसते हुए स्नान करने लगा।

थोड़ी देर के लिए मैं अपने-आपको भी भूल गया। उसी स्थान पर लेट रहा और ऊपर आकाश की ओर देख कहने लगा—

'तुम कितने विशाल तथा सुन्दर हो और मैं जिनके बीच रहता हूँ वे कितने नीच तथा भद्दे हैं!'

थोड़ी देर बाद अपने-आपसे कहने लगा—

'लोग मुझे चाहे जैसा क्यों न समझे, मैं असल में जैसा हूँ खुद ही जानता हूँ।'

अपने दोनों हाथ ऊपर की ओर इस प्रकार उठाये मानो आकाश तथा उन बादलों का आलिंगन करना चाहता हूँ। फिर उन्हें कस कर दबाते हुए कहा—

'हाँ, यही मेरा वास्तविक स्वरूप है। इसे संसार का कोई भी व्यक्ति कलुषित नहीं कर सकता।'

नात्सी

राइन किनारे जिस जरमनी से मेरा परिचय हुआ था उसका रूप दिनोंदिन बदलता जा रहा था। जिन सरल चेहरों ने शुरू-शुरू में मुझे उतना अधिक आकर्षित किया था अब वे ही रूखे, कान्तिहीन और भय से काँपते हुए दिखाई देते थे। दो-एक बहुत निकट के मित्रों को छोड़ कर बाकी परिचित लोगों में इतना अधिक परिवर्तन आ गया था कि उन्हे पहचानना तक कठिन हो रहा था। उन परिचितों का पुराना हार्दिक जरमन अभिनन्दन अब विरले ही दिखाई देता। उसके स्थान पर अब वे दूर से ही अपना दाहिना हाथ तलवार की तरह फुर्ती से ऊपर उठाते और कहते—'हाइल हिटलर !'

यह परिवर्तन सारी जरमन जाति को ही किस दिशा में खींचे ले जा रहा है, यह वहाँ की विद्वद्-मण्डली ठीक-ठीक समझ पा.रही थी, पर वह उसका निराकरण करने में असमर्थ थी। अखबार, रेडियो, सिनेमा, थियेटर, स्कूल, कालेज, नौकरी—जितने कुछ भी प्रचार के साधन हो सकते हैं सब-के-सब केन्द्रीय शक्ति के हाथ में थे। वह केन्द्रीय शक्ति इन दिनों नात्सी दल के हाथ में थी। इस दल के सिद्धान्तों के अनुसार सब तरह की राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक त्रुटियों के दूर करने का

'ये लोग तो 'विचारे' हैं; इनमें तो विरोध करने की भी शक्ति नहीं है ! इनका सूत्र खींच रहा है नात्सी दल का परराष्ट्र-नीति-विशेषज्ञ आल्फ्रेड रोजेनवेर्ग। उसकी नीति के अनुसार भारतवर्ष जैसे देशों को नीचा दिखलाने तथा अपमानित करने में नात्सी लोगों का अभिप्राय अंग्रेजों से मित्रता बढाना है ! उसी मित्रता के बल पर वे यह भी आशा रखते हैं कि अपने बड़े शत्रु सोवियट रूस पर हमला कर उसे परास्त कर सकेंगे। पर यह उनकी भूल है । रोजेनवेर्ग जैसे व्यक्तियों का राजनीति की वर्णमाला तक से भी परिचय नही है। देख लेना, यह हालत अधिक दिनों तक नही रहेगी। नात्सी कम से-कम इस क्षेत्र में आँख खोल कर देखने के लिए बाध्य होंगे।'

कुछ ही सप्ताह बाद वास्तव मे ही ऐसा हुआ। भारतवर्ष के प्रति जरमन अखबारों का रुख एक-ब-एक बदल गया। जो अखबार भारत की सामाजिक और राष्ट्रीय दुर्बलताओं को लेकर उसे नीच सिद्ध किया करते थे, वे ही अब वहाँ के राष्ट्रीय आन्दोलन का समारव्यापी महत्त्व साबित कर दिखलाने लगे। मुझे उन पर आश्चर्य करते देख प्रोफेसर राइनहार्ट ने कहा—

'तुम देखना, अब छोटे-से-छोटे तक की आवाज बदल जायगी। नात्सियों की बुद्धि मोटी है। अपना वास्तविक शत्रु-मित्र उन्हें तुरन्त ही पहचान में नहीं आता। जरमनी का धनी-वर्ग अब तक सोवियट रूस को अपना सबसे बड़ा शत्रु समझता था, और विचारों तथा भावी समाज-सङ्गठन की कल्पना के सम्बन्ध में सचमुच ही इन दोनों में बहुत बडा अन्तर है। पर यह मामला बहुत-कुछ सैद्धांतिक ठहरा, इसलिए इसका आर्थिक प्रश्नों के समान महत्व नहीं है। आर्थिक मामलों मे इस समय सोवियत-जरमन सङ्घर्ष उतना अधिक नहीं रह गया है और इस क्षेत्र मे सबसे बडी दुश्मनी अंग्रेजों से है। उनके

साथ जरमनी की दुश्मनी इस सीमा को पहुँच चुकी है कि विना लड़ाई के और कोई चारा नहीं। अंग्रेजों से लडाई ठनेगी, अब यह हिदायत नात्सी दल को ज्यो ही जरमनी के धनी-वर्ग ने दी कि उस दल को बाध्य होकर अपनी नीति पलट देनी पड़ी। जिसे वे कल गाली देते थे उसकी ही अब वे सराहना करेंगे। देखना, अब अखबारों का रुख पलटते ही साधारण नात्सी सदस्य भी अपनी बोली बदलेंगे। प्रोफेसर कुच के भी विचार वहीं से नियन्त्रित होते हैं, इसलिए वे भी पलटेंगे। ऊपर से सिर्फ आदेश आने की देर है; हम जरमन लोग आदेश पालन करना खूब अच्छी तरह जानते हैं।'

मध्यम वर्ग के जिन नेताओं को अभी हाल तक अलग-अलग छोटे-छोटे दल क़ायम कर एक-दूसरे के साथ झगड़ते देखा था वे सब-के-सब अब एक ही नात्सी सिद्धात का समर्थन करने लगे थे। ये इस समय उस सिद्धात की महत्ता का गुणगान कर रहे थे। जो अभी कल ही उनके लिए देश का सबसे बड़ा नुकसान करने वाला था एकमात्र वही अब जरमनी में नया प्राण फूँकने वाला समझा जाने लगा था।

कुछ ऐसे भी नेता थे जिन्होंने अब तक जरमन जाति की राष्ट्रीयता की भावना की अवहेलना की थी, उसे बहुत अधिक सकीर्ण और हेय साबित करने की चेष्टा की थी। अब वे ही लोग रास्तों पर सबसे आगे-आगे काली या खाकी नात्सी वर्दी लगाये—'जरमनी, जरमनी, जरमनी—संसार में सबसे ऊँचा' यह जरमन राष्ट्रीय गान गाते चलते दिखाई देते थे।

जो अपने को मनुष्या के भावों का ठेकेदार तक मान बैठे थे उनकी भी आवाज पलट गई थी। ये अपने को पहले फ्रांसीसी लोगों से कहीं अधिक मनुष्यता का हिमायती समझते थे। इनके सिद्धांत के अनुसार मनुष्यता के भावों का उद्भव जरमनी से हुआ था; उस आदर्श के

लिए मर-मिटने वाले भी वे अपने को ही समझा करते थे। फ्रांस से लड़ने के पक्षपाती जरमन देश-भक्तों के साथ इनका झगड़ा चला करता था। वे देश-भक्त बाहरी शत्रु से लड़ने के पहले अपने देश के इन मनुष्यता के हिमायतियों से ही निपट लेना चाहते थे। अब इन दोनों दलों के लोग देखने लगे थे कि उनके आपसी झगड़ों का निबटना तो बहुत दूर की बात रही, यदि वे और अधिक उसी भाँति झगड़ते रहे तो शत्रु आकर देश और मनुष्यता दोनों को ही एक ही बार में नष्ट कर देगा।

अब प्रश्न उठता था—'वास्तविक शत्रु कौन है?' इस पर भी ग़ौर करने की साधारण जरमन लोगों को आवश्यकता नहीं थी। इस पर बहस-मुबाहिसा भी बलपूर्वक दबा दिया जाता था। जरमनी का धनी-वर्ग जिधर इशारा करता नात्सी उधर ही अपना शिकार देखते और सारे जरमन राष्ट्र को उधर ही टूट पड़ने का हुक्म देते। पहले जरमनी में निवास करने वाले यहूदियों की बारी आयी। कुछ धनी कारखानेदार यहूदी पूँजीपतियों के माल से अपने माल को निम्न कोटि का और महँगा पाते थे; उनके लिये प्रतिद्वन्दिता करना मुश्किल था। यह झगड़ा सबसे पहले निपटाने के लिये नात्सी लोगों का इशारा यहूदियों की ओर कर दिया गया। यहूदियों के खिलाफ जिहाद बोल दिया गया। जब इसकी पोल जरमन जनता के सामने खुलने-खुलने को हुई तो उसका ध्यान देश के समाजवादी दल की ओर फेर दिया गया। और इस आन्दोलन का नामकरण हुआ—'जरमन मजदूर दल की एकता का प्रयत्न!' देश के भीतरी विरोधियों की ओर जब और अधिक ध्यान अटकाये रखना सम्भव नहीं हुआ तो वह बाहरी देशों की ओर फेरा गया। पर राज्य-शक्ति का मूल सिद्धांत यही बना रहा कि चाहे जैसे भी हो, मजदूर अपनी दृष्टि धनी लोगों द्वारा अपनाये हुए धन की ओर न फेरें। संसारव्यापी आर्थिक संकट द्वारा उनके पेट में भूख

की ज्वाला जब अधिक प्रज्वलित होने लगी तो उन्हे बताया गया कि उस भूख का कारण आस्ट्रिया का जरमनी से अलग होना, जेकोस्लोवाकिया के जरमनों की निम्न अवस्था, पोलैंड वालों द्वारा दान्तिसग के जरमनों का कुचला जाना और इन सबके पीछे फ्रांस का जरमनी को घेर रखने का कुचक्र है। फ्रांस ने ही तो वरसाइ की सन्धि द्वारा जरमन जाति का इतना बड़ा अपमान किया था और जरमन राष्ट्रीयता को कुचल रखने की चेष्टा की थी!

जरमनी का सबसे बड़ा शत्रु फ्रांस घोषित किया गया। इसका सबसे बड़ा कारण जरमन धनी-वर्ग, अपने हित की दृष्टि से, यही देखते थे कि उसीकी आड़ में उनके माल और व्यवसाय का सबसे बड़ा प्रतिद्वन्दी—ग्रेट ब्रिटेन—छिपा है। ब्रिटेन और जरमनी के बीच युद्ध छिड़ने पर फ्रांस किसी भी हालत में तटस्थ नहीं रह सकता था, यह भी वे जानते थे। वे इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि ब्रिटेन पर वार करते समय उन्हे पहला आघात फ्रांस ही पर करना पड़ेगा। इसीलिए जरमन राष्ट्र को फ्रांस के खिलाफ जिहाद छेड देने के लिए तैयार किया गया।

इसलिए देखते-ही-देखते जरमन-फ्रांसीसी सीमा पर मोर्चेबन्दी पक्की कर डाली गई। देशकी सम्पत्ति का बहुत बड़ा हिस्सा युद्धोपयोगी शस्त्रास्त्र की तैयारी मे खर्च किया जाने लगा। प्रत्येक जरमन में, बच्चे-बच्चे तक मे, तोप के मुँह में घुस जाने के लिए तैयार रहने का भाव भरा जाने लगा। देश का सारा वायुमण्डल युद्ध का वायुमण्डल बन गया। इस प्रकार वस्तुतः युद्ध तो बहुत पहले ही, उसी समय, आरम्भ हो चुका था। सिर्फ उसका विस्फोट और उसके द्वारा होने वाला सहार संसार को देखना बाकी था।

प्रोफेसर राइनहार्ट-जैसी प्रकृति के जरमन विद्वान् अपने सामने का वह सब परिवर्तन देख कर अपनी दृष्टि सुदूर भविष्य की ओर फेरते और

विचार में पड़ जाते। उनके भीतर प्रश्न उठता—

'यह युद्ध क्यों? यह मनुष्य-संहार हमें कहाँ ले जाकर पहुँचायगा?'

उन दिनों इस प्रकार का प्रश्न उठना भी देशद्रोह में शुमार कर लिया जाता था। नात्सी सरकार जरमन जनता को अपनी नीति में अन्धविश्वास रखने के लिए विवश करती थी। उसे भय था कि यदि लोगों के बीच वैसे प्रश्न उठे और जनता तनिक भी सन्देह मे पड़ गई तो युद्ध की तैयारियाँ पूरी तरह से नहीं चल सकेंगी। सभ्य जरमन न तो वास्तविक लक्ष्य पहचान लेने पर वैसे नीच आदर्श के लिए वैसा त्याग करने के लिए तैयार होंगे और न वहाँ के नौजवान आधुनिक युद्ध में अपना संहार कराने के लिए जरमनी की सीमाओं पर जायँगे।

पर इस प्रकार का प्रश्न न उठाना प्रोफ़ेसर राइनहार्ट-जैसे विद्वानों को अपनी बुद्धि का अपमान करना मालूम होता था। यह प्रश्न उठाने का क्या परिणाम होगा, इस पर भी वे भली भाँति विचार कर चुके थे। वे कहते—

'हमारे सामने जरमनी की मृत्यु हो रही है, यूरोप रसातल को जा रहा है; यदि हम लोगों ने नात्सी सिद्धांतों के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई तो इतने परिश्रम से गढी गई हमारे पश्चिम की सभ्यता की बुनियाद ही खोखली हो जायगी, हमारे देश के बड़े-से-बडे विचारकों का सदियों का परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। सारी यूरोपीय सभ्यता और विशेषकर जरमन सभ्यता के लिए यह सबसे अधिक खतरे का समय है। हम लोगों का तटस्थ अथवा चुप रह जाना उसे अवश्य ही नष्ट कर देगा। अगर हमारी आवाज द्वारा और कुछ नहीं हुआ— ये मामले आगे बढते ही रहे, मनुष्य-संहार चरम सीमा को पहुँचा ही दिया गया—तो भी आगे आने वाले ऐतिहासिक इतना तो स्वीकार

करेंगे कि जरमनी में सभ्य मनुष्य भी रहते थे, जिन्होंने अपनी सभ्यता को बचाने की चेष्टा में अपना प्राण न्योछावर कर दिया। यह मौत आदमियों की मौत होगी।'

जब कभी कोई उनके सामने वरसाई की सन्धि द्वारा किये गये जरमनी के अपमान की चर्चा करता और उसके लिए फ्रांस अथवा यूरोप के और राष्ट्रों को दण्ड देकर उनसे प्रतिशोध लेने की बात उठाता तो वे कहते—

'इस प्रतिशोध का असर बिलकुल ही उलटा होगा। जिन राष्ट्रों के खिलाफ हम लड़ेंगे उन्हे यदि हम परास्त करने मे सफल भी हुए तब भी उन्हें हम उपनिवेशों की तरह अपने चगुल में नहीं रख सकेंगे। उनकी सभ्यता हमारी ही तरह विकसित है; वे एक हो जायँगे और फिर मजबूत हो जाने पर उसी तरह का प्रतिशोध हमसे लेंगे। यह चक्र हमारी पश्चिमी सभ्यता के नेस्तनाबूद हो जाने तक चलता रहेगा। पर एक लक्षण अच्छा दिखाई देता है; और इसीलिए उम्मीद होती है कि इतनी दूर तक मामला नहीं बढ़ेगा। जरमन जनता को बहुत अधिक ठगा गया है। उसकी गरीबी ज्यों-ज्यों युद्ध के कारण बढ़ती जायगी, त्यों-त्यों वह युद्ध का वास्तविक लक्ष्य समझती जायगी और यह प्रश्न करने लगेगी—'किसके फायदे के लिए यह लडाई लड़ी जा रही है? इस समय हमारा स्थान कहाँ है और लड़ाई के बाद कहाँ पर रहेगा?' इस ढङ्ग के प्रश्नों का प्रत्येक महायुद्ध के बाद उठना स्वाभाविक है। गत महायुद्ध के बाद भी ये प्रश्न उठे थे; उस समय जनता जगी थी, लोगों ने अपना वास्तविक शत्रु पहचाना था। जहाँ तक पहचानने का प्रश्न है, याद रखो, हम जरमन वैज्ञानिकों की जाति हैं। हम जन्म से ही वैज्ञानिक प्रकृति के होते हैं। अगर किसी चीज को पहचानते हैं तो भली भाँति उसकी तह में पहुँच कर उनसे परिचय

प्राप्त करते हैं। यही हमारी जाति की सबसे बड़ी विशेषता है। आज हम ;नात्सी सरकार का हुक्म मान कर चल रहे हैं, किन्तु साथ ही आँखे खोल कर यह भी देख रहे हैं कि उनकी नीति हमें किस दिशा में लिये जा रही है। वे हमे भटकाते रहना चाहते हैं, सारी जनता को भटकाते रहना चाहते हैं, पर युद्ध में कथित शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर चुकने पर भी हमेशा इसी प्रकार जरमन जाति को भटकाते चले जाना सम्भव नही होगा। लोग 'फ्रट' पर शत्रुओं का सहार कर जब घर लौटेंगे तो सबसे अधिक ताज्जुब उन्हे इसी बात पर होगा कि उनका वास्तविक शत्रु तो घर में ही था, वे नाहक ही देश की सीमा के बाहर जाकर इतनी खून-खराबी करते रहे। उस समय वे देश की सम्पत्ति और देश के विचारों का वास्तविक शोपण करने वालों को, जरमन और उसके साथ ही सारी यूरोपीय संस्कृति को रसातल की ओर ले जाने वालों को पहचानेंगे और उनसे प्रतिशोध ले कर ही शान्त होंगे।'

थोड़ा विचार कर उन्होने फिर कहा—

'उस समय हमारे-तुम्हारे विचार के अनुसार नही, बल्कि अपने वास्तविक अनुभवों के आधार पर वे नये ढङ्ग से समाज-सङ्गठन करेंगे और ससार के सामने युद्ध की नहीं, बल्कि स्थायी शाति की नए ढङ्ग की योजना पेश करेंगे। तुम देखना, हमारी जरमन जाति उस समय पीछे नहीं रहेगी। हम संहार की क्रिया में यदि आगे जाना जानते हैं तो साथ ही सृष्टि करना भी हम जानते हैं। और जातियों मे हमारी जाति में फर्क इतना ही रहता है कि जब हम सृष्टि करते हैं तो हवा में नहीं करते। हमारी सृष्टि 'मनुष्यता'-'मनुष्यता' की डींग हाँकते हुए नहीं होती; हम पहले अपना काम कर देते हैं और फिर उसके बाद उसकी चर्चा करते हैं।'

विश्वविद्यालय के प्रायः सब प्रोफेसरों ने क्लास में आने पर 'हाइल हिटलर' की सलामी दे पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। सिर्फ प्रोफेसर राइनहार्ट ने अपना पुराना जरमन तरीका कायम रखा था। विश्वविद्यालय के नात्सी 'अधिकारी तथा नात्सी दल के विद्यार्थियों को प्रोफ़ेसर राइनहार्ट का यह वर्ताव खटका करता। उन विद्यार्थियों के नेता ने उनसे एक दिन उनके पढना शुरू करने के पहले ही प्रश्न किया—

'आप नात्सी सलामी क्यों नही देते ?'

'मैं बूढ़ा हुआ', प्रोफेसर राइनहार्ट ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—'बूढों को पुरानी चीजो में ही अपनापन दीखता है।'

'अगर आपने नात्सी सलामी नहीं दी तो हम आपके क्लास में नही आयेंगे।'

'मैं इसे अपना और पुराने जरमनी, दोनों का दुर्भाग्य मानूँगा।'

'आप जरमनी के शत्रु हैं!' नात्सी विद्यार्थी-दल के नेता ने घोषित किया और वहाँ से उठ कर चला गया। उसके पीछे-पीछे नात्सी दल के सब सदस्य और बाद में और विद्यार्थी भी सजा के डर से उठ कर चले गये। मैं अकेला अपने स्थान पर बैठा रहा।

'मुझे एक विद्यार्थी का तो गर्व रहेगा!' कहते हुए प्रोफेसर मुझे अपने साथ लेते हुए बाहर निकले। दरवाजे के पास खडे नात्सी विद्यार्थी दल के दो नेता प्रोफेसर राइनहार्ट को सुना कर आपस में बातें करने लगे—

'यह प्रोफेसर अपने को बहुत बड़ा विद्वान् समझता है।'

'और फिर भी इतना मूर्ख है कि 'हाइल-हिटलर' नहीं करता!'

'अजी मूर्ख नहीं, पागल हो गया है।'

'हाँ, ठीक कहा, पागलखाने में जाने की यह काफ़ी योग्यता रखता है।'

अच्छी थी। उसी धुँधले प्रभात मे सङ्गमरमर का एक विशाल मन्दिर मोटे-मोटे तथा बड़े ऊँचे पायों के साथ दिखलाया गया था। उस मन्दिर के बीच आँगन मे कोई व्यक्ति खड़ा बाँसुरी बजा रहा था। पहले तो उस व्यक्ति ने अपने पाँव ठीक उसी प्रकार रखे थे जैसे कृष्ण-लीला में कृष्ण के पाँव बाँसुरी बजाते समय रहा करते हैं। फिर धीरे-धीरे उसी बाँसुरी के ताल मे उसने नाचना भी शुरू कर दिया। पर्दे के भीतर से तबला, सारगी तथा और भी कई बाजों के धीरे-धीरे बजने की आवाज आ रही थी और उस व्यक्ति के पैरो मे जो घुँघरू बँधे थे उनकी आवाज पर्दे के भीतर से आने वाली आवाज को दबाती हुई नाच का वास्तविक ताल दे रही थी।

मैं अपने देश के सगीत से भली भाँति परिचित नहीं था, फिर भी मेरे लिए यह पहचानना कठिन नही हुआ कि वह व्यक्ति जिस स्वर में बाँसुरी बजा रहा था तथा नाचता जा रहा था उसका ताल चौताल तथा राग भैरवी था। वह संगीत ऐसा समझ पड़ रहा था मानो हम अभी प्रभात की नींद में सो रहे हों और कोई बड़ी ही सावधानी से सुरीले राग मे हमें धीरे-धीरे जगाने का प्रयत्न कर रहा हो। जगाने वाला अपने जानते इसका भरपूर प्रयत्न कर रहा था कि कहीं सोने वाले यह न समझ बैठें कि कोई उनके बिलकुल पास ही बैठा गा रहा है। इतने निकट से गाने पर भी ऐसा दीखता था मानो वह आवाज कहीं दूर से आ रही है।

जब सामने स्टेज पर धीरे-धीरे फिर घोर अन्धकार छा गया और बाँसुरी की आवाज सुदूर अतीत में लुप्त हुई सी दीखने लगी और नर्त्तक भी नहीं दिखलाई देने लगा तो मेरी नींद टूट गई। मेरे चारों ओर बैठे लोग तालियाँ पीटने लगे थे। उन तालियों के पीटने की आवाज़ कानों में ऐसी कर्कश लगने लगी कि इच्छा हुई कि जितने लोग मेरे

चारों ओर बैठे हैं उनके गालो पर उसी प्रकार बिना सोचे-समझे तमाचे जड़ने लगूँ। पर अजीब बात तो यह थी कि बाँसुरी बजाने वाला फिर स्टेज पर आ लोगों की ओर देख कर तथा अपने दोनों हाथ उठा-उठा कर भारतीय ढङ्ग से उन्हे नमस्कार कर रहा था। हाँ, इतनी बात अवश्य थी कि इस समय स्टेज पर काफ़ी उजाला कर दिया गया था। लोग जितनी ही अधिक तालियाँ पीटते, वह नर्त्तक उन्हे उतना ही झुक-झुक कर प्रणाम करता। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि ताली पीट-पीट कर जिन लोगों ने उसके सगीत की मधुरता फीकी कर दी है, आखिर वह ग़ुस्से में भर कर उन्हे कम-से-कम घूँसा क्यों नहीं दिखलाता। उसका यह कार्य मैं स्वयं पूरा कर रहा था। अच्छा था कि लोग न तो मेरी ओर देख रहे थे और न उन्हे देखने का मौका ही मिला ; क्योंकि फिर उस हॉल मे अँधेरा कर दिया गया !

इस बार जब पर्दा हटा तो स्टेज पर उस पहले के मन्दिर के सामने एक नदी बहती हुई दिखलाई दी और बहुत दूर पर सर उठाकर खड़े हुए पहाड़ भी दिखलाई देने लगे। पहली बार की अपेक्षा इस बार वहाँ पर कुछ हल्की सी रोशनी थी जिसके कारण धुँधलापन दूर हो गया था। इस बार उस दूर की पहाड़ी से सूर्य की प्रथम किरणें निकलती हुई दिखलाई दीं। अभी लोगों का ध्यान उस उगते हुए सूर्य की ओर जा ही पाया था कि उसी समय चुपचाप नदी-किनारे साडी पहने हुए एक युवती गाती हुई दिखलाई दी। उसके दोनों पाँवों में छोटे-छोटे घुँघरू बँधे थे जिनकी आवाज उसके आगे बढने के समय स्पष्ट सुनाई देती थी। नदी-किनारे पहुँच कर वह रुक गई और नाचने लगी। यह 'गङ्गापूजा-नाच' था।

मेरे ठीक सर के उपर से किसी के खिलखिला कर हँसने की आवाज आई। उस हँसने वाले की ओर बिना देखे ही अपने को

जितना कुछ रोका जा सकता था, रोकते हुए मैंने कहा—'मूर्ख !'

लोगों के तालियाँ पीटते रहने के कारण मेरी आवाज अपने चारों तरफ़ के घेरे तक भी नहीं पहुँच पाई।

अन्तिम नाच नटराज का रुद्र रूप मे ताडव-नृत्य था। वह मुझे उस समय खास तौर से अच्छा लगा, क्योंकि उस नाच में जो क्रोध दिखलाया जा रहा था उसी में मुझे जीवन की वास्तविकता दिखलाई दी और उसकी तुलना मे पहले के भावुक नाच बिलकुल झूठे तथा असत्य जान पड़े।

नटराज के नाच का मञ्च पर जिस गुस्से में अन्त हुआ, मैं भी न मालूम क्यों अपने भीतर वैसा ही गुस्सा महसूस करते हुए उठ खड़ा हुआ और दरवाजे की ओर बढ़ा। दूसरे लोग खड़े तालियाँ पीट रहे थे। हान्स भी ताली पीट रहा था। मैंने उसका हाथ पकड़ कर खींचा और उसके 'ठहरो-ठहरो' की परवा न कर उसे ढकेलता हुआ दरवाजे के पास ले आया। दरवाजे से बाहर निकलने वाले सबसे पहले आदमी हमीं दोनों थे।

हान्स उस समय क्या सोच रहा था, मुझे मालूम नहीं ! मैं स्वयं केवल नटराज के ताण्डव-नृत्य की बार-बार याद करता हुआ बाहर सड़क पर आ निकला।

नाच देखने के बाद हम लोग भोजन करने यूनिवर्सिटी-काफे में पहुँचे। हमारे पहुँचते ही उस काफे के केलनरों ने हमें सलाम किया। उस सलाम का भी मेरे मन में उस समय इसीलिये महत्व था कि मेरा सलामालेकुम उन दिनों किसी दिन ही और किसी-किसी व्यक्ति से ही हुआ करता था। अपने चारों ओर बिना देखे ही हम लोग एक किनारे जा बैठे। अभी केलनर ने फेन से भरा हुआ बिअर का गिलास हम

लोगों के सामने लाकर रखा ही था कि जिस रास्ते से हम लोग उस काफे में घुसे थे उधर से ही आगे-आगे केटी और उसके पीछे-पीछे लोकनर वहाँ आ धमके। मैंने अपना रुख इस तरह रखा मानो उन्हे देखा ही नही और हान्स से कहा—

'अब यहाँ से चला जाय !'

वह हँसने लगा। उसी समय हमारी बगल से बडे ही मधुर स्वर मे सुनाई दिया—

'गुतेन आवेन्द ''

मजबूर होकर मुझे केटी की ओर देखना और उससे हाथ मिलाना पड़ा। लोकनर ने भी मुसंकराते हुए अपना हाथ मेरी ओर बढाया। उससे उस समय हाथ न मिलाना सामाजिक नियम के खिलाफ होता; इसलिए उससे भी हाथ मिला कर मै फिर अपने स्थान पर बैठ गया। वे दोनों भी हम लोगो के पास की ही एक मेज पर जा बैठे। उस मेज पर मार-पीट करने वाली किसी विद्यार्थी-संस्था का एक सदस्य पहले से ही बैठा था। उसके गाल, होंठ तथा सिर पर तलवारो के निशान थे और किसी से बातें करते समय बड़ी शान से उन निशानों को सामने रख कर बाते करता था, चाहे वैसा करने से वह कुबड़ा सा भले ही मालूम पड़ता हो—इसकी उसे परवा नही थी। वह शायद लोकनर का परिचित था; क्योंकि उससे केटी का भी उसने ही परिचय कराया। संयोग से मेरी कुर्सी का रुख भी उसी ओर था ; इसलिए इच्छा न होने पर भी उन लोगों की ओर मुझे देखना ही पड़ता था। अपनी मेज पर बैठे विद्यार्थी से मेरा परिचय कराते हुए लोकनर ने कहा—

'आप भारतवर्ष मे ठीक गङ्गा-तट के रहने वाले हैं।'

मुझे पता नही, इस रूप में मेरा परिचय देने में लोकनर का क्या

उद्देश्य था। जो भी हो, उस विद्यार्थी की ही तरह मैंने भी अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे ही झुक कर उसे नमस्कार कर लिया। वह विद्यार्थी शायद अब तक इसी ताक मे था कि उसे बोलने का कोई मौक़ा मिले। परिचय होने के साथ ही उसने भारतीय सगीत तथा नृत्य की प्रशंसा की झड़ी लगा दी। मुझसे वह इस बात का खुलासा कराना चाहता था कि आखिर मामूली बाँस की बाँसुरी से इतनी सुन्दर आवाज क्योंकर निकलती है! वह बहुत देर तक नृत्य-सगीत-विशारद होने का अपना परिचय देता रहा। मेरे कान उस समय उस विषय पर लोकनर के विचार सुनने के लिये उत्सुक हो रहे थे। केवल उसी समय नही, बल्कि पिछले कितने दिनों से ही अज्ञात रूप में मेरे भीतर यह इच्छा रहती चली आ रही थी कि लोकनर को चिढा हुआ देखूँ। उसके मुँह की वह बनावटी हँसी मैं बरदाश्त नहीं कर सकता था। मेरी आतरिक इच्छा थी कि लोकनर को चिढ़ता हुआ देखूँ और फिर उस समय स्वय हँसूँ जिससे उसकी चिढ़ का पारा बहुत ऊँचा चढ़ जाय।

उस विद्यार्थी के मुँह से भारतीय नृत्य-संगीत की प्रशसा सुन कर लोकनर के चेहरे पर जिस प्रकार का भाव आता जा रहा था, उसी से मैंने अन्दाजा लगा लिया था कि आज उससे कोई-न-कोई मूर्खतापूर्ण कार्य अवश्य ही हो जायगा। थोड़ी देर चुप रहने के बाद लोकनर भी भारतीय नृत्य तथा संगीत पर टीका-टिप्पणी करने लगा। उसकी टीका-टिप्पणी उस विषय के अच्छे जानकार के विस्तृत रूप में व्याख्या करने वाले व्याख्यान का रूप धारण करती जाती थी। उसके कथनानुसार भारतीय वाद्य-यन्त्रों की तुलना थाली पीटने, उसके गाने के स्वर की मुर्गे के बाँग देने और नृत्य की कौए के पङ्ख हिलाने से की जा सकती थी! अपनी समझ से इन सुन्दर-से-सुन्दर उपमाओं के

ढूँढ़ लेने पर वह भारतीय वाद्य, गान और नृत्य के आदर्श की विवेचना करने लगा। इस विवेचना मे सारी भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को भी घसीट लाने से वह बाज़ नही आया, और अन्त में सिद्ध करने लगा कि इन सबका लक्ष्य केवल एक है और वह है अपनी काम-वासना का वीभत्स-से-वीभत्स रूप सामने रखना, और फिर उसकी आराधना मे ही अपनी सारी शक्ति लगा देना। इतना कह-चुकने पर शिव और पार्वती, कृष्ण और राधा, राम और सीता आदि के प्रेम के प्रमाण सामने रखता हुआ अपने कथन की पुष्टि करने लगा।

मैंने अपने को काबू में रखने का पहले से ही निश्चय कर लिया था, इसलिये सारे क्रोध के आवेग को दबाते हुए तथा तीव्र तीखी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए मैंने कहा—

'संसार की सुन्दर-से-सुन्दर तथा उच्च-से-उच्च वस्तु को अपनी आँखों द्वारा वीभत्स-से-वीभत्स तथा घृणित-से-घृणित बना कर देखने की आपकी आँखों में अद्भुत क्षमता है।'

मेरी यह बात लोकनर के लिए चुभने लायक सिद्ध नहीं हुई। दूसरे ही क्षण अपनी बात पुष्ट करने के लिए वह बोला—

'सचमुच भारतीय गान सुन कर मुझे बिल्लियों का म्याऊँ-म्याऊँ करना और नाच देखकर कौओं का पङ्ख हिलाना याद आने लगता है।'

अनुकूल उत्तर देने की इच्छा से मैंने पहले की ही तरह शाति रखते हुए कहा—

'और मुझे आपके यहाँ का गाना सुन कर गधों का रेंकना और नाच देख कर मेढ़कों का फुदकना याद आने लगता है।'

यह बात लोकनर के दिल में जा चुभी। उसने बातचीत का सिलसिला बदल मेरी व्यक्तिगत बातों पर कटाक्ष करते हुए कहा—

'किसी चोर के कहने से हमारा गान या नाच खराब नहीं बन सकता।'

'भारतीय गान-नृत्य के विषय में ठीक यही बात आप पर लागू होती है।'

अब आपे से बाहर हो लोकनर कहने लगा—

'तुम्हे इस तरह की बाते करने का अधिकार नही है। अपने लिए यही बहुत समझो कि अब तक पुलिस के हवाले नहीं कर दिये गये। तुम्हारा जैसा पासपोर्ट लेकर रहने वालों के लिए जेल में स्थान है, उन्हे इस प्रकार खुल कर रहने या बातें करने का अधिकार नही।'

मैंने झुंझला कर कहा—'चुप रह कुत्ते! तुझ जैसे घृणित कुत्तों से, जो किसी भी पवित्र वस्तु को अपवित्र बना दिया करते हैं, बातें करने में मैं स्वयं ही अपना अपमान समझता हूँ।'

मेरी ये बातें सुन कर वह मेरे ऊपर अपने सामने का काफे का प्याला फेंकना चाहता था और मैं भी जवाबी हमले के लिए अपने सामने का बिअर का गिलास थामे बैठा था; पर मुझे हान्स ने पकड़ लिया और लोकनर को उसकी मेज पर बैठे उसके परिचित विद्यार्थी ने। उस काफे में जितने लोग बैठे थे, हम लोगों को घेर कर तमाशाई की तरह आ खड़े हुए। लोकनर उठ कर खड़ा हो गया और चिल्ला कर कहने लगा—

'अभी पुलिस बुलाओ। इसे पुलिस के हवाले करो। इसने··· इसने······'

अब तो वह तुतलाने सा लगा। उसे उस अवस्था में देख कर में सचमुच ही हँसने लगा। पर लोकनर ने आगे जो कहा, उसे सुन कर तो मैं अपनी कुर्सी से उछल पड़ा। उसने कहा—

'इसने हमारे देश की लड़कियों की इज्जत ली है।'

मैं झपट कर उसके पास जा पहुँचा और बोला—

'जब तक तुम मुझे अपमानित करते रहे, मैं बर्दाश्त करता गया, पर मुझे अपमानित करने के साथ-ही-साथ यदि किसी लड़की को अपमानित करना चाहोगे, तो मैं बर्दाश्त नहीं कर सकूँगा। तुम्हारी अपेक्षा मैं लड़कियों को हजारगुना अधिक आदर की दृष्टि से देखता हूँ।'

'यही पूछ कर देख ले!'

'चुप रह झूठा! नही तो···' इतना कह मैंने उसकी ओर फेंकने के लिए अपना बिअर का गिलास हाथ मे ले लिया था, पर ठीक इसी समय काफे के मालिक ने आकर मुझे पकड़ लिया और दरवाजे की ओर ले जाते हुए कहा—

'आप लोग कहीं पागल तो नहीं हो गये हैं! यह काफे है कि खेल का मैदान?'

'मैं खुद ही अब तुम्हारे काफे का मुँह नहीं देखना चाहता।' मैं यह दुहराता-तिहराता जा रहा था और हान्स मुझे खींचे हुए समझाता हुआ बाहर लेता जा रहा था। मेरे पीछे-पीछे मुझे पकड़ने के लिए शोर मचाता लोकनर आ रहा था और उसका परिचित विद्यार्थी उसे पकड़ रखना चाहता था। लोकनर कह रहा था—

'देखो! चोर भाग न जाय! पकड रखो! पुलिस बुलाओ! उसने······'

ठीक दरवाजे पर आकर हम दोनों फिर खडे हो गए। सब एक-दूसरे का दरवाजा रोके हुए थे, कोई भी बाहर नहीं निकल पा रहा था। लोकनर और मैं दोनों ही हल्ला मचा रहे थे और अपनी-अपनी बात ही हम खुद नहीं समझ पा रहे थे। जिस विद्यार्थी ने लोकनर को पकड़ रखा था उसने गम्भीर होकर कहा—

'हम लोग यह मामला खुद तय करेंगे। हम सभी विद्यार्थी ठहरे। बिना मामला तय हुए कोई भी घर नही लौटेगा। पर मामला तय करने का यह स्थान नही। हम लोग अपनी सामाजिक कोठरी मे चले।'

वह विद्यार्थी हमारा नेतृत्व करने लगा और हम लोग उसके पीछे-पीछे चुपचाप एक-दूसरे को घुड़कते हुए चलने लगे। वह सामाजिक कोठरी वहाँ से दूर नहीं थी। उस कोठरी मे उस समय और कोई भी नही था; केवल हम पाँच विद्यार्थी वहाँ जा घुसे। एक लम्बी मेज के दोनों ओर आमने-सामने लोकनर और मैं बैठाये गए। हान्स मेरे पास, और अपरिचित विद्यार्थी लोकनर के पास मेज पर ही बैठ गये। केटी हम चारों के बीच एक कुर्सी पर बैठ गई। अपरिचित विद्यार्थी ने ही कहना शुरू किया—

'अब शाति से मामला तय किया जाय। पहले यह तय किया जाय कि दोष किसका है?'

अभी वह अपरिचित विद्यार्थी अपना वाक्य भी पूरा नही कर पाया था कि हाथ का इशारा करके लोकनर ने कहा—

'उस निग्रो (हबशी) का।'

हान्स ने उसका जवाब दिया—

'आपकी बात सरासर झूठ है। ये निग्रो नही।'

'निग्रो हो या और किसी काली जाति का, इसे हमारी लड़कियो को अपमानित करने का अधिकार नही।'

'कौन कहता है कि उसने अपमानित किया है?' हान्स ने पूछा।

लोकनर केटी की ओर देखने लगा। वह सर नीचा किये अपने पाँवों की ओर देख रही थी। उससे लोकनर ने पूछा—

'क्यों? मेरी बात सच नहीं?'

केटी ने कोई उत्तर नही दिया।

'केटी! तुमसे पूछता हूँ, क्या मेरी बात ठीक नहीं?' लोकनर ने अपना प्रश्न दुहराते हुए पूछा।

'नही।' केटी ने बिना सर ऊपर उठाये ही उत्तर दिया।

लोकनर ने जो उत्तर सुना उस पर उसे विश्वास नही हुआ। उसने पहले की भी अपेक्षा अधिक कर्कश स्वर में पूछा—

'उसने तुम्हे कभी अपमानित नही किया?'

'नहीं! उनका व्यवहार मेरे साथ सदा ही शुद्ध रहा है, उनके व्यवहार मे कभी भी अपमान करने का भाव छू तक नहीं गया था।'

लोकनर अपनी ही निगाह मे अपने को अपमानित हुआ सा देखने लगा। वह इसे सहन नहीं कर सका और उलटे उस पर पर्दा डालने के लिए केटी से पूछा—

'कही तुम पर किसी ने जादू तो नही कर दिया है?'

'हाँ! हिन्दुस्तानी जादूगर भी हुआ करते हैं।' हान्स ने हँसते हुए तथा तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा।

केटी ने पहले की ही तरह शांत रूप मे कहा—

'मुझ पर यदि कोई जादू चलाना भी चाहे तो नहीं चलने का। जो सच बात है वही मैं कह रही हूँ।'

लोकनर के चेहरे से यह स्पष्ट झलकने लगा था कि उसका मेरे ऊपर का आक्षेप झूठा था, पर फिर भी जोर डाल कर अपनी पुष्टि केटी से कराना चाहता था और इसीलिए उसे भयभीत करने वाले शब्दों में पूछा—

'फिर मैं झूठा हूँ?'

केटी चुप रही। इससे लोकनर की व्याकुलता और भी अधिक बढ़ने लगी। उसने अब लम्बे लम्बे वाक्यों की शरण ली और इस प्रकार

अपने भीतर के सत्य पर पर्दा डालने का प्रयत्न करना चाहा। उसने कहा—

'जो आदमी अपनी घर-मालकिन का सेब चुराने से भी नहीं हिचकता, जिसके नीच आचरण की गवाही उसका सारा मुहल्ला है, वही तुम्हारी दृष्टि में सच्चा और मैं झूठा हूँ, क्यों ?'

'मैं अफवाहों पर विश्वास नहीं करती।'

'और मेरे कथन पर ?

'यदि तुम्हारे कथन का आधार वे अफवाहे ही हैं तो उन पर भी नहीं।'

'तो इसका मतलब यह है कि इस काले आदमी की तुलना मे तुम मुझ-जैसे एक जरमन को, जो नात्सी दल का भी सदस्य है, झूठा और नीच समझती हो ! फिर हमारा-तुम्हारा प्रेम······'

पर बीच में ही लोकनर को रुक जाना पड़ा। केटी का चेहरा लाल हो आया था। उसने लोकनर की ओर इस प्रकार देखा मानो जितना कुछ भी क्रोध-मिश्रित धिक्कार का भाव हो सकता है उसे उसने अपनी आँखों में भर लिया हो और उसे अपने सामने बैठे व्यक्ति को जला डालने के लिए उस पर छोड़ देना चाहती हो। उसने कहा—

'क्यों, वाक्य पूरा क्यों नहीं कर डालते ? तुम इस प्रेम का डर दिखला कर मुझसे झूठी बात मनवाना चाहते हो ! तुम मुझे इतना पतित और हीन समझते हो, यह मुझे इतने स्पष्ट रूप में नहीं मालूम था। मैं भी अब तुम्हें बतला देना चाहती हूँ कि मैं किसी से अपमान किये जाने की पात्र नहीं। मैं ऐसी नीच नहीं। नीच तुम स्वयं हो। पहले से ही मुझे डर था कि तुम्हारे साथ रहने से मेरा जीवन शायद सुखी नहीं बन सकेगा। अच्छा हुआ कि शादी से पहले ही तुम्हारा सच्चा स्वरूप मुझे दिखाई पड़ गया। तुम शायद अभी अपना प्रेम का

नाता तोड़ने मे हिचक रहे हो ; लो, मैं स्वय ही उसे तोड़ डालती हूँ। यह है तुम्हारी अँगूठी।'

इतना कह वह अपने हाथ की अँगूठी निकालने लगी। ऐसा मालूम पड़ता था मानो वह उस अँगूठी को ठीक उसके सिर पर पटक कर उसे तोड़ डालना चाहती है। अँगूठी निकालने की जल्दवाजी में उसने अपनी अँगुली का चमड़ा भी छील डाला। पर उस आवेश में उसे इसका खयाल भी नहीं था। अँगूठी निकाल कर उसने लोकनर के सामने की मेज पर पटक दी और उठ कर वहाँ से जाने लगी। उसे रोकते हुए अपरिचित विद्यार्थी ने कहा—

'थोड़ी देर रुकिये। यह मामला इस प्रकार तय नहीं हो सकता। दोष आपका नहीं, बल्कि इन दोनों का है। इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों ही बराबर दोषी हैं। तब फिर हमारी मंडली में जिस प्रकार से ऐसे मामले तय किये जाते हैं वैसे ही यह मामला भी क्यों नहीं तय किया जाय ? इन दोनों के हाथों में दो तलवारे दे दी जायँ, एक का सहायक मैं और दूसरे का हान्स बन जाय और मामला डूएल के द्वारा निपटा लिया जाय।'

फिर थोड़ी देर तक 'डूएल' की बात चलती रही। अपरिचित विद्यार्थी को उसमें मजा आ रहा था। लोकनर भी उसके लिये अपने को तैयार बतलाने लगा। मैं भी अपने को कायर अथवा दब्बू नहीं दिखलाना चाहता था, इसलिये मैं भी उसके लिये तैयार हो गया। केवल केटी और हान्स का मत उसके विपक्ष मे था। वे इस बात पर अड़ गये थे कि 'डूएल' किसी भी हालत में न हो।

मैं भी डूएल-जैसी बातों को न केवल मूर्खतापूर्ण बल्कि अत्यन्त ही घृणास्पद मानता था। डूएल-जैसी चीजों के मूल में ईर्ष्या रहती है, और वह भी किसी स्त्री के सम्बन्ध की। व्यक्तिगत जीवन में इस

प्रकार की ईर्ष्या से बढ कर शायद ही किसी चीज़ को मैं घृणा करता हूँगा। अपने जीवन का मूल्य इतना कम नहीं समझता था कि उसे इस प्रकार की ईर्ष्या की बलि चढ़ा दिया जाय, पर दूसरे कहीं मेरा वास्तविक मतलब न समझ मुझे कायर मानने लगें, इस विचार से मैं डूएल के लिये तैयार था। मुझे इस सम्बन्ध में वाद-विवाद करने में भी लज्जा आती थी, इसलिए केवल अपनी स्वीकृति देकर मैं चुप हो रहा।

दोनों पक्षों मे अधिक देर तक वाद-विवाद चलते रहने के बाद यह बात सूझी कि डूएल का व्यावहारिक कार्य पूरा करना भी कोई आसान बात नहीं। जरमन विद्यार्थियों की जिन सस्थाओं के निरीक्षण मे डूएल हुआ करता था उनका यह नियम था कि डूएल मे भाग लेने वाले दोनों ही दल उस सस्था के सदस्य हों अथवा डूएल के बाद से उसके सदस्य होना स्वीकार करें। लोकनर तो उस संस्था का पहले से ही सदस्य था, पर मैंने न तो उन संस्थाओं की कभी पूछ ताछ की थी और न करना ही चाहता था। अपरिचित विद्यार्थी डूएल तथा उसके शास्त्र का पूरा पडित था; क्योंकि वह स्वयं भी कई बार उसमें भाग ले चुका था; पर हमारे डूएल को व्यावहारिक रूप देने का उसे भी कोई रास्ता नहीं दिखलाई दे रहा था। उसकी ओर से कोई उपयोगी सुझाव न पेश होते देख लोकनर ने मेज़ पर अपना हाथ पटकते हुए कहा—

'इसमें और अधिक विचार करने की क्या आवश्यकता है ? इन्हे पुलिस के हवाले कर दिया जाय और वही यह निश्चय करे कि हम दोनों मे कौन झूठा और कौन सच्चा है ! मैं अभी भी दावे के साथ कह सकता हूँ कि इनका पासपोर्ट जाली है। ऐसे झूठे, चोर, दगाबाज लोगों का स्थान जेल में ही होना चाहिये; यह हम लोगों की मूर्खता थी कि अब तक इन्हे स्वतन्त्र घूमने दिया है। इस प्रकार का कार्य हमारे लिये देशद्रोह है। मैं स्वयं अभी जाकर पुलिस को बुलाये लाता हूँ,

वही सारा मामला साफ कर देगी। अभी, मैं अभी जाता हूँ।'

मेरे पासपोर्ट का असली मामला यह था कि उसकी अवधि जरमनी मे रहते वक्त ही समाप्त हो गई थी। ब्रिटिश कौंसल बिना कोई वजह दिखलाये ही उसकी अवधि और आगे बढ़ाने के लिए तैयार नहीं था। जरमनी के नात्सी लोगों की दृष्टि मे भी मैं खटक रहा था। उन्हें यदि मेरे पासपोर्ट की असुविधा की पूरी जानकारी होती तो वे बड़ी आसानी से एक मामूली दरख्वास्त जरमन पुलिस के पास भेज कर या तो मुझे गिरफ्तार करा सकते थे अथवा जरमनी के बाहर भिजवा दे सकते थे। पर यह बात मेरे इने-गिने दोस्तों को ही मालूम थी। उनमें से ही किसी से शायद लोकनर को भी इसका पता लग गया था।

लोकनर समझ रहा था कि शायद उसको पुलिस बुला लाने के लिये जाने देने मे वहाँ पर बैठे लोग बाधा डालेंगे, उसका हाथ पकड़ कर उसे बैठायेंगे, उसकी आरजू-मिन्नत करेंगे; पर ऐसा किसीने भी नहीं किया। जाते-जाते भी उसने दरवाजे पर से कहा—

'अब देख, मैं तुझसे कैसा बदला लेता हूँ और तुझे कैसा मजा चखाता हूँ। तुझे जेल में सड़ते देख कर ही मुझे सन्तोष होगा। अभी, अभी, यहीं बैठे रहना! खैर, तुझ पर पहरा देने वाले मौजूद हैं, तू भाग नहीं सकता! अभी पुलिस सारा मामला साफ किये देती है!'

इतना कहता हुआ वह चला गया। उसके निकल जाने के बाद अपरिचित विद्यार्थी ने कहा—

'यह तमाशा देखने की मेरी इच्छा नहीं। डूएल मे वीरता है, अभिमान है! पुलिस तुम्हारा क्या कर लेगी? मैं जानता हूँ, तुम विद्यार्थी हो और हमारे विद्यालय मे पढ़ते हो। मुझे पुलिस से कुछ लेना-देना नहीं। इस तरह यह मामला कभी भी तय नहीं होने का! कल

हम लोगों की सभा होने वाली है ; वहीं पर यह मामला पेश किया जायगा। खैर, आज अब और कोई मजा नहीं, मैं भी जाता हूँ !'

इतना कह कर वह भी चला गया।

केटी अब तक बिल्कुल घबडाई बैठी थी। उसके मुँह से बोली नही निकल रही थी। अपरिचित विद्यार्थी के उस कमरे से निकलते ही उसने हान्स से कहा—

'तुम जल्दी जाकर एक किराये की मोटर ले आओ। पर यहाँ नहीं, फ्राँकफुर्तर-होफ-होटल के सामने लाकर उसे खड़ा रखना। जल्दी—'

मुझे पता नहीं, केटी हान्स से इतनी अधिक परिचित थी अथवा नही, पर इस समय उसने उसे तू कह कर और हुक्म देते हुए यह बात कही। हान्स भी बिना एक शब्द कहे वहाँ से चला गया।

अब मैं अकेला ही वहाँ केटी के साथ बैठा रह गया। जिस स्वर मे अभी उसने हान्स को मोटर लाने का हुक्म दिया था उसी स्वर मे मुझसे कहा—

'उठो।'

मैं उठ खड़ा हुआ। उसने मुझे बाहर चलने का इशारा किया ; पर मैं इस प्रकार अपने स्थान पर खड़ा रहा मानो उसकी दूसरी बात मेरी समझ मे ही नही आ रही है। उसने पूछा—

'आते क्यों नहीं ?'

'कहाँ ?'

'क्या इस समय भी तुम्हे समझाने की आवश्यकता है ? अभी पुलिस आई जाती है।'

'तो आने दो न !'

'पकड़ जाओगे !'

'तो क्या हुआ ?'

'उससे फायदा ?'

मैं वास्तव मे इस समय तक बिल्कुल शान्त था। पुलिस थोड़ी ही देर में वहाँ पर पहुँच जायगी, यह मुझे मालूम था ; पर उससे भय नहीं हो रहा था। केटी के मुँह से 'उससे फायदा ?' सुन कर आँखों के सामने बहुत सी बातें एक साथ ही नाच गईं। मैं वास्तव में निर्दोष था ; पर मेरे ऊपर विश्वास ही कौन करता ? मैं व्यर्थ में सताया जाता। एक विचार यह भी मन में आ रहा था कि इस प्रकार भाग जाने पर मेरे परिचित क्या कहेंगे ? मेरे विषय में उनकी अवश्य ही खराब धारणा हो जायगी। वे अवश्य ही समझने लगेंगे कि लोकनर का कथन सत्य था और मैं झूठा था, इसीलिए भाग निकला। इसके बाद भारतीयो को और भी कितने अविश्वास और घृणा की दृष्टि से ये लोग देखने लगेंगे ! फिर क्या किया जाय ?

मेरे मन मे जो कुछ भी चल रहा था, मेरे चेहरे से ही केटी जान गई। उसने मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा—

'तुम्हें भागना ही होगा।'

'किसलिये ?' केटी ने मुझे फिर से पहले के ही प्रश्न पर लौटते तथा पाँव आगे न बढ़ाते देख अपने चेहरे का रुख पलटा और मेरे दोनों हाथ अपने हाथ मे ले सीधे मेरी आँखों की ओर देखते हुए कहा—

'मेरे लिए।'

उसे और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। उसने मुझे अपनी ओर खींचा। मैं उसके बिलकुल निकट आ गया था, इतने निकट कि उसका साँस लेना स्वयं अनुभव कर रहा था। बाहर निकल कर हम लोगों ने अपने पीछे का दरवाजा बन्द कर दिया। स्वय तेजी से आगे क़दम बढ़ाते हुए केटी ने बिलकुल धीरे से कहा—

'जल्दी ! जल्दी !'

मुश्किल से हम लोग सड़क की दूसरी ओर पहुँच पाये होंगे कि केटी एक-ब-एक खड़ी हो गई और पीछे की ओर दिखलाया। जिस सड़क को हम लोगों ने अभी पार किया था वह काफी चौड़ी थी। उसके बीच में ट्राम के आने-जाने की लाइन बिछी थी और उसके दोनों ओर मोटरों की सड़क थी। इन सड़कों के किनारे फुटपाथ था। हम दोनों जिस स्थान पर खड़े थे वहाँ से वह मकान दिखलाई देता था जिससे निकल कर हम अभी आये थे। इस समय उसके सामने एक मोटर आ खड़ी हुई थी; उसके भीतर से लोकनर तथा उसके साथ सादी पोशाक में और भी दो आदमी उतर रहे थे। पानी के बुलबुलों की तरह और भी कई सिपाही वहाँ पहुँच कर उस मकान के पास पहरा देने लगे थे।

हम लोग वहाँ से आगे बढ़े। केटी मेरी बगल-बगल चल रही थी। फ्रांकफुर्तर-होफ-होटल के पास आकर हम लोग रुक गये। उसने मुझे उस होटल के सामने ट्राम खड़ी होने के स्थान पर खड़ा कर दिया और अकेली होटल में गई। कुछ ही मिनटों में वह फिर लौट कर आई और मेरा हाथ अपने हाथ में ले फुटपाथ पर टहलते हुए धीमे शब्दों में कहने लगी—

'यह बड़ी मुश्किल हुई। यहाँ से स्विटजरलैंड के लिए आज रात को और कोई गाड़ी नही जाती। अभी बीस मिनट में एक पैसेंजर गाडी जाने वाली है, पर वह कल दोपहर को जरमनी की सीमा पार करेगी। और तुम्हे हर हालत में सवेरा होने तक जरमनी के बाहर पहुँच जाना चाहिये।'

'ऐसा क्यों? मैं तो हान्स के साथ बर्लिन जाने वाला हूँ। अभी क्या बजा है? सवा बारह! साढ़े बारह पर गाड़ी छूटती है।'

'नहीं नही! तुम बर्लिन नहीं जाओगे। यहाँ से सबसे निकट

स्विटजरलैंड है, तुम वही जाओगे। तुम जानते नहीं, जिन नीच लोगों से तुम्हारा पाला पड़ा है वे तुम्हारा सत्यानाश करने में कुछ भी नहीं उठा रखेंगे ! सिर्फ इतना मालूम हो जाने पर कि तुम्हारे पास पुराना पासपोर्ट है, मालूम नही कितने प्रकार के मुक़दमों मे, जिनका आज तक तुमने नाम नहीं सुना होगा, पुलिस तुम्हे फँसा देने की चेष्टा करेगी। अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों से लेकर जुआरी, डकैत, चोर, स्त्रियों का व्यवसाय करने वाली आदि-आदि, पता नही, पातालपुरी की कितनी संस्थाओं के तुम सदस्य सिद्ध किये जाओगे। तुम अपनी सफाई देना चाहोगे ; पर कोई सुनेगा नही। इस झमेले में पड़ने से अच्छा है, तुम स्विटजरलैंड मे रहो। पर रातोंरात तुम वहाँ पहुँचोगे कैसे, यही मुझे नही सूझ रहा है !'

इसी समय एक मोटर होटल के सामने आकर लग गई थी। हान्स के साथ हम लोग उसमे जा बैठे और पाँच मिनट के भीतर ही स्टेशन पहुँचा दिये गये। हान्स ने अकेले अपना बर्लिन तक का टिकट लिया ; मेरे विषय मे केटी ने उसे निश्चिन्त रहने के लिए कहा और बतलाया कि मैं अभी उसके एक रिश्तेदार के घर जा रहा हूँ।

हान्स की गाड़ी छूटने में पाँच मिनट की देर थी, जब हम लोग उसके प्लैटफ़ार्म पर पहुँचे। केटी फिर रेल का टाइमटेबिल देखने चली गई थी। कुछ महीने पहले डेन्मार्क की सरहद पर विदा लेते समय हान्स के साथ जितनी घनिष्टता थी, आज वह उससे कहीं अधिक बढ़ी हुई थी। वह सगे भाई से भी बढ़ कर मेरा अपना बन गया था। मैंने उससे कहा भी—

'माँ से कह देना कि मैं अपनी शक्ति-भर सदा ही इस बात का प्रयत्न करता रहूँगा कि मुझसे ऐसा कोई भी कार्य न होने पाये जो उनके लिए मेरे प्रति असन्तोष का कारण बन सके अथवा जिससे वे मेरे प्रति निराश हो सकें। मैंने कोई अपराध नहीं किया है, फिर भी मुझे

अपराधियों की तरह भागना पड़ रहा है। मैं वास्तव मे निर्दोष हूँ और इसीलिए कम-से-कम माँ मुझे अपराधी न समझे। उनका मेरे ऊपर अपने पुत्र-जैसा जो स्नेह है, मैं सदा ही उस स्नेह को तथा उनका मेरे प्रति जो विश्वास है उसे पवित्र तथा दृढ बनाये रखूँगा।'

तुरन्त ही केटी फिर वहाँ आ पहुँची और धीरे—पर तीव्र—शब्दों मे बोली—

'हमे जल्दी करनी चाहिये, नही तो सारा मामला बिगड़ जायगा।'

हान्स की गाडी छूटने मे अभी दो मिनट की देर ही थी कि हम लोग वहाँ से दूसरे प्लैटफार्म की ओर चले। हान्स हाथ हिला कर बिदा देता रहा। केटी मुझे जिस प्लैटफार्म पर ले आई वहाँ भी एक गाड़ी लगी थी। उसमे चढ़ने वाले मुसाफिर बहुत ही थोड़े थे। गाड़ी का सबसे अगला डब्बा तो बिलकुल ही खाली था। हम दोनों उसी मे जा बैठे। केटी ने बाहर टॅगी हुई घड़ी की ओर झाॅक कर देखा और कहा—

अभी भी दस मिनट बाकी हैं! मुझे भय नही; पर इतने समय मे मालूम नही क्या-से-क्या हो जा सकता है! अपना बस नही! इतनी देर रुके-ही रहना पड़ेगा!

सचमुच ऐसा लग रहा था कि आज समय बहुत धीरे-धीरे बीत रहा है। लोकनर जिस समय पुलिस को बुलाने गया था उस समय से अब तक आधा घण्टा भी न बीत पाया था, पर जान पडता था कि जमाना गुजर गया है। गाड़ी जितनी देर नहीं छूट रही थी, प्रत्येक मिनट ही पहाड सा मालूम हो रहा था। प्लैटफार्म पर जो कोई भी गुजरता हुआ दिखलाई देता, मालूम पड़ता, वे सभी सादी पोशाक में पुलिस के आदमी हैं और मुझे पकड़ने के लिए ही वहाॅ आ पहुॅचे हैं। केटी के मन मे भी वैसी ही बातें आ रही थी। वह अपने मन-ही-मन हिसाब लगा कर कहने लगी—

नही, अगर पुलिस चाहे भी तो इतनी जल्दी यहॉ नही पहुॅच सकती। उस रेस्तुरॉ मे, जहाँ तुम बैठे थे, और तुम्हारे घर पर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ही कम-से-कम आधा घण्टा और लगेगा। फिर भी कल सवेरे सीमा पार करते समय सावधानी से काम लेना। मुँह से कोई ऐसी बात न निकालना जिससे किसी को सन्देह करने का मौका मिले। अगर तुम्हारा चमड़ा हम लोगों के समान सफेद होता तब कोई परवा नही थी; पर रग दूसरा होने के कारण तुम अपने को आसानी से यहाँ पर छिपा नही सकते।'

फिर, दूसरों से बातें करते समय मुझे किस प्रकार की सावधानी रखनी चाहिये, यह भी वह मुझे देर तक समझाती रही। उसने कहा कि पूछने पर तुम अपने को उस भारतीय नर्त्तक-मण्डली का सदस्य बताना जो उस दिन आई थी। स्विटजरलैंड जाने का उद्देश्य वहॉ की नाट्यशालाओं में तमाशा दिखलाने के सम्बन्ध में बातचीत करना बतलाना चाहिये। फिर उसी प्रकार की और भी कई बातें कह चुकने पर एक-ब-एक चौकते हुए बोली—

'लो, सबसे जरूरी चीज छूटी ही जा रही थी। यह लो, तुम्हारा लूचेर्न तक का टिकट। वहाँ तक का टिकट इसी विचार से ले लिया है कि जरमनी की सीमा से तुम जितनी ही दूर रहो उतना ही अच्छा है। अभी दो घण्टे के बाद तुम्हारी यह गाड़ी बाडेन-बाडेन पहुँचेगी। वहाँ तुरन्त ही तुम्हे म्युनिच से बाजेल जाने वाली डाकगाड़ी मिलेगी। तुम उसी गाड़ी में सवार हो लेना; कल सवेरे सूर्य निकलने के पहले ही तुम जरमनी की सीमा पार कर चुकोगे। फिर वहाँ से लूचेर्न की गाड़ी लेना। जैसे ही लूचेर्न पहुँचना, मेरे नाम एक कार्ड जरूर लिख देना, क्योंकि तुम कुशलपूर्वक सीमा पार कर गये या नहीं, यह जानने के लिये मैं उत्सुक रहूँगी।'

की ही पुलिस ने उसे तार कर दिया है। मैंने मन-ही-मन कहा—

'अब मैं गिरफ्तार कर लिया गया।'

मशीन की तरह बिना कुछ कहे-सुने तुरन्त मैंने अपना अवधि समाप्त हुआ पासपोर्ट उसके हाथ में दे दिया। उसने उसे बिना देखे उसके अन्तिम पृष्ठ पर एक छाप डाल मुझे लौटा दिया।

गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी। मैंने पास बैठे मुसाफिर से पूछा—

'स्विटजरलैंड की सीमा और कितनी दूर है?'

उसने हँसते हुए उत्तर दिया—

'और कौन सी सीमा? अब तो हम लोग स्विटजरलैंड मे हैं। अभी-अभी ही तो स्विटजरलैंड का पास-कन्ट्रोलर पास देख कर गया है।'

'और जरमनी वाले?'

'उनकी सरहद बहुत पहले ही खतम हो चुकी है।'

मैंने खिड़की का शीशा साफ़ कर बाहर देखा। सबेरा हो चला था। उस डब्बे के बरामदे में आकर खिड़की खोल दी और बाहर झाँक कर देखने लगा। सर्दी से दाँत कटकटाने लगे, पर उसकी परवा उस समय नहीं थी। अपने को खतरे से निकल आया हुआ स्वतन्त्र देख रहा था—खुली हवा में साँस ले रहा था।

इसी समय हमारी गाड़ी के इन्जिन ने नये प्रकार की सीटी बजा कर नये स्टेशन में अपने घुसने की सूचना दी। हम लोग उतर पड़े।

लूचेर्न की गाड़ी मे अभी दो घण्टे की देर थी। स्टेशन से बाहर आ, बिना कुछ सोचे समझे ही, जिस दिशा से मेरी गाड़ी आई थी उसी ओर लौट पड़ा। पीछे जो कुछ छोड़ आया था, एक-एक करके सबकी याद आने लगी।

थोड़ी दूर आगे जाने पर रास्ता राइन नदी के किनारे से होकर

जाता था। नदी जिस ओर बहती थी उधर दृष्टि दौड़ा कर मन-ही-मन मैंने कहा—

'उधर ही जरमनी है; यहाँ से थोड़ी दूर पर ही उसकी सीमा शुरू हो जाती है।'

नदी-किनारे के एक पत्थर पर बैठ गया और जरमनी की ओर देखने लगा। डेढ़-दो साल पहले वहाँ एक अपरिचित की तरह प्रवेश किया था, पर अब, मनुष्य-जीवन के सबसे सुन्दर समय युवावस्था का एक अंश जिस रूप में वहाँ बिताया था उसकी स्मृति मेरे लिए सदा के लिए ही अमिट बन गई थी। प्रोफेसर राइनहार्ट, हान्स और केटी का चेहरा एक क्षण के भीतर ही और एक साथ ही आँखों के सामने नाच गया। जरमनी छोड़ने का मतलब मेरे लिए सर्वप्रथम इन्ही व्यक्तियों को छोडना था।

जरमनी की सभ्यता तथा संस्कृति की सराहना मे हजारो पन्नों वाली मोटी पुस्तकों के पढ़ने पर भी मेरे भीतर उस देश के प्रति वैसी धारणा नही बन सकती थी जैसी इस समय उन इने-गिने कुछ व्यक्तियो के चेहरे याद आने से बन रही थी। उनके चेहरों में मैं उनकी सस्कृति तथा परपरा का जीता-जागता सुन्दर-से-सुन्दर स्वरूप देख रहा था।

एक क्षण के लिये प्रोफेसर कुंच, लोकनर अथवा मेरी मकान की मालकिन फ्राउ मूलर की याद आने पर मुझे सन्देह होने लगता कि क्या वे भी जरमन हो सकते हैं? जरमनी में नात्सी-सरकार का प्रभाव जमने पर उसके द्वारा मुझे भारतवासी होने के कारण जितना कुछ झेलना पड़ा था उसकी याद आने पर यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि जरमनी-जैसे सभ्य देश में वैसी बातें आखिर सम्भव ही क्योंकर हो पाईं।

बहुत देर तक उस भूमि की ओर देखता और वहाँ के अपने परि-

चित तथा अपरिचित सब मित्रो से मन ही-मन बिदा लेता रहा। जिन्हे वहाॅ केवल एक बार देखा था, जिनका नाम-पता तक मुझे मालूम नहीं था, जीवन मे सयोग के सिवा और किसी भी हालत मे जिनसे फिर भेंट होने की सम्भावना नहीं थी, उन लोगों से भी उसी तरह बहुत देर तक बिदा लेता रहा।

एकाएक आँखों के सामने एक ऐसा दृश्य आया जो बहुत-कुछ उस दृश्य के समान था जिसे एक यूगेड-हेरबेरगर (युवा-रात्रि-निवास) मे देखा था। जिन लोगों को वहाँ पर उपस्थित नहीं देखा था वे भी इस समय उपस्थित दिखलाई देते थे! बीच मे एक युवक बैठा गितार (सितार जैसा वाद्य-यन्त्र) बजा रहा था और उसके चारों तरफ बहुत से लोग उसे घेरे बैठे थे। उन्हीं लोगों मे हान्स, हाना, प्रोफ़ेसर राइनहार्ट, केटी और मैं भी था। हमारी आँखों के सामने राइन-किनारे की पहाड़ी पर रसीले अंगूर की लताओ से सजी 'लोरेलाई' की पहाड़ी थी। हम लोग झूमते-झूमते उधर ही देख रहे थे और गाते जा रहे थे—

"सुन्दर है जवानी—मस्ती की घड़ियों मे,
सुन्दर है जवानी—वह फिर नहीं आती,
वह फिर नही आती,
हाँ, सचमुच, वह फिर नही आती,
वह फिर नहीं आती,
सुन्दर है जवानी—वह फिर नही आती।"

पंचम खण्ड

बीमारी

पीछे जो कुछ भी छोड़ आया था उसका मुझे पता था, पर आगे क्या होगा इसका कुछ भी अन्दाज नही लगाया जा सकता था। जिन्हे पीछे छोड़ आया था उनसे और एक बार मन-ही-मन बिदा लेकर जिस समय स्टेशन लौटा उस समय तक जिस गाड़ी से मुझे लूचेर्न जाना था वह निकल चुकी थी। वहाँ पहुँचने की मुझे कोई वैसी जल्दी भी नही थी; इसलिये बिना अधिक अफसोस किये फिर स्टेशन के बाहर निकल आया। दूसरी गाड़ी दोपहर को छूटती थी; उस समय तक स्टेशन के आस-पास ही घूमते रहने का निश्चय किया।

स्टेशन के पास ही एक अजायबघर था। अब तक अपनी आँखो के सामने जो कुछ देखा करता था वह मुझे जीवित अजायबघर ही जैसा दिखलाई देता था। उसी मे उलझे रहने के कारण कोई भी 'मुर्दा-अजायबघर' देखने का मुझे कम ही मौका मिला था। आज दोपहर तक का समय किसी प्रकार बिताने का प्रश्न जब मेरे सामने था ही तो उसकी भी एक झाँकी कर लेने के लिये भीतर घुसा। थकावट तथा न सो सकने के कारण जो मूर्त्तियाँ अथवा चित्र देखता था उन पर केवल सरसरी दृष्टि डालते हुए आगे बढ़ता जाता था।

फिर भी एक बड़े से हॉल में, जहाँ पर बाजेल के प्रसिद्ध चित्रकार बेकलिन तथा वैसे ही दूसरे प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र टँगे थे, एक चित्र के आगे रुक गया। उस चित्र में तथा राइन-किनारे की हाना में कोई समानता नही थी, शायद दोनों दो विपरीत स्वभाव वाली लड़कियों के चित्र थे; पर मुझे उस चित्र को देख कर बार-बार हाना की याद आने लगी। जबसे हाना से बिदा ली थी, आज तक कोई पत्र उसे नही लिखा था। अपने सामने के चित्र का पोस्टकार्ड वही खरीद लिया और उसके पास लिख भेजने के लिये अपने पाकेट मे रख लिया। उसकी बगल मे एक और चित्र टँगा था जिसके नीचे लिखा था—'अनजान चित्रकार द्वारा अनजान बालक का चित्र।' चित्रकारी की कला का ज्ञान न रहते हुए भी मैं बहुत देर तक उस चित्र की ओर देखता रहा। उस लड़के के शरीर पर चिथड़े थे तथा सर के बाल भी वैसे ही बिखरे हुए थे। चेहरा सुन्दर नहीं था, फिर भी उसमे मुझे एक अद्भुत सुन्दरता दीखने लगी। मालूम नहीं उसका मेरे ऊपर क्या प्रभाव हुआ कि और दूसरे हॉल में न जा सीधे स्टेशन की ओर आया और लूचेर्न की गाड़ी में जा बैठा।

दो-एक चिठ्ठी लिखने का विचार कर ही रहा था कि सारा शरीर टूटता हुआ सा मालूम होने लगा। डब्बे के एक कोने में बड़ी देर तक आँखें मूँद कर उढका रहा। मुझे यह डर लग रहा था कि कहीं उठने का प्रयत्न करते ही मूर्च्छा खा कर गिर न पड़ूँ। लूचेर्न पहुँचने पर जब एक रेलवे-कर्मचारी ने यह बतलाया कि गाड़ी और आगे नहीं जाती, तो उतर पडा। पर मेरा अधिकार अपने पाँवों पर नहीं था। सर में भारी पीडा हो रही थी। आँखों के आगे की सारी चीजें नाचती हुई दिखाई दे रही थीं। स्टेशन के बाहर शहर में जाने के लिये जो पुल मिलता था, कई बार उसकी लोहे की छड़ें पकड कर

खड़ा हो गया। किसी प्रकार अपने को घसीटता हुआ झील के किनारे-किनारे चला और जब मन में यह विश्वास हो गया कि काफ़ी दूर तक अपने को घसीट लाने मे सफल हुआ हूँ तो पीछे फिर कर देखा। शहर मेरे बाईं ओर पीछे छूट गया था। वहाँ लौटने की इच्छा नही हो रही थी और न एक कदम भी आगे बढ़ने की शक्ति रह गई थी, वही झील किनारे की घास पर लेट गया। धूप निकली हुई थी, पर रह-रह कर ऐसी सर्दी लगती थी कि कलेजा तक काँप उठता था और दूसरे ही क्षण गरमी के कारण ऐसी बेचैनी मालूम होती कि सामने की झील में कूद पड़ने की इच्छा होने लगती थी।

मुझे जोरों का बुखार चढ़ आया था।

जैसी शरीर की हालत थी, मन की भी ठीक उसके अनुरूप ही जान पड़ती थी। ऐसा मालूम होता था कि उसके भी सभी पुर्जे अपनी शक्ति से अधिक काम करने लग गये हैं। जिन बातों से अपने को बिलकुल ही प्रभावित हुआ नही मानता था वे ही बातें बड़ी ऊँची-ऊँची तरंगों के रूप में मन मे उठने लगी थीं। अपने देश के अथवा विदेशों के साहित्य मे जितने भी मुख्य-मुख्य चरित्र अंकित हुए पड़े थे, वे जीते-जागते रूप में मेरी आँखों के सामने से गुजरते हुए दिखलाई दिये। ये चरित्र मधुर-से-मधुर तथा कठोर से-कठोर थे। सबसे पहले कालिदास की शकुन्तला को सरोवर के उस पार मृगों को प्यार करते हुए तथा उनके साथ खेलते हुए देखा; पर तुरन्त ही, मालूम नहीं क्योंकर, वही शकुन्तला गेटे की इफिगेनिए में परिणत होकर सरोवर के उस पार बैठी दिखाई दी। अभी उसे एक क्षण भी स्थिरतापूर्वक नही देख पाया था कि उसी के स्थान पर पुश्किन की तातयाना को देखने लगा। तातयाना का चेहरा सामने आते ही चाइकोव्सकी के ऑपेरा में देखी तातयाना का रूप दिखलाई देने लगा जिसके साथ बाजा बज रहा था और वह गा रही थी—

'मेरी बरबादी ही सही······'

यह चित्र भी भली भाँति नही देख पाया था कि लेरमतोव की तमारा सरोवर के उस पार बैठी हुई दिखलाई दी और उससे 'डेमोन' कह रहा था—'व्यर्थ है तेरा रोना अभागी···।' फिर उसका भी चेहरा लुप्त हो गया और उसके स्थान पर दस्तोयेव्सकी की नास्तास्या फिलिपोवना को देखा। उसके प्रभाव से ऐसा प्रभावित हुआ कि अपने आपको मूर्ख मानने लगा। उपन्यासो अथवा नाटकों में जितने लोगों को सताया जाता देखा था, वह सब अपने ऊपर बीतता मानने लगा। ससार का अन्याय मुझे बर्दाश्त नही हो रहा था। उसका अन्याय मुझे जिन्दा ही जलाता हुआ सा दिखलाई देने लगा। शरीर मे उस ज्वाला की लहर भी उठ रही थी। मैंने कपडे उतार कर फेंक दिये और 'बचाओ', 'बचाओ' चिल्लाता हुआ झील मे कूद पड़ा।

वहाँ थोड़ी देर तक तैरता रहा; पर तुरन्त ही मेरे हाथ और पाँव दोनों ही काठ की तरह अकड़ गये और मैं डूबने लगा। फिर मुझे चेतना आई कि क्या यो ही डूब कर मेरा अन्त हो जायगा?

मेरे भीतर से दृढ़तापूर्वक किसी का उत्तर मिला—

'कदापि नही।'

मैं अपनी अन्तिम शक्ति लगा पानी से बाहर निकल आया। थोड़ी देर पहले अपने भीतर जो कमजोरी और निराशा का भाव आ रहा था वह झील मे डुबा दिया गया, ऐसा मैं समझने लगा। कपडे पहनते-पहनते जिस ओर की पहाड़ी पर दृष्टि गई उधर से स्विस देशभक्त 'विलियम टेल' निकलते दिखलाई दिये। गीता में कहा हुआ कृष्ण का वाक्य याद आया—

'शस्त्र रख देना कायरता है। युद्ध करो। तुम्हारी विजय अनिवार्य है।'

मैं टहलने की कोशिश करने लगा, पर पाँव इतने भारी हो आए थे कि एक क़दम भी आगे नहीं रख सका। हृदय जोरों से धड़कने लगा था और सारा शरीर बेतरह काँप रहा था। मैं जानता था कि इस बार बुरी तरह बुखार के चपेटे में पड़ गया हूँ। मैं अपने को असहाय नहीं समझता था, बीमारी से हार मान उसको आत्मसमर्पण नही करना चाहता था। स्वस्थ रहना चाहता था और जीना चाहता था। अपने जीवन का लक्ष्य स्पष्ट अपनी आँखो के सामने देखता था। मैं उसे शब्दों मे व्यक्त भले ही न कर पाता होऊँ; पर यह 'देखता तो अवश्य था कि मुझे जीवन में बहुत कुछ करना है और उसकी दूसरी लड़ाइयों के लिए अपने को जीवित तथा स्वस्थ बनाये रखना अनिवार्य है।

कुछ समय के लिए मैं अपने को एक तीसरे व्यक्ति के रूप में देखने लगा और बुखार के साथ-ही-साथ जीवन के अनेक क्षेत्रों मे अपने को लड़ते हुए पाया। युद्ध के मैदान मे बजने वाली रण-भेरी मेरे जीवन-संग्राम के क्षेत्र में बजती हुई सुनाई देने लगी। मैंने नगी तलवार लिये अपने, चारों ओर के शत्रुओं से अपने को लड़ते हुए पाया।

अब तक खड़ा था। एक-ब-एक आँखो के सामने बिलकुल अँधेरा छा गया। मैं घास पर लेट गया और अँधेरे में ही हाथों से घास नोचने लगा। फिर अत्यन्त थका हुआ सा हाँफता-हाँफता चुपचाप चित होकर पड़ रहा।

उस अवस्था में भी मेरी मानसिक शक्ति बराबर सग्राम करती जाती थी और मेरे भीतर गूँज रहा था—'भय किसका ? मेरी जय अनिवार्य है।'

जिस समय फिर मुझमें थोड़ी शक्ति आई और आँखें खोलीं तो देखा कि बहुत पहले ही सूर्यास्त हो चुका और अब धीरे-धीरे अँधेरा भी हो चला था। बुखार का झोंका अभी भी गया नहीं था; वह शायद

बढ़ता ही जा रहा था। पर उसी झोंके में उठ खड़ा हुआ और शहर की ओर चला। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर दाहिने हाथ की ओर एक मकान दिखलाई दिया। उसके मुख्य दरवाजे पर शायद कोई तख्ती टँगी थी ; पर उसे बिना पढ़े ही मैंने समझ लिया कि यह कोई रेस्तुराँ होगा। उस दरवाजे के दोनो ओर दो बत्तियाँ जल रही थीं। अभी जितनी दूर के फ़ासले पर था वहाँ से वे बत्तियाँ दो बड़ी-बड़ी आँखों-जैसी दीख रही थीं और मालूम नहीं क्यों दूसरे ही क्षण मैं यह समझने लगा कि वे हाना की आँखे हैं और मुझे शरण देने के लिए बुला रही हैं।

अपने को बहुत सँभालते रहने पर भी उस रेस्तुराँ की एक कुर्सी पर धड़ाम से जा गिरा ; पर अच्छा था कि किसी ने ध्यान नही दिया। उस रेस्तुराँ की लड़की को खाना लाने के लिए कहा। मेरे मुँह की आवाज बहुत अस्पष्ट थी ; पर मेरी विदेशी जबान के कारण उसे कुछ खटका नही हुआ। जिस समय वह भोजन लेकर मेरे सामने रखने आई, मैं मेज के सहारे सर टेक कर नीद लेने लगा था। उसने मुझे जगाया। पर भोजन करने के लिए हाथ उठाने के प्रयत्न में मैं स्वय ही कुर्सी से नीचे गिर गया। फिर कौन-कौन लोग और किस प्रकार उठा कर मुझे एक कमरे में लाये, इसका मुझे कुछ भी पता नही। जिस समय थोड़ा-थोड़ा होश आने लगा, मैं समझ रहा था कि अभी भी झील-किनारे घास पर लेटा हुआ हूँ। पर वहाँ तो मुझे सर्दी लग रही थी और शरीर ढकने के लिए मेरे बदन पर के कपड़ों के सिवा और कुछ भी नहीं था ! फिर शरीर क्योंकर ढका हुआ है ? यह महसूस कर कि मैं बड़ी ही मुलायम और नरम जगह पर लेटा हुआ हूँ, आश्चर्य हो रहा था कि क्या जमीन भी इतनी नरम हो सकती है !

पूरी चेतना आने पर मैंने देखा कि मैं एक बड़े ही नरम बिस्तरे पर

लिटाया गया हूँ। कमरे मे रोशनी नहीं थी, पर बाहर के दालान से शीशे के बीच होकर जो रोशनी आती थी उसके धुँधले प्रकाश में देखा कि कोई स्त्री मेरे पाँवों के पास बैठी है। मैं उसे पहचान नही पाया। मुझे आँखें खोलते देख उसने पूछा—

'क्यो ? भूख लगी है ?'

अब मुझे याद आया कि यह वही स्त्री है जो मेरे लिए रेस्तुराँ में भोजन ले आई थी, पर जिसे खाने के पहले ही मैं वेहोश होकर गिर पड़ा था।

'नही' कह कर मैं करवट बदलना ही चाहता था कि देखा—उस कमरे का दरवाजा खुला और एक आदमी सादी पोशाक में तथा एक सिपाही की वर्दी मे भीतर घुसा। सिपाही को देखते ही मुझे एक दूसरे प्रकार को चेतना आ गई और मैं समझने लगा कि वे मुझे पकड़ने के लिए ही आए हैं। पता नहीं, उस सिपाही अथवा उस सादी पोशाक वाले—किसने मेरा हाथ पकडा था कि मैंने झटका देकर हाथ छुडा लिया, उनकी ओर से मुँह फेर लिया और बड़ी तेज आवाज मे चिल्लाने लगा—

'मैं अपराधी नहीं, अपराधी तुम लोग स्वय हो। मैं जानता हूँ, तुम्हे लोकनर ने यहाँ भेजा है। तुम मेरा पासपोर्ट देखने और मुझे पकड़ने आए हो। तुम मुझे अब बहुत सता चुके। मुझे शाति से रहने दो, मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। मुझे शाति से मरने दो—अकेले ! अकेले में शांति से मरने दो ! मैं तुम्हारी सूरत नहीं देखना चाहता।'

मालूम नहीं और क्या-क्या मैं कहना चाहता था, पर मेरे मुँह से साफ-साफ आवाज नहीं निकल रही थी। मेरी बोली मेरे सिवा शायद ही कोई समझ पाया होगा। उन थोड़े से शब्दों के कहने में ही

मैंने इतनी शक्ति खर्च कर डाली कि फिर हॉफने लगा। आँखे मूँद लेना चाहता था, पर पलक बन्द नहीं कर पा रहा था। उसी समय देखा, मेरे पॉव के सामने खड़ी औरत ने कोई कागज उस सिपाही के हाथ मे दिया। सिपाही ने उसे देखा और कहा—

'सब ठीक है!'

फिर कोई आदमी मेरे माथे पर हाथ रख और नाड़ी अपने हाथ में ले देख रहा था, जो थोड़ी देर में बोला—

'बुखार बहुत अधिक है, पर घबड़ाने की वैसी कोई बात नही। कल तक देखा जाय—अगर बुखार नहीं उतरा तो अस्पताल ले जाया जायगा।'

मैं उसका विरोध करना चाहता था, पर इस बार मुँह से बिना कोई शब्द निकाले ही हॉफता रह गया। कमरे में बहुत देर तक शाति रहने के बाद जब फिर से चेतना आई तो बड़े जोरों की प्यास सी लगी हुई जान पड़ने लगी। गला सूखा जा रहा था। मैंने ऑखें मूँदे-मूँदे ही कहा—

'प्यास लगी है।'

थोड़ी देर मे ही उत्तर मिला—

'यह है पानी! पीओ।'

मैंने ऑखें खोलीं। जो औरत मेरे पाँव के पास बैठी थी वही हाथ मे पानी से भरा गिलास लिये खड़ी थी। मैं गिलास अपने हाथ मे लेना चाहता था, पर उसने नहीं लेने दिया और मेरा सर अपने एक हाथ से पकड स्वय पानी पिलाने लगी। उसके हाथ बड़े ही नरम थे और मुझे बड़ा ही आराम मिलता हुआ जान पड़ा। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा—

'तुम्हे अनेक धन्यवाद!'

उसने मेरे हाथों से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयास नहीं किया। फिर मैंने उससे पूछा—

'पुलिस वाले चले गये ?'

'हाँ ! कब के !'

'वे मुझे पकड़ने आए थे ?'

'तुम्हे वे पकड़ने क्यों आयेंगे ! डाक्टर को बुला लाये थे।'

'पर मेरा पासपोर्ट तो वे ले गये !'

'नही। देख कर फिर तुम्हारे कोट के पाकेट में रख दिया।'

मैं शात हुआ। फिर उससे कहा—

'सर दुख रहा है।'

वह मेरा सर अपने हाथ से दबाने लगी। वैसे ही मुझे नींद भी आ गई।

दूसरे दिन सबेरा होने तक काफी होश में आ गया था। वही स्त्री मेरे लिए जलपान भी ले आई। मेरे जलपान कर चुकने पर वह तुरन्त ही वहाँ से चली जाना चाहती थी, पर मैंने उसे रोक रखा और उससे बाते करता रहा। फिर मुझे याद आया कि कल जो ख़त रेल मे ही लिखना चाहता था, अब तक नही लिख पाया हूँ। उन ख़तों का उत्तर भी चाहता था, पर कोई अपना निश्चित पता नहीं मालूम था। उस स्त्री ने अपने पते पर खत मॅगाने के लिए कहा और पता लिख भी दिया।

दो ख़त लिख कर उस औरत को डाक मे डालने के लिए दे देने के बाद फिर शरीर टूटने सा लगा। लेट गया। कल की ही तरह फिर अस्वीकार करने लगा कि जो भी हो, बुख़ार के पाले नहीं पड़ूँगा। बहुत देर तक उसी इच्छा की प्रबलता के कारण अपने को सॅभालता भी रहा ; पर तीसरे पहर के बाद और रोकना मुश्किल हो गया। कल-जैसी ही छटपटाहट और बेचैनी होने लगी। पता नहीं उस बेचैनी में क्या-क्या

बकता-झकता रहा। मैं पुनः झील में स्नान करने जाना चाहता था, पर दरवाजे पर लोगों ने रोक लिया और पकड़ कर फिर बिछौने पर लिटा दिया। मैं उन लोगों को गालियाँ देने लगा; पर अच्छा था कि वे मेरी भाषा नहीं समझते थे। क्रोध का शेष आवेश बिछौने को नोच-नोच कर ही ठण्ढा करने लगा और अन्त में बहुत थक जाने पर पिछले दिन-जैसा बेहोश होकर पड़ रहा।

जब नींद टूटी उस समय ऐसा जान पड़ा मानो अभी आधे घण्टे पहले ही सोने के लिए लेटा था। अभी-अभी एक क्षण पहले अज्ञात मे कुछ बक-झक कर रहा था, यह भी याद आने लगा। पर इस समय किसी ने अपनी गोद मे मेरा सर रख लिया था और हाथों से माथा सहला रही थी। आँखें खोलने का प्रयत्न करते देख उसने पूछा—

'अब कैसे हो ?'

अपने आपको भली भाँति पहचान सकने के लिए बीमारी बहुधा बड़ी ही सहायक सिद्ध हुआ करती है। मनुष्य के मन में कुछ ऐसे धीमी आवाज मे बोलने वाले विचार रहा करते हैं जो अपनी जड़ दृढ़तापूर्वक जमाये रहते हैं, फिर भी अपने को प्रकट नही होने देते। मनुष्य जब स्वस्थ रहता है उस समय ये विचार यदि ऊपर उठने का प्रयत्न भी करते हैं तो स्वस्थता के प्रकाश मे चौंधिया से जाते हैं और फिर दब जाते हैं। मनुष्य ऐसे विचारों की सदा अवहेलना किया करता है और सर्वदा ही अपने आपसे कहा करता है—'ये विचार मेरे भीतर नही।'

मैं जिस चारपाई पर लेटा था उसके सामने की आलमारी में एक बड़ा सा शीशा लगा हुआ था। उसमें अपना चेहरा तथा दुर्बल शरीर देख कर अपने पर बड़ा ही तरस आ रहा था और अपने आपसे

कह रहा था—'ऐसे शरीर का न रहना ही अच्छा है।' फिर उस शरीर को एक तीसरे व्यक्ति के रूप मे देखने लगा और उससे बार-बार पूछता—'आखिर तुम्हारी अवस्था ऐसी हुई ही कैसे ?'

इस बुखार की दवा मुझे अपने सिवा और कोई डाक्टर नही दे सकता था। जिस समय बिछौने पर लेटे-लेटे अपना चेहरा सामने की आलमारी वाले शीशे में देखा, मुझे अपने रोग का कारण मालूम हो गया। मैं अपने आपसे कहने लगा—

'मैं भी कैसा दुर्बल मनुष्य हूँ। अपने को जीवित रखने के लिए दूसरों की—बाहर की—सहृदयता पर अपने कोआश्रित कर लिया है। छिः ! छिः !!'

अपनी उस दुर्बलता पर मुझे ग्लानि होती। उससे जितनी जल्दी हो, छुटकारा पाने की चेष्टा करने लगा, और कुछ ही सप्ताह बाद उससे वास्तव मे छुटकारा ले भी लिया।

अपनी शक्ति पुनः पहचान मे आ जाने के बाद स्विटरजलैंड की पहाडी, झील, झरने, वसन्त की हरियाली, जिस ओर भी दृष्टि जाती, वे मुझे कहते हुए दिखलाई देते—

'संग्राम में कूदो। योद्धा बनो ! तुम्हारी विजय अनिवार्य है।'

उस पहाडी तथा उन झरनों के साथ खेलने जाने वालों में से मालूम नहीं कितनों को ही उन्होंने यह पाठ पढ़ाया होगा और लडने के लिये नई शक्ति प्रदान की होगी। वहाँ आने वाले और यात्रियों की तरह मै उनके पास से स्वास्थ्य खरीदने नहीं आया था और इसी लिए जिस प्रकार का जीवन वहाँ पर बिता रहा था उससे सन्तोष नहीं था।

मेरी पुनः वह अवस्था आ गई थी जब मेरे देश की दरिद्रता हर समय आँखों के सामने नाचा करती, अपने को सताने वालों के

विरुद्ध लड़ाई लड़ने की बात कभी भूल न पाता और इसीलिये उस प्रकार से सैर करते रहना बहुत ही खटका करता। मेरी इच्छा स्वदेश लौट जाने की होती थी, पर वहाँ तक पहुँचना वैसा आसान नहीं दीखता था। अपना खर्च आप चलाने में समर्थ नही हो रहा था, यह देख कर भी बड़ी चिढ हो रही थी।

मैंने अपने विषय में यही निश्चय किया कि वहाँ से पैदल ही गेनोआ तक की यात्रा करूँगा और फिर किसी जहाज में छिप कर भारत लौटूँगा। पर सयोगवश एक ऐसा मौका आया जिसने मेरा कार्य-क्रम एक विभिन्न रूप में ही बदल दिया! एक दिन मैं झील-किनारे टहलने गया था, वहीं पर मुझे एक ढलती उम्र के धनी भारतीय मिले। ये अकेले यूरोप की यात्रा करने निकले थे। भारतवर्ष में बहुत बड़ी जमींदारी रहने के कारण उन्हे यात्रा के लिये पैसों की कमी नही था, पर यूरोपीय भाषाएँ न जानने के कारण बड़ी तकलीफे उठानी पड़ती थी। अंग्रेजी भी उन्हें टूटी-फूटी ही आती थी। शाकाहारी रहने के कारण प्रत्येक बार ही भोजन के समय उनके सामने विकट समस्या आ उपस्थित हुआ करती; फिर भी यहाँ पहुँच जाने पर बिना यूरोप देखे लौट जाना अच्छा नहीं समझते थे। हम लोग साथ ही कई स्थानो पर घूमने गये और दो-तीन दिन के सहवास के बाद ही उनके प्रस्ताव के अनुसार मैंने स्विटज़रलैंड, आस्ट्रिया और इटली की यात्रा मे उनके साथ रहना स्वीकार कर लिया। वे मेरा यात्रा-खर्च उठाने के लिये तैयार थे और मिहनताने के रूप में भारत लौटने का एक जहाज़-टिकट भी खरीद देने वाले थे।

मैं उन भारतीय महाशय के साथ स्विटज़रलैंड के दूसरे स्थान देखने निकला। एक-दो दिन के बाद ही उनकी सगति से मेरा मन ऊबने लगा। यात्रा मे जिन आदतो का मैं आदी था, उनकी आदतें ठीक

उनके विपरीत थीं। हम दोनों के विचारो में भी न तो कोई समानता थी और न उसके आने की ही सम्भावना थी। जिन देशो का ये भ्रमण कर रहे थे वहाँ के लोगों के रहन-सहन आदि का परिचय प्राप्त करना अथवा प्राकृतिक दृश्य देखना उनका उद्देश्य न था ; बल्कि उन सुन्दर-सुन्दर होटलो की इमारतों का फोटो लेना था, जिनमे वे टिका करते थे और जिन्हें अपने एलबम में चिपका कर उनके नीचे यह लिख दिया क़रते थे कि 'इसमे मैं टिका था'। इसका एकमात्र उद्देश्य यही था कि वे दूसरो को घर लौटने पर यह दिखलाना चाहते थे कि वे उन स्थानों पर हो आए हैं।

उनके साथ यात्रा करते करने पर मेरी पहले की बहुत-कुछ आजादी छिन गई थी। अकेले यात्रा करने समय जितना कुछ सीखा अथवा देखा था. उसे भूलने सा लगा था। धनी यात्री का वास्तविक आनन्द धनोन्माद के कारण प्रायः नष्ट हो जाया करता है। रुपयों से भरी थैली लेकर ज़ो लोग यात्रा करने निकलते हैं उनकी यात्रा मे कुछ भी मजा नही रहता। वे जिस देश मे जाते हैं वहाॅ के लिए सदा विदेशी ही बने रहते हैं और विदेशी के ही रूप मे लौट भी आते हैं। उन देशो के प्राकृतिक सौन्दर्य का मजा लूटने मे भी वे असमर्थ से रहते हैं। उनके पास वाली रुपयों की बड़ी थैली उनके पेट की पिलही बन जाती है जिसे वे दोनों हाथो से दबा कर बैठे रहते हैं ; जो न तो उन्हे चलने देती है और न आँखों के सामने की ही कोई चीज देखने देती है। ऐसे धन के रोग से रोगी मनुष्य प्रकृति से बातें नहीं कर पाते, वे उसके लिए सदा ही अपरिचित बने रहते हैं।

इन रोगियो की नये देश में जब कभी किसी मनुष्य की ओर दृष्टि जाती है तो वे उसके साथ अपनी तुलना करके यह देख लेना अपना सबसे पहला काम समझते हैं कि उन दोनों में किसके कपड़े अधिक

अच्छे हैं और कौन अधिक धनाढ्य होगा। किसी देश के लोग वास्तव में कैसे हैं, इसकी खोज करने की उन्हे फिक्र नहीं रहती। ये धनी भला इस बात की कल्पना ही क्योंकर कर सकते हैं कि वास्तविक जीवन क्या है ? वे दूसरों की मिहनत पर जीने वाले होते हैं, उन्हे अपनी रोटी कमाने की चिन्ता नहीं रहती और इसलिए जहाँ से वह रोटी आती है उस भूमि से भी परिचय नहीं प्राप्त करना चाहते।

पहले दिन ही जब उन भारतीय महाशय के साथ मोटर में बैठ कर झील-किनारे की सड़क से निकला तो उस स्थान पर अपने आपको अपरिचित सा देखने लगा। जब से लूचेर्न पहुँचा था, उस झील-किनारे की घास पर बहुत बार लेट चुका था, उससे मेरा घना सम्बन्ध हो गया था, उससे मैं बातें किया करता था और वह उसका मुझे उत्तर दिया करती थी ; पर जब मैं उधर से मोटर पर निकला तो मालूम पड़ा मानो उसने मुझ पर कटाक्ष करते हुए मेरी ओर से अपना मुँह फेर लिया है। वह भूमि, जो अपनी गोद में मुझे अपने लड़के जैसा उछाला करती थी, जिसकी गोद में मैं खेलते रहना पसन्द करता था और सारी निराशाएँ भूल कर जीवन-संग्राम के लिए नया बल प्राप्त किया करता था, बिलकुल मुर्दा सी तथा सुनसान सी दिखाई देने लगी। अपने प्रति उसकी तिरस्कार-भरी दृष्टि मैं बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। उस मोटर से कूद पड़ने की मेरी इच्छा हो रही थी ; रास्ते के किनारे की कँटीली झाड़ियों को पार करते हुए उस हरे-भरे मैदान में अकेले मुँह छिपा कर उस माँ से क्षमा माँगने को मन व्याकुल हो रहा था।

दूसरी ओर उन भारतीय महाशय को स्विटजरलैंड की सैर करने के लिए आने वाले दूसरे आम यात्रियों की ही तरह मोटर पर लदे रहने में ही आनन्द आता था। अपने उस लदे रहने को ही ये लोग 'अत्यन्त सुन्दर यात्रा' का नाम दिया करते हैं। इनके लिए अपने सामने देखने

अथवा याद रखने की कोई वस्तु नहीं होती। इसीलिए ये मोटर में अपने साथ यात्रा करने वाली कोल्हू सी मोटी अथवा छड़ी सी पतली, पाउडर से पुती रमणियों के साथ अपना चित्र खिंचवा कर उसे अपने जीवन के सबसे सुन्दर काल के स्मरणार्थ छाती से लगे चमड़े के मनीबैग में ढोया करते हैं।

इन लोगों की बातचीत में भी प्रायः एक ही चर्चा रहती है और वह यह कि—'आज का जलपान बड़ा सस्ता तथा अच्छा था। काफे बड़ी लज्जतदार थी, पर चाय का जायका न लेना बेवकूफी हुई। अभी एक घण्टे में हमारी मोटर फलाँ शहर में पहुँचेगी, और वहाँ पर हम लोग डट कर काफे पीयेंगे और केक खायेंगे। बिअर रास्ते मे एक-दो गिलास से ज्यादा पीना अच्छा नहीं होता; हाँ, शाम को चाहे जितना भी क्यों न पिया जाय, कोई हर्ज नहीं।' फिर इन लोगो में और पहले भी जो लोग उन स्थानों पर आए होते हैं उनमें पिछले साल पी हुई काफे और केक की बात छिड़ जाती है और इसी प्रकार मनबहलाव होते-होते मोटर सुन्दर-से-सुन्दर प्राकृतिक दृश्य वाले स्थानों को पार करती हुई निकल जाती है।

मेरा इस तरह की यात्रा में दम घुटने लगा था। चाहे जैसे भी हो, इससे पीछा छुड़ा भाग निकलना चाहता था। बहुत थोड़े ही काल में मुझे इस बात का पक्का अन्दाज़ लग गया था कि धनी लोगों के समाज तथा प्रकृति देवी के बीच कोई सम्पर्क नहीं रह जाता। धन उन्हें रोगी बनाये रहता है, उनकी आँखें अन्धी किये रहता है, फिर भला वे प्राकृतिक सौन्दर्य की कल्पना भी कैसे कर सकते हैं! और, यदि उस सौन्दर्य को ही नहीं देखा, उसकी गोद में खेले ही नहीं, तो फिर निरे रोडे-कङ्कड देखने और धूल फाँकने से क्या लाभ?

मैं जिन भारतीय महाशय के साथ यात्रा कर रहा था वे भी दूसरे

धनी यूरोपीय यात्रियों की तरह सवेरा, शाम, रात आदि के होने से दिन का व्यतीत हो जाना अथवा बदलना नहीं मानते थे, बल्कि रंग-बिरंग की—समय-समय की—पोशाक बदलने से ही, उनके अनुसार, समय बदलता जाता था। मुझे 'गरीब' समझ और मुझ पर रहम कर अपना एक पुराना सूट भी मुझे वे देने वाले थे; और जब उनकी यह इच्छा प्रकट होने पर मेरा चेहरा क्रोध से लाल हो आया उस समय भी वे मेरी भावना का अनुमान नहीं कर पाये। मुझे क्रुद्ध देख कर उन्हे आश्चर्य हुआ और मुझे नाशुक्रा समझने लगे; पर जब मैंने उन्हे यह उत्तर दिया कि 'मुझे तरह-तरह की पोशाक पहन कठपुतलियों की तरह अपना प्रदर्शन करने की इच्छा नहीं' तो वे महाशय पहले तो नाराज हो गये और बाद को यह समझाने लगे कि मुझे भी तौर-तरीका सीख ही लेना चाहिये, नहीं तो यात्रा करने से आखिर फ़ायदा ही क्या उठाया!

मैं यह अच्छी तरह जानता था कि यात्रा के अन्त तक हम दोनो का साथ निवहना कठिन है। यदि उन्होंने किसी यात्रा कराने वाली कम्पनी के जरिये यात्रा की होती तो जितना खर्च वे मुझ पर किया करते थे उससे कहीं अधिक होता, फिर भी वे मेरे ऊपर अपना एहसान समझने लगे थे और मुझे जहाज-टिकट का लालच देकर यह समझने लगे थे कि उनका मेरे ऊपर पूरा-पूरा अधिकार ही हो गया है। यदि मैंने शुरू से ही उनकी इस इच्छा का विरोध न किया होता तो वे मुझे ख़रीदा हुआ गुलाम ही समझने लग जाते।

उनके साथ एक-दो सप्ताह यात्रा करने के बाद मेरे भीतर यह विचार आने लगा था कि आखिर ऐसे लोगों को यात्रा करने का अधिकार ही क्या है? जो लोग यात्रा का महत्त्व समझ सकते हैं, जो लोग उससे पूरा-पूरा फायदा उठा सकते हैं और सिर्फ़ अपनी ही नहीं

बल्कि समाज की उन्नति के लिये अपने को उस यात्रा द्वारा अधिक उपयोगी बना ले सकते हैं, ऐसे लोगों को पहले तो दम लेने तक की फुर्सत नहीं मिलती और यदि कभी उन्हे फुर्सत मिलती भी है तो साधन नहीं प्राप्त होते। दूसरी ओर, ऐसे लोगों की ही मिहनत पर जीने वाले लोगों को वे सभी साधन प्राप्त रहते हैं और वे केवल अपने आलसी जीवन से थक कर आराम लेने की दृष्टि से यात्रा किया करते हैं, जिससे समाज के उपार्जित धन की बरबादी के सिवा और कोई फायदा नहीं होता।

मैं उन महाशय से झगड़ कर अपना पीछा छुड़ाने की बात सोच ही रहा था कि उनका साथ छूटने का अनायास ही मौका आ गया। वे महाशय स्वयं ही अपनी यात्रा से ऊब गये थे और आस्ट्रिया की सरहद मे आते ही यह निश्चय कर लिया कि इन्सब्रुक के सिवा और कोई स्थान नहीं देखेंगे। वहाँ से वे सीधे गेनोआ जाकर भारत के लिए जहाज़ लेने वाले थे। जैसा कि उन्होने वादा किया था, मेरे लिए भी एक सस्ती जहाज-कम्पनी से भारत का टिकट मोल ले दिया। मैं किसी प्रकार उनसे अपना पीछा छुड़ाना चाहता था, इसलिए आस्ट्रिया के दूसरे स्थानों को देखने का बहाना कर इन्सब्रुक में ही रुक गया। जिस दिन हम वहाँ पहुँचे थे उसी दिन वे शाम को गेनोआ के लिए रवाना भी हो गये।

उनका साथ छूटते ही अपने को जिससे बिछुड़ा हुआ अनुभव कर रहा था उसकी ओर दौड़ पड़ा। आस्ट्रिया के पहाड़ अभी भी बर्फ से ढके थे। मैं उन पर दौड़ने लगा।

हाना

अप्रैल महीने का अन्तिम सप्ताह था। धूप निकली हुई थी। स्नो (बर्फ) पर दौड़ने के लिए दूर-दूर से आए हुए यात्रियों का अभी भी जमघट था। ये यात्री होटलों में ठहरे थे।

मैं स्वयं उन होटलों के ससार से भी बहुत दूर आगे जा निकला। इन्सब्रुक में ही एक आस्ट्रियन युवक से परिचय हुआ था और उसी के साथ ऊँचे पहाड़ों में 'स्की' (पाँव मे लम्बे-लम्बे फट्टे लगा कर बर्फ पर दौड़ने का खेल) के लिए रवाना हो गया। हम लोगों के सोने के लिए 'श्नेहूटे' कहलाने वाली बर्फ पर खड़ी काठ और फूस की झोपड़ियाँ थीं। वहीं हम लोग स्वय 'मकरोनी' पका कर खाया करते और दिन-भर चारों ओर के पहाडों में 'स्की' पर दौडा करते।

हमारी झोपडी मानव-जगत् से बहुत दूर निर्जन स्थान में थी। हमारी बातें नई रुई के फाहों सी पडी हुई बर्फ से ढके पानी के कलकल करते हुए सोतों से हुआ करती थी। उन दिनों वे मुझे जितनी शाति दिया करते, जैसा ढाढ़स बँधाया करते वैसा मनुष्य-समाज से शायद ही कभी मिल सकता था।

जब फिर मानव-जगत् का आकर्षण हमारे भीतर जोर मारने लगा तो हम नीचे उतरे। नीचे के दर्रों में बर्फ़ गलती जा रही थी। पहाड़ियाँ अपना सर्दी के दिनों वाला धवल-वस्त्र त्याग रही थीं। वह दृश्य हमारे लिए थोडी उदासी ला दिया करता था। इसलिए पहले की अपेक्षा भी अधिक वेग से हम नीचे आने लगे। जब रास्ते पर और अधिक बर्फ़ नही रही तो हम लोगों ने अपनी 'स्की' पाँवों से निकाल ली और उसे कन्धे पर डाल चलने लगे। हम ज्यों-ज्यों नीचे आते, जमी हुई तथा गिरने वाली दोनों ही तरह की बर्फ़ अधिकाधिक पिघली हुई दिखलाई देती।

नीचे के एक गाँव मे मेरे आस्ट्रियन मित्र अपने एक परिचित के घर रुक गये और मुझसे भी वहीं रात बिताने का आग्रह किया, पर मैं वहाँ न रुक शहर की ओर चला।

जिन पहाड़ियों से हम जा रहे थे उनके बर्फ पर अभी डूबते सूर्य की अन्तिम लाल किरणे चमक ही रही थी कि मैं शहर के किनारे आ पहुँचा। जिस सड़क से होकर मैं शहर की ओर जा रहा था उसके किनारे के मकान छोटे-छोटे तथा एक ही ढग के बने थे। यह अवश्य ही मजदूरों के रहने की, शहर के किनारे वाली, बस्ती रही होगी। मेरे ठीक सामने एक बड़ा सा मैदान था और एक पगडण्डी उस मैदान से होकर निकलती थी जो शहर की ओर जाती थी। मेरे बाईं ओर की सड़क पर मोटरें धूल उड़ा रही थी, इसलिए उधर न जा मैं पगडण्डी की ओर बढा। अब मुझे यह भी दिखलाई दिया कि उधर से भी कोई स्त्री आ रही है। उसके कपडे घास की तरह हरे रग के थे, इसलिए दूर से उसकी ओर मेरा ध्यान नहीं गया था। जब वह उस पतली पगडण्डी पर मेरी बगल से निकलने लगी तो मैंने एक दृष्टि उसकी ओर डाली

और तुरन्त ही सहम कर खड़ा हो गया। वह भी खड़ी हो गई और दूसरे ही क्षण मुसकराने लगी। मैं एक-ब-एक चिल्ला उठा—

'मैंने तो तुझे राइन-किनारे देखा था, तू हम लोगों की मेज पर बिअर ले आया करती थी!'

'तू यहाँ?'

हम लोगों ने हा ' मलाये और एक क्षण के लिए दोनों में से किसी की भी समझ में नहीं आया कि क्या बोलें। फिर हाना ने ही अपने ठहाके द्वारा वह चुप्पी तोड़ी और दूसरे क्षण ही बातों का न खतम होने वाला ताँता लग गया। राइन-किनारे विद्यार्थियों के साथ नाच वाली जो सन्ध्या बिताई थी वह उसकी याद दिलाने लगी और धीरे से मुझे रास्ते के किनारे ढकेलते हुए कहने लगी—

'मालूम नहीं कितनी बार मैंने तेरी याद की, पर तूने तो आज तक मुझे अपनी खबर नहीं दी।'

मैंने उसके उस उलहने का कोई उत्तर नहीं दिया।

उसने अपना घर दिखलाया और उस ओर मुझे खींच कर ले जाने लगी। मेरे ऊपर वह मानो अपना स्वाभाविक अधिकार समझती थी; इसलिए मुझसे पूछने की उसे आवश्यकता नहीं थी।

उसकी बातों के ही साथ-साथ उसकी हँसी का तार नहीं टूट रहा था। वह जो कुछ भी बोल रही थी उसका आधे से अधिक उसके बिना सोचे-समझे ही उसके मुँह से निकलता जा रहा था। अपने भीतर का स्वाभाविक उच्छ्वास वह रोक नहीं पा रही थी। राइन-किनारे वाली हाना में जो बातें देखी थीं, उसकी जैसी गति देखी थी, इसमें भी ठीक वैसी ही थी। उसके स्वभाव में जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ था। हाँ, बाहर से, पहली झलक में, थोड़ी मोटी अवश्य ही हो गई दीखती थी।

घर पहुँचने पर वह मुझे सीधे अपने रसोई-घर मे लेती गई। वहाँ पर एक लम्बा और हृष्ट-पुष्ट आदमी कील पर टँगे तौलिये से अपने हाथ पोंछ रहा था। उसके हाथ के गट्टे की नसे बड़ी मोटी और ऊपर की ओर तनी हुई दीखती थी जिनसे स्पष्ट था कि वह कोई शारीरिक परिश्रम करनें वाला मजदूर था। शरीर पर आधी बाँह की बिना बटन तथा कालर वाली कमीज उसने पहन रखी थी। उसके नीचे 'निकरबाकर' (ह्लसफोर) था और बिना मोजे के पॉवों मे 'पॉटोफेल' (घर में पहना जाने वाला जूता) डाल रखा था। मुझे देख कर उसने मुझे नमस्कार करने के लिये अपना सर झुकाया।

'मेरे पति,' हाना ने कहा और उसी दम मुझे अपनी ओर खींचते तथा हँसते हुए मेरा परिचय दिया।

'मेरे दोस्त !'

हम तीनों हँसने लगे। हाना के पति का नाम कार्ल था। उसने अपना नाम बतलाते हुए हाथ मिलाया और बिना सोचे-समझे हम लोग एक-दूसरे को 'तू' कह कर पुकारने लगे।

हजार चेष्टा करने पर भी उन्होंने मुझे होटल मे नहीं लौटने दिया और अपने ही यहाँ रहने के लिए बाध्य किया। पहले ही क्षण से उन्होंने मुझे अपने परिवार का सदस्य बना लिया था।

जितने दिनों से हाना से मुलाकात नहीं हुई थी, केवल उतने समय का ही नहीं, बल्कि उसके बहुत पहले का भी इतिहास वह मुझे सुनाने लगी। यहाँ तक कि अपने प्रेम का भी इतिहास खोल कर कहने में उसे कोई हिचक नहीं हुई।

हाना के पिता लकड़ी के खिलौने बनाने वाले कारीगर थे। आस्ट्रिया के जिस गाँव में वे रहा करते थे उसके आस-पास में उनकी

कला की काफी प्रसिद्धि हो चुकी थी। बहुत दूर-दूर के गाँवों के युवक उनके यहाँ आकर काम सीखा करते थे। यदि उन्होंने किसी शहर में जा कर अपनी दूकान खोली होती तो आमदनी काफी होने के साथ-ही-साथ उनकी ख्याति भी काफी बढ़ती ; पर इसकी परवा नहीं थी। वे पुराने ढङ्ग के कारीगर थे और इसी कारण उनका ध्यान पैसे अथवा ख्याति की ओर उतना नही था जितना कि कला की ओर। अपनी कला की वृद्धि के लिये उसी गाँव मे, जहाँ पर उनका जन्म हुआ था, वे रहना ठीक समझते थे। यदि वह केवल दो-तीन दिनों के लिए गाँव छोड़ कर किसी सम्बन्धी के यहाँ भी जाते तो वहाँ उनका दम सा घुटने लगता था। अपने घर की खिड़की के सामने की ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ और उन्हे चूमते हुए बादलों को देखे बिना वे मानो जी ही नहीं सकते थे।

हाना ने भी अपना बचपन उसी गाँव में बिताया था। गाँव छोटा सा था ; पर बड़े ही सुन्दर स्थान पर बसा था। उस गाँव के एक किनारे से एक छोटा सा झरना बहता था। इसी झरने के किनारे के एक मकान में हाना के पिता, पितामह, प्रपितामह रहते आये थे। इसी मकान में हाना का भी जन्म हुआ था और उसकी ही खिड़कियों से उसने ससार की पहली झाँकी ली थी। मालूम नहीं कितनी बार, जब उसकी माँ उसे एक झूले मे डाल कर घर का काम-काज सँभालने चली जाती थी, वह अकेले मे चिल्ला उठती थी और तुरन्त ही अपने सामने की पहाड़ी की तराई में चरने वाली गायों की गरदनों में बँधी हुई घण्टियों की आवाज सुन कर चुप हो जाती थी।

जब वह कुछ सयानी हो गयी थी उस समय भी उसके माता पिता उसकी बहुत ही कम खोज-खबर लिया करते थे। वे उसे गरमी के दिनों मे धूप निकली रहने पर हरी-भरी घास पर सुला दिया करते

और वह नींद मे घंटों अपने पास के बहने वाले झरने से बातें किया करती। नींद टूट जाने पर भी वहाँ फुदकने वाले छोटे-छोटे मेढकों के साथ, अपने सामने के वृक्षों के साथ और आगे चल कर दूरस्थ तथा सर ऊंचा किये खड़ी पहाड़ियों के साथ घटों बातें किया करती। उतने समय के लिए यदि मनुष्यों ने उसे भुला दिया था तो वह भी उनकी परवा नहीं करती थी। प्रकृति की गोद मे ही खेलना उसे अधिक पसन्द था और जी खोल कर उनसे ही वह बाते भी किया करती थी। भय का वह नाम तक नही जानती थी। कुत्ते, बिल्ली तथा बकरों के मुँह के भीतर तक हाथ ले जाकर उन्हे खिलाया करती थी।

माँ की मृत्यु के समय उसकी अवस्था दस वर्ष की थी। उस समय तक उसने काफी होश सँभाल लिया था और घर का काम-काज सँभालने लायक बन गई थी। पिता को अपनी कला की प्रगति करने और चेलों को शिक्षा देने से इतनी फुर्सत नही मिलती थी कि वह अपनी पुत्री की शिक्षा-दीक्षा आदि की ओर ध्यान देते। हाना कपड़े धोना, खाना पकाना, मोजे दुरुस्त करना जानती थी और इसीमे पिता को सन्तोष था। हाना को स्वयं भी अपने में कोई कमी नहीं खटकती थी जिसकी वह चिन्ता किया करे। वह झरने पर के छोटे पुल पर घण्टों हाथ में मोजा और सुई लिये अकेली बैठी स्वप्न देखती रह सकती थी।

जब वह और भी कुछ बडी हो गई और बचपन बीतने तथा यौवन के लक्षण भी दिखलाई देने लगे तो उसी झरने के छोटे पुल पर उसके पिता के चेले उससे घण्टों बातें किया करते। पिता के चेलों की संगति उसे पसन्द थी और उनकी सगति ने ही उसे हँसमुख बना दिया था। उस गाँव मे जितनी लड़कियाँ थीं उन सबमें हाना सबसे अधिक और सबसे सुन्दर तरीके से हँसने वाली थी। इसीलिए उसके

पीछे दौड़ने वाले गाँव के युवकों की कमी नहीं थी। रविवार को जब उस गाँव में युवा-युवती 'तीन पुराने उल्लू' नाम के काफे-घर में इकट्ठे हुआ करते, उस दिन तो हाना के साथ नाचने वालों की लम्बी फिहरिस्त सी बनी रहती। नाचते समय सभी अपना-अपना अधिकार उस पर जमाने की चेष्टा किया करते और हरएक ही अपने एकान्त में मिलने और उसके साथ घूमने जाने का समय निर्धारण किया करता। हाना भी हर रोज पारी-पारी से उनके साथ घूमने जाने का वचन दिया करती। वे युवक यदि अपनी तीन-चार की मण्डली में इकट्ठे हुए रहते और झरने के किनारे मुँह से बजाया जाने वाला छोटा 'हारमोनिका' बजाया करते और सयोग से उधर से हाना निकल आती तो वे अवश्य ही गीत गाने लगते—

सबसे मस्ती है—हम लोगों के जीवन में,
यहाँ के लकड़ी वालों से और न सुखी जीवन कोई।

हाना उनके ही ताल में गाया करती और फिर बीच में खड़ी हो नाचने लगती। गाँव के सारे युवकों को हाना पर गर्व था और उन सभी में उसे अपनाने के लिये आपस में प्रतिद्वन्दिता थी।

इन्हीं दिनों उस गाँव में राइनलैंड के युवकों की गाने वाली एक टोली आई। ये लोग गा-बजा कर अपनी जीविका चलाया करते थे और उसी प्रकार भ्रमण भी किया करते थे। उसी टोली मे फ्राक नाम का एक युवक था। उसका पार्ट अधिकतर प्रेमी का गान गाने का रहा करता था। उसकी आवाज बड़ी मधुर थी, गला सुरीला था, लोगों से बातचीत करते समय भी उसकी बातचीत का ऐसा तर्ज रहा करता था जिससे हाना जैसे स्वभाव की लड़कियों का बड़ी ही आसानी से मुग्ध हो जाना बिलकुल स्वाभाविक था।

फ्राक अब तक वास्तविक जीवन से परिचित नहीं था। उसका

संसार सगीत का ससार था। एकान्त मे गाने से बढ़ कर आनन्द और मस्ती का समय उसके लिए और कोई दूसरा नहीं होता था। उसकी यही बाते विशेषकर हाना को अपनी ओर बड़ी वेग से आकर्षित कर रही थी।

दूसरी ओर हाना का निष्कपट तथा सरल स्वभाव, उसके चेहरे पर की स्वाभाविक सुन्दरता फ्राक के लिये भी कुछ कम आकर्षक नही थी। फ्रांक हाना के भीतर अपने सगीत का आदर्श देखा करता था। वास्तविक सगीत की भावुकता के चपेट में पड़े रहने के कारण हाना से परिचय होने के दूसरे दिन से ही वह इस बात पर आश्चर्य करने लगा कि आखिर उतने दिनों तक वह हाना के बिना जीवित ही क्योंकर रह पाया।

दोनों ही चढ़ती जवानी की उमङ्ग मे थे। किसी बात में आगा-पीछा सोचना उनके स्वभाव के विपरीत था। रोमांचक जीवन का उन्माद उनकी नस-नस में भर रहा था—नही, अब वह फटा पड रहा था—इसलिए उन्होंने अपने भीतर के उस घोड़े की लगाम बिलकुल ही छोड़ दी और स्वतन्त्रतापूर्वक उसे अपना जो रास्ता पसन्द आये, ले लेने दिया।

दोनों ही चुपके-चुपके एक रात वहाँ से भाग निकले और फ्राक की जन्मभूमि राइनलैंड मे जा पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उनकी सागीतिक भावुकता, उनसे दूर हटने लगी और सासारिक वास्तविकता के चपेटे लगने लगे। आर्थिक प्रश्न बड़ा ही जटिल था। उस प्रश्न की जटिलता का फ्राक ने पहले अनुमान तक नहीं किया था। एक-ब-एक जब अपने सामने उसे एक पहाड़ के रूप मे आते देखा तो उसका सामना करने की हिम्मत उसे नहीं हुई। भावुकता के आवेश में पहले आत्महत्या की सोचना लगा और उसी में उसे अपनी बहादुरी भी दीखने

लगी ; पर वह भी कुछ कम कठिन कार्य नही था। कुचल जाने की अपेक्षा भाग निकलना ही उसे अधिक उचित जँचा और वह वास्तव में ही भाग निकला।

पर हाना सामने की परिस्थितियों से वैसी डरने वाली नही थी। जिस दिन उसने सबसे पहले संसार की झाँकी पाई थी, उसे अपनी आँखों के सामने मस्तक ऊँचा किये हुए पहाड़ दिखलाई दिया था। उससे भय न खाकर वह अपनी दृष्टि उस पहाड़ की चोटी और उससे भी ऊपर लेती चली गई थी। उसे अपने भीतर पूरा विश्वास था कि वे परिस्थितियाँ उसे नीचे नही दबा सकेंगी।

कुछ काल तक वह राइनलैंड के कारखानों मे काम ढूँढने के लिए भटकती रही। उसे कोई उपयुक्त काम नहीं मिला। फिर होटलो में काम ढूँढने निकली। इन्हीं दिनों उसे एक बिअर की दूकान में काम मिला। वह इने-गिने दिन ही वहाँ काम कर पाई होगी कि उसका खुला स्वभाव रहने के कारण लोग उसे बहुत बदनाम करने लगे। उसके चरित्र पर का दोषारोपण यहाँ तक बढ़ा दिया गया कि हाना के लिये वहाँ रहना असम्भव बन गया। वह पुनः आस्ट्रियन जन्मभूमि में चली आई। घर लौटने के महीने-भर बाद ही उसने अपने गाँव के एक परिचित मजदूर के लड़के कार्ल से शादी कर ली और उसके साथ ही इन्सब्रुक चली आई। यहाँ कार्ल रेल-विभाग के मालगोदाम में और हाना एक छापेखाने में काम करने लगी।

जिन परिस्थितियों मे हाना उन दिनों थी और जिस समाज मे वह अक्सर मिलती-जुलती थी, उसने उसकी विचार-प्रणाली का ढर्रा ही कुछ दूसरा बना दिया।

अब भावुकता नही, बल्कि मजदूर-समाज का जीवन, उस समाज की अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई ही उसके जीवन का आदर्श बन गया

था और अपनी सारी शक्ति वह उसी में लगाती भी थी। अपने मजदूर-समाज की ही दृष्टि से वह दूसरे समाजों को देखने लगी थी और उसी दृष्टिकोण से उनकी विवेचना करने लगी थी।

कार्ल काम पर चला गया था; पर उस दिन हाना की छुट्टी थी। जलपान के समय मैं अकेला उसके साथ रसोई-घर में बैठा था। जरमनी मे मैंने अपना समय किस प्रकार बिताया, इसी की चर्चा उसने छेड़ी। हाइडिलबेर्ग की पढ़ाई, उत्तरी देशों की यात्रा, केटी से परिचय आदि बातें मैंने उसको विस्तारपूर्वक कह सुनाईं। वह मेरी बातें ध्यान से सुनती रही; पर बीच-बीच में अपनी हँसी का आवेग न रोक सकने के कारण इतनी देर तक हँसती रहती कि उसकी आँखों से आँसू निकलने लग जाते। जब मैं अपनी बाते खतम कर चुका तो उसने गम्भीर होकर पूछा—

'और यही तुम्हारा जरमनी का अध्ययन है?'

जरमनी में और भी दूसरे-दूसरे जो स्थान देखे थे उनकी भी बातें मैंने उसे बताईं; पर असन्तोष की जो रेखा उसके चेहरे पर मैंने अपनी बाते शुरू करने के आरम्भ में देखी थी वह अधिकाधिक गहरी ही होती गई। उसने मेरी ओर देखते हुए कहा—

'मेरे दोस्त! तुमने अपनी सारी यात्रा आँख मूँद कर ही पूरी की, जरमनी में देखने की और कोई भी चीज़ नहीं थी?'

मैंने समझा, शायद उसका मतलब जरमनी के ऐतिहासिक स्थानों से है। जरमनी में मैंने जितने 'बुर्ग' देखे थे उन्हें गिनाने लगा, उनके पूरा कर चुकने पर पुराने समय की राजधानी तथा उस शहर के प्रसिद्ध मकान गिनाने लगा; पर फिर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा—

'तुमने जरमनी मे केवल ईंट और पत्थर ही आँखें मुँदी रहने के कारण टटोल कर देखे हैं।'

'यह कैसे ?'

'तुम अभी जरमनी के प्रसिद्ध बुर्गों का नाम ले रहे थे और उनमें जो व्यक्ति रहा करते थे अथवा जिनके नाम से वे प्रसिद्ध हैं उनका नाम बतला कर तुम जरमनी के ज्ञान की अपनी पडिताई का परिचय देना चाहते हो ; पर यह तो बतलाओ कि जिन लोगों के नाम से वे बुर्ग प्रसिद्ध हैं उन्होंने उनके निर्माण में अपने हाथों से कितनी ईंटें जोडी थीं ? क्या वे स्वय उन बुर्गों का काग़ज पर नक्शा भी खींच सकते थे ? नहीं। उनका निर्माण करने वाले कुछ दूसरे ही लोग थे जिन्होंने अपने नाम की छाप उस बुर्ग की प्रत्येक ईंट पर लगा रखी है ; फिर भी तुम उन्हे नही देख पाते। अधों की तरह तुम्हे यह बतला दिया गया है कि जो चीज उस शक्ल की दीखे उसका नाम बुर्ग है और यदि वह अमुक स्थान पर बना हो तो उसे अमुक नाम से पुकारना चाहिये, और उनमें अमुक-अमुक व्यक्ति रहा करते थे, इसकी गिनती करनी चाहिये। तुमने यही पाठ रट लिया है। पर क्या तुम इस बात का अनुमान नहीं कर पाते कि उस पाठ में तुम वास्तविकता से कितनी दूर जा पडे हो ?

'तुमने जिन मुट्ठी-भर जरमनों से परिचय प्राप्त किया है उनकी सङ्गति में तुम्हे यह वास्तविकता दीख भी नही सकती थी। तुम जिन प्रोफ़ेसरों के पास सीखने गये थे उन्होंने स्वय ही अपने आपको बहुत पहले से ही वास्तविक कार्यशील समाज से अलग—एक अन्धकारपूर्ण कोठरी में—बन्द कर रखा है। जिस अन्धकार में रहने की उन्होंने तुम्हें आदत दे डाली है उससे निकाल कर यदि मैं तुम्हे प्रकाश दिखलाने का प्रयत्न भी करूँ तो तुम मेरी बातों पर शायद ही विश्वास करोगे ; क्योंकि आजकल के समाज के विषय मे जानकारी का ठीका

उन प्रोफेसरों ने ही ले रखा है, उस पर उन्होंने अपना पेटेंट करा रखा है और उसे ही ध्रुव सत्य मानने के लिये लोगों को बाध्य किया जाता है। ये प्रोफेसर व्यक्ति-विशेष की स्तुति किया करते हैं। पर वास्तविक कर्मशील समाज को—जो सचमुच सृष्टि किया करता है—भुला डालने का प्रयत्न करते हैं।

'ठीक यही बात वर्त्तमान जरमनी के सम्बन्ध में लागू होती है। अखबार, सिनेमा, थियेटर, ऑपेरा, जहाँ कहीं भी देखो, व्यक्ति-विशेष की स्तुति पाओगे। उन्ही व्यक्तियो को 'मनुष्योपरि' सिद्ध कर दिखलाने की चेष्टा की जाती है! राष्ट्र का असली प्राण, उसकी मूल आत्मा, जिसके कामों की नींव पर राष्ट्र की इमारत खडी रहती है, कार्यशील मजदूर-वर्ग है! उसका नाम तुम कहीं भी नहीं अथवा बहुत ही कम सुनोगे। इस मजदूर-वर्ग के लोग विना अपने व्यक्तिग। नाम की इच्छा रखे दिन-रात राष्ट्र को जीवित बनाये रखते हैं; पर वे ही वर्त्तमान समाज मे नीच और हेय दृष्टि से देखे जाते हैं।

'तुम्हे जरमनी मे उसी समाज की सङ्गति में रहना चाहिये था, उनमे ही पाठ पढ़ना चाहिये था; तब तुम्हें पता चलता कि जिन लोगों की ओर तुम आँखें उठा कर देखना भी नही चाहते उनमें ही राष्ट्र को जीवित रखने की कितनी अनन्त शक्ति छिपी है।'

'माफ करना हाना।'—मैंने कहा—'अपनी यात्रा में मैंने मजदूरों को भी देखा है, और जैसा तुम कहती हो कि मैं उनकी ओर आँखें उठा कर देखना भी नहीं चाहता, यह बात नहीं है। मैं उन्हे आदर की दृष्टि से देखता हूँ।'

'मेरे दोस्त! यही तो तुम्हारी भूल है! तुमने अपने को उनके साथ एक बना कर नहीं देखा, उनके साथ रह कर उनका भोजन नहीं किया, उनकी लड़ाई नहीं देखी, दूर खडे-खड़े उन्हें तमाशबीन की

तरह देखते रहे और इसीलिए यह आदरसूचक शब्द तुम्हारे मुँह से निकल रहा है। यदि तुमसे कोई मजदूर मिला भी होगा तो तुम्हारे इस भाव के कारण तुमसे खुल कर बातें नही की होंगी। उन्हें आदर करने वाला नहीं चाहिए, बल्कि उन्हें अपनाने वाला चाहिए, उन पर अपनपा दिखाने वाला चाहिए।

'तुम्हारे इस आदर में केटी अथवा उसीके जैसी और किसी दोस्त के लिए तुम्हारा आदर का भाव छिपा है! उन लोगों के प्रति जो तुम्हारे भाव हैं उन्हींके कारण तुम जरमनी को सुन्दर देखने लगते हो, उसका आदर करने लगते हो; पर तुम जरमने समाज के उतने निकट नहीं पहुँच पाये हो कि वह तुम्हें अपना सके अथवा तुम उसे अपना कह सको।

'विद्यार्थी-जीवन में तुम जिस समाज में अक्सर हिलते-मिलते थे वह तुम्हे अपना नहीं सकता था। तुम्हे अपनाने वाला केवल एक मजदूर समाज हो सकता था, और तुम उसी समाज के निकट अपने को नहीं ला सके। यह समाज तुम्हे तुम्हारे अपने देश के कार्य के लिए अधिक उपयोगी बना दे सकता था; पर उससे सीख लेने की बात तुम्हारे मन में आई ही नहीं।

'अभी तुम मुझे जैसा बतला रहे थे, हाइडिलबेर्ग में तुम 'रोमैंस' सीखने चले थे! बतलाओ तो, किसी राष्ट्र के जीवित रहने के लिए 'रोमैंस' उसमें कितनी सहायता पहुँचा सकता है? और, रोमैंस' के पीछे पड़े रहने के लिए भी समाज में कितने लोगों को अवकाश है? समाज के ऊपर-ऊपर के फालतू लोगों के लिए, जिनका जीवन-संग्राम जटिल नहीं, जो दूसरों की मिहनत पर अपना जीवन बिताया करते हैं, जो परोपजीवी हैं और जिनका आलस्य के सिवा दूसरा और कोई पेशा नहीं, वे ही 'रोमैंस' के पीछे अपनी इतनी शक्ति तथा अपना इतना समय

खर्च कर सकते हैं, वे राष्ट्र के ऊपर सिवा भार बने रहने के और कुछ नहीं किया करते। तुम उन्हीं लोगों से सीखने गये थे न? उनसे तुम अपने अथवा अपने देश के काम की कौन सी चीज सीख सकते थे?

'तुम अपने देश का ही उदाहरण लो! यदि वहाँ मजदूर और किसान काम न करें तो ये रोमाचक जीवन वाले कितने घंटे जीवित रह सकते हैं? तुम स्वयं अपनी ही बात देखो, यदि तुम काम न करो तो कितने दिनों तक तुम्हारा वह 'रोमैंस' चल सकेगा? केटी अभी तक स्वय ही हवा में उड़ने वाली बनी हुई है, वह तुम्हे कुछ सिखला नहीं सकती थी। हाँ, जिस दिन वह भी मेरी ही तरह ठोकर खाकर लौटेगी उस दिन उसे भी चेत आयगा और अपना तथा अपने वर्ग का स्वार्थ स्पष्ट रूप में देख सकेगी। तुम यह न समझा कि वह अपने भीतर के उत्साह तथा आशा के उन्माद में उस जीवन की ओर दौड़ रही है! मैं उसे भली भाँति समझ पा रही हूँ, उसकी अपने भीतर की निराशा ही उस जीवन की ओर उसे खींच रही है। जो स्वाभिमान का भाव निराशा के कारण उसके भीतर सो रहा है वह जिस दिन जाग्रत होगा, मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि जिस वायुमण्डल में रहने के लिए वह इतनी उत्सुक है उसके प्रति ही उस दिन उसके भीतर ऐसी घृणा का भाव आयेगा कि वह उस समाज में साँस नहीं ले सकेगी।

'हमारे मजदूर-समाज में केटी के समान एक नहीं, हजारों ऐसी लड़कियाँ हैं जिन्हें बिना ठोकर खाये सूझ नहीं आती। जो भी हो, हमारे समाज ('मेरा मतलब मजदूर समाज से है) की शक्ति, उसका असली प्राण, ऐसे व्यक्ति नहीं हैं; उसे जीवित रखने वाले दूसरा ही धातु के बने व्यक्ति हैं जो अपनी रोटी के लिए, अपने अधिकार के लिए, अकेले अपने ही जीवन में नहीं, बल्कि सारे समाज के जीवन में सुख और आनन्द लाने के लिए लड़ रहे हैं। तुम बड़े ही अच्छे मौके से

इधर आए हो, हमारे सग्राम का कुछ-न-कुछ अनुभव तुम्हे भी हो ही जायगा। तुम्हारी आँखे भी यह देख कर खुल जायँगी कि 'रोमैंस' अथवा प्रेम नही, बल्कि संग्राम ही जीवन है। यह बात जैसे किसी व्यक्ति-विशेष के लिए, ठीक उसी प्रकार एक देश के जीवन के लिए भी लागू होती है। यदि तुम्हें स्वय भी जीवित रहना है तो जितनी जल्दी 'रोमैंस' से तुम्हारा पीछा छूटे, उतना अच्छा। संग्राम ही तुम्हारा एकमात्र रास्ता है। यही बात तुम हमारे तथा हमारे सारे मजदूर-समाज के जीवन में लागू होती पाओगे।'

अब मजदूर-समाज का महत्त्व तथा उसमें छिपी हुई शक्ति मुझे दिखलाई देने लगी। साथ ही, अपने भीतर की शक्ति पर भी दृढतापूर्वक विश्वास जमने लगा। एक मनुष्य द्वारा दूसरे के शोषण होने तथा दबाये जाने की बात मेरे लिए नई नही थी। मैं स्वयं जन्म से उसका शिकार बनता आ रहा था; पर उस अन्याय के खिलाफ लड़ने की शक्ति अपने मे है, यह अनुभव नहीं करता था। अब मेरी समझ मे आने लगा कि हमें भी जीने का, अपने जीवन को सुखी बनाने का अधिकार है; अपने विकास के लिए उपयुक्त वायुमण्डल का लाना परमावश्यक है। यदि हमे जन्म से ही अपने विकास की आवश्यक सामग्रियाँ मिली होती तो क्या मैं अभी जैसा हूँ उससे मैंने अपने को समाज के लिए कहीं अधिक उपयुक्त न बना लिया होता? यह मेरी भूल थी कि अब तक मैं अपने जीवन का कोई मूल्य ही नहीं समझता था। समाज की दृष्टि से आलसी लोगों की अपेक्षा हमारा जीना कहीं अधिक आवश्यक है। और इसी तरह मजदूरों के हजारों-लाखों बच्चों को, अपने जीते रहने के लिए, अपने विकास के लिए, जिन साधनों की आवश्यकता है, उन्हे प्राप्त करने का अधिकार है। जो अकर्मण्य, अपनी

आवश्यकता से अधिक, उन साधनों पर अधिकार जमाये बैठे हैं वे चोर तथा लुटेरों के सिवा और कुछ नहीं हैं। मेरे लिए तथा मेरे ही समान मजदूरों के बच्चों के जीवित रहने के लिए, उनके अपने विकास के लिए आवश्यक साधन प्राप्त नहीं हैं, और जब उन साधनों पर हम अपना अधिकार जमाना चाहते हैं तो अकर्मण्य-वर्ग हमारा रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं। उन सभी आलसियों की अपेक्षा एक छोटे से मजदूर के बच्चे का जीवन कहीं अधिक मूल्यवान है और इसीलिए अपने जीने तथा अपना विकास करने के साधनों पर उनका अधिकार होना ही समाज की उन्नति का एकमात्र रास्ता है।

एक दिन हाना ने शाम को अपने काम से लौटने पर कहा—

'हम लोग जीवित रहने के अपने अधिकार के लिए किस प्रकार लड़ते हैं और हममे कितनी शक्ति है, इसका अन्दाज़ तुम कल लगा सकोगे। कल पहली मई है; यह अन्तर्राष्ट्रीय मजदूरों के एक होकर लड़ने का दिन है।'

उस दिन शाम को भी, और दिनों की भाँति, जब हम लोग घूमने निकले तो जिन रेस्तुराँ में मजदूर इकट्ठा हुआ करते थे उन्हें देखते हुए लौटे। उन स्थानों पर मुझे कोई नई बात नहीं दीखी। जैसा और पहले उन मजदूरों को देखा था, उस दिन भी वे वहाँ बैठे बिअर पी रहे थे, ताश खेल रहे थे तथा भद्दी-भद्दी गालियाँ बकते हुए गप लड़ा रहे थे। उन्हें देख कर कोई भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि उनमें एक होकर अपनी रोटी के लिए, अपने वर्ग के स्वार्थ के लिए, लड़ने का माद्दा हो सकता है। जागृति—चाहे वह राजनीतिक हो अथवा सामाजिक, अथवा अन्य ही किसी क्षेत्र की—उनसे कोसों दूर दीखती थी। हाना ने उस वर्ग की जितनी बड़ाई की थी—और जिसका मेरे ऊपर गहरा प्रभाव

कर किसी ने फेंक दिये। इसी समय पुलिस ने गोलियाँ दागनी शुरू कीं। शायद ये झूठे फायरों की आवाजें थीं; फिर भी भीड़ पीछे को हटने लगी।

उस गोलमाल मे कुछ सुनाई नहीं दे रहा था और न अपने बगल के साथी को ही ढूँढ लेना आसान था। एक-ब-एक अपने को मैंने पुलिस के ठीक सामने वाली उस भीड़ की सबसे अगली कतार में पाया। हाना मेरी बगल में नहीं थी। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई तो देखा कि भीड ने उसे ढकेलते-ढकेलते एक किनारे कर दिया था और उस ओर से घुड़सवार-पुलिस हाथों मे हाथ-हाथ भर के लम्बे सोंटे लिये भीड़ को चीरती हुई बढती आ रही थी। हाना उस स्थान पर भीड़ की पहली कतार में थी। घुड़सवार-पुलिस को आते देख वह हटी नहीं। मुझे साफ़ दिखाई देने लगा कि घोड़े की टाप अभी उसको कुचल डालेगी, पर उस पर सवार सिपाही ने घोड़े को एक ओर मोड कर हाना के सर पर इस तरह तोल कर डण्डा मारा कि वह लड़खड़ा कर गिर पडी।

उस समय मैं जल्दी मे कुछ सोच नहीं सका, मेरे शरीर में बिजली सी दौड़ गई थी; मैं भीड़ को चीरता हुआ उस घुडसवार के पास तक पहुँच गया। यह सोचने का मौका पाने के पहले ही कि उसके हाथ से कोई उसका सोंटा छीनने का साहस करेगा, उसके हाथ का सोंटा मेरे हाथ में आ गया था। मुझे उस घुड़सवार का जो अङ्ग दिखलाई पड़ता उस पर मैं आँख मूँद कर अन्धाधुन्ध सोंटा चलाता जा रहा था। हाथ चूकने से कभी-कभी सोंटा घोड़े को भी लग जाता और जिस ओर पुलिस के सिपाही खड़े थे वह उछलता हुआ उधर ही टापे चलाने लगता। मैं भी उधर ही सोंटे का वार करता हुआ लपकता जा रहा था; पर दोनों ओर से दो आदमियों ने मुझे पकड़ कर पीछे खींच लिया। मैं समझ रहा था कि मुझे खींचने वाले पुलिस के

आदमी हैं और उस ओर सोंटा चलाने ही वाला था कि देखा—मेरे एक ओर वह मजदूर खड़ा था जिसके साथ मैं उस भीड़ में आया था। वह मुझे शान्त कर रहा था, पर मैं अपनी जबान में गालियाँ बकता जा रहा था, जो उस स्थान पर खड़ा हुआ कोई भी नहीं समझ सकता था।

जब वे मुझे खींचते हुए भीड़ के पीछे ले आये तो वहीं हाना भी खड़ी मिली। वह मुसकरा रही थी; पर उसके सर मे रूमालों की सफ़ेद पट्टी बँधी थी जो एक स्थान पर लाल होती आ रही थी। मेरे आस-पास खड़े मजदूर मुझे भागने के लिये कह रहे थे, पर मैं समझ नहीं पा रहा था कि आखिर मैं भागूँ क्यों! पर एक मजदूर बोला—

'पुलिस हमारी शनाख्त नही कर सकेगी, पर तुम्हारे चेहरे के रंग से वह तुम्हे खोज निकालेगी। हमारे दल का सम्बन्ध वह, मालूम नहीं, विदेशों के कितने दलों से जोड़ने लगेगी। तुम जिनकी सहायता करना चाहते हो, तुम्हारे पकडे जाने से उनके ही ऊपर आफत आयगी।'

मैं घर लौटना चाहता था, पर एक मजदूर ने मुझे अपनी मोटर-साइकिल के पीछे बिठाते हुए कहा—

'नहीं, वहाँ पुलिस बैठी है। चलो, मैं तुम्हें रास्ता दिखलाता हूँ।'

मुझे पता नहीं, वह मुझे कहाँ लिये जा रहा था। रास्ते में पूछने पर उसने कहा—

'घबराओ नहीं। जैसे तुम हमारे मित्र हो वैसे ही हम भी तुम्हारे हैं। जीते जी तुम्हें शत्रु के हाथ नहीं पड़ने देंगे।'

घण्टे भर पूरी रफ़्तार से हम आगे बढ़ते रहे। तीसरे पहर एक जगह उसने साइकिल खड़ी की और आगे दिखलाते हुए कहा—

'यह रास्ता रेलवे-स्टेशन को जाता है। तुम आधी रात की गाड़ी से ब्रेनर के लिये रवाना हो जाना। कल सवेरे वहाँ पहुँच जाओगे।'

'लेकिन मैं तो भागना नहीं चाहता !'

'जब मामला शान्त हो जाय तब फिर लौट आना ! हम लोगों के लिए भी यही अच्छा होगा ।'

'और हाना ?'

वह हँसने लगा और बोला—

'उसकी परवा न करो। उसकी खबर तुम्हे मिलती रहेगी और उससे तुम्हारी मुलाकात भी होगी। जब तक हमारी विजय नहीं होती, हम मर नहीं सकते ।'

पिछली बार जरमनी से भागते समय मेरे भीतर जैसा भय था; इस समय वैसा कुछ भी नही था ; भय का नाम-निशान तक मेरे भीतर नही रह गया था। चेहरे पर किसी प्रकार की घबड़ाहट नहीं थी। जहाँ पर आस्ट्रिया की सीमा खतम होती थी, पहरेदारों ने अपनी खिड़की से ही मुझे देखा ; पर खडे रहने तक के लिए भी नहीं कहा। जिस रफ्तार से कदम रखते हुए मैं पहले से चला आ रहा था, उसी रफ्तार से बढ़ता चला गया। शायद उस समय तक सीमा बन्द करने का हुक्म उनके पास नही पहुँचा था ।

स्टेशन के पहले एक पुलिस-चौकी पर मैं जरूर रोक रखा गया। वहाँ पहुँचते-पहुँचते मेरा शरीर सारे दिन की थकावट से चूर-चूर हो चला था। अभी अँधेरा नहीं हो पाया था ; इसीलिये आशा बाँधे रेलवे स्टेशन की ओर आगे बढ़ता जा रहा था। पुलिस वालों ने पासपोर्ट देख कर तो उसे मुझे फिर लौटा दिया, पर पूछा—

'आपके पास कितने पैसे हैं ?'

मेरे पास पैसे बहुत ही कम थे और पहरेदारों के कथनानुसार उतने थोड़े पैसे वाले आदमी का सीमा में घुसना मना था। मैं उन्हें

हजार समझाता था कि मैं चोरी-डाका डाल कर सफर नहीं करूँगा, बल्कि किसानों के घर में पुआल पर रात बिताऊँगा तथा उनके खेतों मे काम कर उनसे रोटी लूँगा और उसी प्रकार रोम तक की पैदल-यात्रा करूँगा। वहाँ पर मेरे परिचित हैं जिनके यहाँ टिकूँगा और फिर वहाँ मे भारत लौटने तक का जहाज-टिकट भी मेरे पास है। पर पहरेदार मुझ पर विश्वास नही करना चाहते थे और इसीसे मुझे छोड़ने के लिए राजी नही हो रहे थे। वे मुझे रोम के परिचित से तार देकर पैसे मँगाने के लिए कह रहे थे और पैसे आ जाने पर ही मुझे आगे बढने देना चाहते थे।

मैं पहरेदारों से उलझ ही रहा था कि झुँझला कर ज्यों ही एक बार दृष्टि फेरी तो रास्ते पर एक मोटर खड़ी हुई दिखलाई दी। बिना कुछ सोचे ही मैं उसमे बैठे हुए लोगों की ओर देखने लगा। उसमें एक युवती बैठी हुई दिखलाई दी जिसके कपड़े उसके चेहरे से कहीं अधिक सुन्दर दिखाई दिये। उसने मेरा नाम लेकर पुकारा—

'हेर—'

मैं अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगा—

'हाइडिलबेर्ग की ऐनी को आप बिलकुल ही भूल गये ?' उसने हँसते हुए कहा। उसकी आवाज सुन कर मुझे याद आया कि हाइडिलबेर्ग में उसे कई बार देखा था और केटी के घर पर शायद दो-चार मिनट के लिये उससे बातें भी की थीं। पर मालूम नहीं उसके प्रति क्यों मेरे भीतर, जबसे उसे देखा था, एक प्रकार की चिढ़ सी थी।

फिर भी उसके पास जाकर मैंने उससे हाथ मिलाया। वह उस समय तक गाड़ी के बाहर निकल आई थी। उसकी बगल में खाली

दीपक जलने के समय मैं नैपल्स पहुँचा। उसी दिन दरियाफ्त करने पर पता चला कि जिस जहाज का मेरे पास टिकट था वह तीन दिन के बाद छूटने वाला है। अब मैं वास्तव में ही यूरोप से विदा लेने वाला था।

नैपल्स मे रहते समय, एक दिन, अधिकाश लोग जिधर टहलने जाते थे उधर न जाकर एक विपरीत दिशा की ओर निकला। पहले से ही सुन रखा था कि उस ओर जेल है, पर उस दिशा में कभी गया नहीं था।

जेल के फाटक पर पहुँचने के कुछ पहले ही देखा कि मामूली सिपाहियों-जैसी वर्दी पहने कोई व्यक्ति बीस-पचीस आदमियों को कवायद करा रहा है। कवायद करने वाले व्यक्ति अपनी पोशाक से जेल के कैदी से दीखते थे। उन्हे जो व्यक्ति हुक्म दे रहा था उसकी ओर केवल एक सरसरी निगाह डालता हुआ मैं आगे बढ़ता चला गया; पर कुछ ही क़दम बाद रुक गया। मैं अपने ही स्थान पर खड़ा हो उस व्यक्ति की चाल तथा हाथ हिलाने का ढग ध्यानपूर्वक देखने लगा। कवायद खतम हो जाने पर, और कैदियों के फाटक के भीतर घुस जाने पर वह व्यक्ति हँसता हुआ मेरी ओर आया और मुझसे कस कर हाथ मिलाते हुए बोला—

'कहो दोस्त! तुम यहाँ कैसे?'

'एमिल! तुम तो अपनी इस वर्दी में बिलकुल ही पहचान में नहीं आते।' मैंने हँसते हुए कहा।

'मैं जानता था कि तुम नैपल्स में हो'—उसने कहा—'कल शाम को मैंने तुम्हें स्टेशन के पास देखा था; पर उस समय तुम किसी स्त्री के

साथ थे, इसलिए तुम्हे छेड़ा नही ! अब बताओ, मुझे सबसे बड़ी उत्सुकता इस बात के जानने की है कि इतनी सुन्दर स्त्री तुम्हे मिली कहाँ ?'

'कौन सी स्त्री ?'

'उसके कपड़े अजीब ढंग के थे।'

'वह शायद कोई यात्री रही होगी ! मैं उसे नही पहचानता।'

एमिल का रंग-ढंग बदला नहीं था। बातचीत का भी तौर-तरीका पहले-जैसा ही था और स्त्रियों के प्रति उसके विचारों मे तिल मात्र का भी अन्तर नही पड़ा था। उसके पिछले दो वर्षों के इतिहास के विषय मे मुझे प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं थी। बिना पूछे ही वह विस्तारपूर्वक, जितने दिनों से हमारी मुलाक़ात नहीं हुई थी, उसका इतिहास सुनाने लगा।

मुझसे साथ छूटने के कुछ ही दिन बाद उसका अच्छा सुतार जम गया था। अन्तर्राष्ट्रीय जाल रचने वाले, ठग तथा लड़कियों का व्यवसाय करने वाले दल में उसने अपना नाम लिखा लिया था। पहले उसने जाली सिक्के बनाने सीखे, फिर मोटरें चुराई और उसके बाद लड़कियाँ फॅसा-फॅसा कर बेचने के लिए लाने लगा। फ्रास की पुलिस उसके पीछे थी; इसलिए कुछ दिनों के बाद ही वह अपने दल द्वारा इटली भेज दिया गया। वहाँ थोड़े ही दिन काम कर पाया था कि उसे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और लम्बी सख्त कैद की सजा दे दी। वह जेल मे अपनी सजा भुगत रहा था। उसी समय अपने 'भाग्योदय' का उसे एक नया रास्ता दिखलाई दिया। इटली से अफ्रीका में नये उपनिवेश दखल करने के लिए सेनाएँ भेजी जा रही थीं और उनमें जेल मे सजा भुगतने वाले क़ैदियों के भर्ती होने की मनाही नहीं थी। एमिल ने स्वेच्छापूर्वक अपना नाम उस सेना में लिखा लिया था और फिर छः महीने के लिए सैनिक शिक्षा के लिए रॅगरूटों की तरह एक

स्थान पर रखा गया था, जहाँ उसने उसकी तालीम प्राप्त की थी। वहाँ की तालीम उसने हाल में ही पूरी की थी और नैपल्स भेजा गया था। यहाँ की जेल में उसे कवायद सिखाने का काम दिया गया था। बहुत से क़ैदी मजदूरों के काम के लिए एमिल की देख-रेख में अगले सप्ताह अफ्रीका भेजे जाने वाले थे। एमिल को अपनी इस प्रगति का बड़ा अभिमान था। उसने बड़े गर्व से कहा—

'अफ्रीका वाले असभ्य हैं; उन्हे सभ्यता की शिक्षा देना हम लोगों का कर्त्तव्य है। साथ ही इस काम मे मेरी भी चाँदी-ही-चाँदी है। उपनिवेशी सेना में अगर मैंने तरक्की की, तो अवश्य ही किसी-न-किसी प्रान्त का शासक बना दिया जाऊँगा। फिर तुम मेरी शान देखना!'

एमिल से तर्क करना व्यर्थ होगा यह मैं जानता था; फिर भी मैंने उसे जाँचने के लिए कहा—

'लेकिन तुम जिस अन्तर्राष्ट्रीय ठग सम्प्रदाय के सदस्य थे उसके व्यापार के लिए तो अफ्रीका बढ़िया जगह नहीं!'

वहाँ ठगी का ढोंग रचने की जरूरत ही क्या पड़ेगी? वहाँ तो हमें मनमानी लूट-खसोट करने की यों ही पूरी आजादी रहेगी।'

'अब सभ्यता सिखलाने का मतलब मेरी समझ में आया। अब तक मैं उसका अर्थ कुछ दूसरा ही समझ रहा था। तो लूट-खसोट करना ही तुम्हारी सभ्यता है और उसीके प्रचार के लिए तुम अफ्रीका जा रहे हो।'

'अफ्रीका वाले जैसे असभ्य हैं उन्हें सभ्यता के रास्ते पर लाने का भी तो और कोई दूसरा जरिया नहीं है।'

मैं एमिल के साथ बातें करते-करते एक जङ्गल के पास आ पहुँचा था। इस समय हम लोग जहाँ जा खड़े हुए थे उससे थोड़ी ही दूरी पर एक खरगोश दिखलाई दिया। एक आदमी ने, जो अभी-अभी हमारे

पास एक कुत्ते के साथ आ पहुँचा था, खरगोश की ओर उस कुत्ते को दौड़ा दिया। मुझे एमिल और उस कुत्ते में कोई अन्तर नहीं दिखलाई दिया।

जब एमिल से बिदा लेकर घर की ओर लौटा तो मन में रह-रह कर यही बात उठ रही थी कि आखिर एमिल-जैसे लोगों का उपयोग करने के लिए उन्हे मनुष्यता से कितनी दूर ले जाया जाता है! केवल उन्हे दूर ही नहीं ले जाया जाता, बल्कि जितना भी कुकर्म उनसे कराया जाता है वह मनुष्यता के ही नाम पर! हमारे अपने देश को जो लोग सभ्यता दिखलाने का दावा करते हैं उनमें भी तो सौ प्रतिशत एमिल-जैसे ही लोग हुआ करते हैं! उनके ही अत्याचार के खिलाफ यदि हम लड़ते हैं तो हम अपने ही देश में चोर, डाकू, असभ्य आदि नामों से पुकारे जाते हैं और जेलों में ठूँस दिये जाते हैं। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं रह गया कि हमारे देश में इस समय असभ्यता ही सभ्यता पर राज कर रही है। एमिल की तरह के आदमी, जिनका आज हम पर शासन है, मालूम नहीं, हमारे देश के कितने लाख आदमियों को असभ्यता तथा अन्धकार के गढ़े में ढकेलते जा रहे हैं।

अपनी आँखों के सामने मुझे एक दूसरा ही क्षेत्र दिखलाई देने लगा। अब तक अपनी जितनी शक्ति 'रोमैंस' में अथवा व्यर्थ ही भटक कर खर्च की थी उस पर खेद होने लगा और मैं मन-ही-मन अपने को धिक्कारने लगा। जब अपने देश के करोड़ों आदमी ऐसी पाशविक बर्बरताओं के शिकार बन रहे हों जिनसे लड़ना अपने को मनुष्य कहने वाले किसी भी व्यक्ति के लिये लाजिमी है, तब अपने को उस संग्राम से वंचित रख मधुर स्वप्न की खोज में निकलना क्योंकर अपराध नहीं गिना जायगा?

'जहाज छूटने के एक दिन पहले हाना का खत मिला। वह भी नैपल्स आने वाली थी। उसके सर का जखम बढ़ता ही जा रहा था, और उन दिनो आस्ट्रिया उसके लिए निरापद स्थान भी नहीं था। इन्हीं बातो का खयाल कर उसकी पार्टी ने उसे चिकित्सा के लिए कुछ दिनों तक इटली मे रखना निश्चित किया था।

जबसे मुझे वह खत मिला, आस्ट्रिया से आने वाली प्रायः प्रत्येक ट्रेन के समय मैं स्टेशन गया, पर प्रत्येक बार ही हताश होकर लौट आना पड़ा। अन्त में शाम की आखिरी गाड़ी देख कर भी घर लौट आया। अपनी कोठरी में पहुँच कर कपडे उतार डाले और सोने के समय की—बिना बटन की तथा घुटनें तक पहुँचने वाली—कमीज पहन कर बिस्तर पर लेट गया।

अनायास ही मन में प्रश्न पैदा हुआ—'कल इस समय कहाँ रहूँगा ?'

कमरे की खिड़कियाँ बन्द थी, पर बाहर आँधी इतने जोरों से चल रही थी कि खिड़कियाँ फट फट बजने लगी थी। समय-समय पर जब हवा का झोंका सामने से निकल जाता और जब तक नया झोंका न आता तब तक खिड़कियाँ अपनी चौखटों से धीमे धीमे बजती रहती। उनसे निकलने वाली आवाज मुझे ठीक ऐसी ही जान पडती मानो मेरी खिड़की पर कोई आ खड़ा हुआ है और उसे खटखटाते हुए मुझसे कह रहा है—

'उठो ! उठो !!'

मैं नींद में ही उठ खड़ा हुआ। खिडकी के पास आकर उसके दोनों पल्लो को पूरा पूरा खोल दिया। साँय-साँय करती हुई हवा मेरे कमरे में

घुस आई और बाहर से आने वाले छींटे मुझे भिगोने लगे। अपने दोनों हाथ पसार कर उनका आलिगन करते हुए मैंने कहा—

'आओ! तुम्हारा हृदय से स्वागत!'

सामने कुहासे के रूप में अन्धकार छाया हुआ था। खिड़की के पास के वृक्षों की डालियों और टहनियो को आँधी किस प्रकार झकझोर रही है, इसकी आवाज जोरो से कानों में आ रही थी तथा उनका हिलना भी धुँधले अन्धकार को चीर कर कभी-कभी दीख जाता था।

पास के पेड़ के नीचे बड़े ही शान्त रूप में कोई व्यक्ति खड़ा दिखलाई दिया। वह मेरे इतना निकट था कि उससे बातचीत करने के लिए जोर से बोलने की आवश्यकता नहीं थी। मैंने उससे पूछा—

'तुम कौन हो?'

उसने मेरा ही नाम बताया। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। उसकी आवाज भी केवल अपनी आवाज सी ही नहीं, बल्कि ठीक उसकी प्रतिध्वनि के रूप में सुनाई दी। मैंने उसे टोका—

'यह कौन सा खेल खेल रहे हो?'

'खेल? यही तो जीवन है!'

जीवन का नाम सुन कर मैं उसे पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान से देखने लगा और पूछा—

'आखिर तुम हो कौन?'

'संग्राम!'

यह शब्द मुझे आग की लपट सा लगा। मैं चौंक उठा।

नींद वास्तव में ही टूट गई। हवा के झोंके ने एक खिड़की टूट कर नीचे लटक गई थी। पानी की बौछार से सारा कमरा और मेरा बिस्तर तक शराबोर हो चुका था।

हाना आधी रात की गाड़ी से आई थी और मेरा नाम ले लेकर पुकारते हुए दरवाजे को खटखटा रही थी।

मेरा जहाज उस दिन शाम को खुलने वाला था। तीसरे पहर हाना का जख्म दिखलाने के लिये उसे एक डाक्टर के पास ले जा रहा था। रास्ते में एक चौराहे पर देखा कि लोगों की अच्छी खासी भीड़ लगी है। अफ्रीका दखल करने के लिए भेजे जाने वाले कुछ सैनिकों को बिदाई दी जा रही थी। हम लोग भी खड़े हो वह तमाशा देखने लगे। एक सेना-नायक अपने सैनिकों से व्याख्यान के रूप में कह रहा था—

'हम इटालियन लोगों के सबसे बड़े शत्रु अफ्रीका वाले हैं, वे ही हमारे विकास का रास्ता रोक कर खड़े हैं, जिस कारण हमें आज भूखों मरना पड़ता है।'

हाना का चेहरा बिलकुल लाल हो आया था। उसने चिल्ला कर कहा—

'सरासर झूठ! इटालियन लोगों की सबसे बड़ी शत्रु यहाँ की फैसिस्ट सरकार है। उसी सरकार की करतूतों के कारण यहाँ वालों को भूखों मरना पड़ रहा है। मुसोलिनी सबसे बड़ा जल्लाद······'

जितने लोग खड़े थे, सबकी दृष्टि हाना की ओर खिंच गई। सेना-नायक भी एक मिनट के लिये सन्नाटे में आ गया, पर तुरन्त ही हाना को आगे न बोलने देकर गरज उठा—

'यह डायन कहाँ से टपक पड़ी! इसे तुरन्त ही तलवार के घाट उतार देना चाहिये!'

'तुम मुझे भले ही मार डालो, पर इटली में भी भड़कने वाली आग········'

इसी वक्त एक सिपाही हाना का हाथ पकड़ कर उसे खींच ले जाने लगा। उसके जाते-जाते सेना-नायक ने कहा—

'तू मर जायगी, बस सब आग ठण्डी हो जायगी।'

हाना ने भी जाते-जाते कहा—

'मेरे बाद जो जिन्दा बचेंगे, आगे बढ़ने की उनकी बारी आयेगी। मेरी मृत्यु हजारों को आगे बढ़ाएगी। वे देश को बचाने वाले सच्चे योद्धा होंगे। संग्राम·····आगे······विजय··· ···

सिपाही उसका मुँह बन्द करना चाहता था, पर हाना बलपूर्वक संघर्ष करती हुई बोलती जा रही थी। सिपाही का हाथ अचानक उसके सर के जख्म पर जा पडा। वह चीख उठी। मैं उसे सहारा देकर आगे ले जाने लगा। पास से ही एक टैक्सी गुजर रही थी ; उसी पर उसे लाद कर डाक्टर के यहाँ ले चला। पुलिस ने भी उसे ले जाने मे कोई बाधा नहीं डाली। वह स्वय उस सभास्थल की ओर लौट आया।

डाक्टर ने ज़ख्म पर पट्टी बाँध देने के बाद उसे वहीं पर कुछ देर आराम करने के लिए कहा। हाना ने सन्ध्या समय जहाज-घाट के पास मिलने का वादा कर मुझे और एक काम से शहर भेज दिया।

घर से निकलते ही मुझे एमिल मिला। उसने मुझे टोका, पर उससे बाते करने की फ़ुर्सत उस वक्त मुझे नहीं थी।

जहाज-घाट के लिए जिस वक्त रवाना हुआ, एकाएक बड़े वेग से अँधेरा छाने लगा। आकाश में काले बादल बहुत पहले से ही मँड़राते आ रहे थे। थोडी देर में ही बडी-बड़ी बूँदें भी टपकने लगीं। मेरे कपडे बिलकुल गीले हो चले। पर मैं रुका नहीं, आगे बढ़ता ही चला गया।

हाना आधी रात की गाड़ी से आई थी और मेरा नाम ले लेकर पुकारते हुए दरवाजे को खटखटा रही थी।

मेरा जहाज उस दिन शाम को खुलने वाला था। तीसरे पहर हाना का जखम दिखलाने के लिये उसे एक डाक्टर के पास ले जा रहा था। रास्ते में एक चौराहे पर देखा कि लोगों की अच्छी खासी भीड़ लगी है। अफ्रीका दखल करने के लिए भेजे जाने वाले कुछ सैनिकों को विदाई दी जा रही थी। हम लोग भी खड़े हो वह तमाशा देखने लगे। एक सेना-नायक अपने सैनिकों से व्याख्यान के रूप में कह रहा था—

'हम इटालियन लोगों के सबसे बड़े शत्रु अफ्रीका वाले हैं, वे ही हमारे विकास का रास्ता रोक कर खड़े हैं, जिस कारण हमें आज भूखो मरना पडता है।'

हाना का चेहरा बिलकुल लाल हो आया था। उसने चिल्ला कर कहा—

'सरासर झूठ! इटालियन लोगों की सबसे बड़ी शत्रु यहाँ की फैसिस्ट सरकार है। उसी सरकार की करतूतों के कारण यहाँ वालों को भूखों मरना पड़ रहा है। मुसोलिनी सबसे बड़ा जल्लाद…… '

जितने लोग खड़े थे, सबकी दृष्टि हाना की ओर खिंच गई। सेना-नायक भी एक मिनट के लिये सन्नाटे में आ गया, पर तुरन्त ही हाना को आगे न बोलने देकर गरज उठा—

'यह डायन कहाँ से टपक पड़ी? इसे तुरन्त ही तलवार के घाट उतार देना चाहिये!'

'तुम मुझे भले ही मार डालो, पर इटली में भी भडकने वाली आग………'

इसी वक्त एक सिपाही हाना का हाथ पकड़ कर उसे खींच ले जाने लगा। उसके जाते-जाते सेना-नायक ने कहा—

'तू मर जायगी, बस सब आग ठण्डी हो जायगी।'

हाना ने भी जाते-जाते कहा—

'मेरे बाद जो जिन्दा बचेंगे, आगे बढ़ने की उनकी बारी आयेगी। मेरी मृत्यु हजारों को आगे बढ़ाएगी। वे देश को बचाने वाले सच्चे योद्धा होंगे। संग्राम······आगे······विजय··· ···

सिपाही उसका मुँह बन्द करना चाहता था, पर हाना बलपूर्वक संघर्ष करती हुई बोलती जा रही थी। सिपाही का हाथ अचानक उसके सर के जखम पर जा पडा। वह चीख उठी। मैं उसे सहारा देकर आगे ले जाने लगा। पास से ही एक टैक्सी गुजर रही थी; उसी पर उसे लाद कर डाक्टर के यहाँ ले चला। पुलिस ने भी उसे ले जाने मे कोई बाधा नहीं डाली। वह स्वयं उस सभास्थल की ओर लौट आया।

डाक्टर ने जखम पर पट्टी बाँध देने के बाद उसे वहीं पर कुछ देर आराम करने के लिए कहा। हाना ने सन्ध्या समय जहाज-घाट के पास मिलने का वादा कर मुझे और एक काम से शहर भेज दिया।

घर से निकलते ही मुझे एमिल मिला। उसने मुझे टोका, पर उससे बातें करने की फ़ुर्सत उस वक्त मुझे नहीं थी।

जहाज-घाट के लिए जिस वक्त रवाना हुआ, एकाएक बड़े वेग से अँधेरा छाने लगा। आकाश में काले बादल बहुत पहले से ही मँडराते आ रहे थे। थोडी देर में ही बडी-बड़ी बूँदें भी टपकने लगीं। मेरे कपड़े बिलकुल गीले हो चले। पर मैं रुका नहीं, आगे बढ़ता ही चला गया।

जिस सड़क पर मैं चल रहा था वह ठीक समुद्र के किनारे-किनारे होकर जाती थी। समुद्र की ओर नीले रंग का अन्धकार छाया हुआ था और किनारे पर लहरों के जोरों से टकराने की आवाज आ रही थी।

मालूम नही, उन लहरों के टकराने का यह परिणाम था, अथवा पानी बरसने की आवाज़ का—मुझे किसी गीत का एक विशेष प्रकार का स्वर याद आने लगा। यह स्वर पहले बिलकुल धीरे-धीरे तथा अस्पष्ट रूप में स्मरण आया ; पर थोड़ी ही देर में उत्तरोत्तर बढ कर झङ्कार के रूप मे सुनाई देने लगा।

यह स्वर परिचित सा जान पड़ रहा था। मैंने उसे कहाँ सुना था, इसकी याद करने लगा। यह याद एक-ब-एक नही आई। पहले ख्याल आया कि स्टौकहोल्म में एक दिन शाम को अकेले जब टहलने निकला था तभी कहीं सुनाई दिया था ; पर दूसरे ही क्षण यह धारणा निर्मूल सी जान पड़ी। फिर याद आया, यह तो मारसेई में सुने हुए एक जिप्सी युवक के बेहले का स्वर था ; पर इस समय एक-ब-एक क्यों उस स्वर की याद आ गई, ठीक-ठीक नहीं समझ पाया।

नैपल्स के जिस रास्ते पर इस समय चल रहा था उसके बाएँ किनारे रोमन काल का बना टूटा-फूटा एक किला था। उस किले के दूसरी ओर से फैसिस्ट पोशाक में एमिल को आते हुए देखा। उस जगह सहसा उसे देख कर मेरा सारा शरीर न जाने क्यों एक-ब-एक काँप गया।

एमिल के चेहरे पर उत्तेजना थी और स्पष्ट जान पड़ता था कि अभी-अभी उसने कोई बड़ा ही निष्ठुर काम किया है। मुझे देखते ही उसने कहा—

'तुम अपनी दोस्त से मिलना चाहते हो ?'

वह कछ कदम मेरे साथ आगे बढ़ा और समुद्र-किनारे की ओर उँगली का इशारा करते हुए बोला—

'वहाँ—'

मैं किनारे की ओर बढ़ा। एमिल ने जाते-जाते कहा—

'गोली से उसे आराम पहुँचता, पर हमारे फैसिस्ट राज्य मे एक गोली की कीमत उस पापिन की जान से कहीं अधिक है।'

वह खून से सनी अचेत पड़ी थी। सर के घाव के ही पास और कई घाव रिवाल्वर के कुन्दे से किये गये थे! उसका चेहरा भी पहचान पाना कठिन हो रहा था। मैंने अपनी कमीज का एक भाग फाड़ा और समुद्र की लहरो के आने पर पानी में गीला कर उसका चेहरा धो डाला।

थोड़ी देर में उसकी आँखें खुलीं! बड़े कष्ट से उसने अपने दोनो हाथ उठाये और मेरा सिर अपनी ओर खीचा। बहुत चेष्टा करने पर उसका मुँह खुला और उसने बड़े ही धीमे स्वर में कहा—

'बिदा! मेरे प्यारे भाई! बि······'

उसने आँखें बन्द कर लीं।

तूफान आया। बवण्डर चला। प्रकृति का अट्टहास शुरू हुआ। अमावस्या की रात थी। लहरें हमारे पास तक आने लगीं। समुद्र बहुत जोर से गरज रहा था।